सत्य कबीरकी साखी

सत्य

सत्यकबीरकी साखी

★

जिसमें

एकसौ ग्यारह (१११) अंगकी साखीके अतिरिक्त,
आदिमंगल सायर बीजकके पद तथा कबीर परि-
चयकी हृदयवेधक साखीद्वारा ज्ञान, वैराग्य,
नीति, भक्ति, योग और धर्म उत्तम
रीतिसे वर्णन किया है।

★

जिसको

(रसीद पुर शिवहरवाले) स्वामी श्रीयुगलानन्द
कबीरपंथी भारतपथिकसे विपर्यय अर्थका
कठिन-कठिन साखियोंकी टीका तथा अनेक
प्रतियोंसे शुद्ध कराय,

खेमराज श्रीकृष्णदासने
बम्बई,

निज " श्रीवेंकटेश्वर " (स्टीम्) प्रेसमें
मुद्रितकर प्रसिद्ध किया

संस्करण : दिसंबर २०१७, संवत् २०७४

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार " श्रीवेंकटेश्वर " यन्त्रालयाध्यक्षाधीन है

मूल्य : २५० रुपये मात्र।

सत्य नाम

कबीर साहेब.

सत्यनाम

★

सद्गुरु श्वेतममलं श्वेतद्वीपनिवासिनम् ।।
कर्णकुण्डलसंशोभिमुखं मुकुटमण्डितम् ।।१।।
मुक्तामालादिसंशोभिगलं पद्मासनस्थितम् ।।
दयाब्धि सुप्रसन्नास्यं सद्गुरुं प्रणमामि तम् ।।२।।
द्विपदं द्विभुजं शान्तं द्विनेत्रं श्वेतवस्त्रकम् ।।
कौशेयसूत्र (सैली) मालाढ्यं चक्रांकितकिरीटकम् ।।३।।
सत्पूज्यमूर्ध्वतिलकं योगदंडधरं परम् ।।
कबीरमाश्रये नित्यं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।।४।।

सत्य सुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योगसंता-
यन, चार गुरु, धनी धर्म दास, वंशव्या-
लीसकी दया ॥ मुक्ता मनि[1] नाम, चूरा-
मणि नाम[2], सुदर्शन[3] नाम, कुलपति[4]
नाम, प्रमोध गुरुवाला पीर, केवल-
नाम[5], अमोल नाम[6], सुरति[7] स्नेही
नाम, हक्क[8] नाम, पाक[9] नाम, प्रगट[10]
नाम, धीर्य[11] नाम, पंथ्री उग्र[12]
नाम साहब, पंथ्री दया
नाम[13] साहब, की दया
सर्व संत महंतन
की दया ।

भूमिका

★

कबीर कसौटीके छपने और सज्जन गुणग्राही, ग्राहक अनुग्राहकोंके कृपापूर्वक आश्रय देनेसे, सर्वकी रुचि कबीर साहबकी वाणीमें जानकर, बहुत दिनों से मेरी अभिलाषा थी कि, कबीर साहब की वाणी प्रकाशित करूँ तथा कितने सज्जन पुरुषों ने कबीर साहब की कै एक पुस्तकें भी मेरे पास भेजी थीं। परंतु कबीर मतके किसी पूर्णज्ञाताके मिले बिना उन पुस्तकोंका शुद्ध होना दुस्तर देखा गया क्योंकि, यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि, कबीर साहब की वाणी सरल हिंदी भाषा में होने पर भी ऐसे-ऐसे गूढ़ और अगम्य विषयोंकी व्याख्यासे पूर्ण है कि,सर्व साधारणको समझना अत्यन्त कठिन जान पड़ता है,इसी कारण अबतक नहीं छपवा सका। परंतु अब स्वामी श्रीयुगलानन्द कबीर पंथी भारत पथिक (जिन्होंने कबीर पंथकी अनेक पुस्तकोंको शुद्ध करके प्रकाशित किया है और बहुत-सी प्राचीन हस्तलिखी पुस्तकोंका जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं संग्रह किया है) के मिल जानेसे अब कबीर साहबकी पुस्तकोंको प्रकाशित करना आरंभ किया है।

कबीर साहब की प्रसिद्ध वाणीमें से यह साखी भी एक पुस्तक है जिसमें ऐसी-ऐसी रोचक और चित्ताकर्षक, नीति, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति आदिकी साखियाँ हैं कि, जिनको सहजही एकबार पढ़ने से भी अंतःकरण में भक्तिभाव प्रकट हो ज्ञान का प्रकाश होता है।

इसमें की एक-एक साखी यंत्र बनाकर सदा पास रखनेके योग्य है। कबीर साहबकी जितनी साखियाँ जगत्में प्रसिद्ध हैं सब इसी पुस्तकको हैं। इनमें अनेक गूढ तत्त्वदर्शक विपर्यय अंगकी साखियाँ थीं उनके ऊपर स्वामी श्री युगलानन्द कबीरपंथी भारत पथिकने टिप्पणी भी कर दी है। और अनेक प्रतियों से शुद्ध भी किया है। जिन पुस्तकों से यह शुद्ध हुई है उनमेंसे एक प्रति तो रसीदपुर शिवहर निवासी श्रीमान् बखशी गोपाल लालजी पूर्व अमात्य शिवहर राज्यके पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी जो संवत् १६०० की लिखी हुई है। दूसरी प्रति नागपुर इन्द्रभानजी निवासी श्री भैरवदीन तिवारीजीने कृपाकर भेजी थी जिसमें अनेक संतोंकी वाणीके साथ-साथ यह साखी भी है और संवत् १८४२ की लिखी है

और तीसरी प्रति मखदूमपुर जि० गया निवासी श्रीनेतलालरामजीकी भेजी हुई है, जिसमें यद्यपि सन संवत नहीं लिखा है परंतु पुस्तकके देखने से जान पड़ता है कि, यह भी प्राचीन ही लिखी हुई है। इसके अतिरिक्त स्वामी श्रीयुगलानन्दजीके पास और भी अनेक प्रतियाँ थीं जिससे उन्होंने इस पुस्तक को शुद्ध कर दिया है।

इसके अतिरिक्त इस पुस्तकमें बेहद्दका अंग, आत्मानुभवका अंग, अद्वैतका अंग तथा आदिमंगल भी दिया है और दूसरी टाइटिल सहित ज्ञानकांडविषयक परम प्रसिद्ध गूढ तत्त्वोंके विवेचनसे पूर्ण "कबीर परिचय" नामकी पुस्तक जिसमें ३३९ साखी हैं और एक-एक साखीमें धर्म्मके अत्यन्त रहस्यमय गूढ़ तत्वोंका समावेश है और यह पुस्तक भी श्रीमान् बखशी गोपाल साहबके पुस्तकालयसे उपरोक्त स्वामीजी द्वारा प्राप्त हुई है और स्वामीजीने ही शुद्ध किया है। इसके साथ छपवाया है।

उपरोक्त महाशयोंको मैं कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ और विनयपूर्वक आशा करता हूँ कि, यदि सज्जन महोदयगण कृपा कर संतोंकी वाणी भेजकर मुझे बोधित करें तो मैं धन्यवादपूर्वक उनको प्रकाशित कर अपने मनोरथको पहुँचूंगा।

स्वामी श्रीयुगलानन्द कबीरपंथी भारतपथिकके पास अनेक संतोंकी वाणीकी अनेक पुस्तकें संगृहीत हैं और उन्होंने मुझे प्रकाशित करनेके हेतु देनेका वचन दिया है वरन कैएक पुस्तकें दे भी दी हैं वह सब क्रमशः प्रकाशित करूंगा।

इस पुस्तक में परम प्रभाव उत्पादक दो चित्र दिये हैं जिनमेंसे एक तो स्वयम् कबीर साहबका चित्र है जिसके देखने से ही अंतःकरण में प्रेम और भक्ति का आविर्भाव होता है। दूसरा कबीरपंथके मूल स्थापक श्री १०८ युत गोस्वामी धर्मदास साहबके वंशज वंश गादीके वर्त्तमान बारहवें आचार्य्य, पं० श्री उग्रनाथ साहबका है। उपरोक्त चित्र अत्यन्त परिश्रम और व्ययसे प्राप्तकर सर्व साधारण के मनोरंजनार्थ इस पुस्तकमें दिया है।

इसके अतिरिक्त कबीर साहबके बीजक की तीन टीकायें जिनमेंसे एक तो सत्य-लोकनिवासी गोस्वामी रामरहस्य साहब कबीरपंथी कृत है जो पंचग्रन्थीके स्वरूपमें होनेपर भी यथार्थ में बीजक की टीका है। दूसरी बुर्हानपुरके भूतपूर्व महंत श्री पूर्ण साहब-कृत टीका है, तीसरी टीका श्रीमान् महाराजाधिराज श्री रीवाँराज्याधिपति श्रीमहाराजा विश्वनाथसिंहजू देव वैकुंठवासी कृत है। जिनकी शुद्ध-शुद्ध हस्त लिखित प्रतियाँ स्वामी श्रीयुगलानन्दजी क० पं० भा० प० से प्राप्त हुई हैं, अल्प काल में ही छपकर प्रकाशित होगी।

इसके अतिरिक्त– कबीर भानुप्रकाश, सुखनिधान, ज्ञान प्रकाश, स्वाँसगुञ्जार, ज्ञानसागर, अनुरागसागर, विवेकासागर, कबीरवानी, और मूल, सर्वज्ञसागर, कबीर कृष्णगीता, उग्रगीता, अंबुसागर, कबीरगीता, पंचमुद्रा, सातो पांजी, हंसमुक्तावली आदि के अतिरिक्त कबीरपंथ की प्रसिद्ध अनेक पुस्तकें क्रमशः प्रकाशित होवेंगी। प्राप्त पुस्तकें बहुत हैं दिग् दर्शनमात्र थोड़ोंका नाम लिख दिया है।

और भी सज्जन, हरिभक्त और विद्वानोंसे सविनय निवेदन है कि कबीर साहबकी जो जो पुस्तकें जिनके पास हों कृपा कर भेज करके बोधित करेंगे।

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस-
बम्बई.

© सर्वाधिकार : प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

कवीरपंथके प्रधान आचार्य पं० श्री० उग्रनाम साहब.

प्रस्तावना

★

यह "सत्यकबीरकी साखी" सत्यगुरु, सत्याचार्य्य, सत्यकबीर विरचित है।

सत्यगुरु कबीर साहब ने अनेक बार स्वधाम सत्यलोकसे पधारकर जीवोंको कालके जालसे बचाकर, सच्चे सुखको प्राप्त करानेके लिये अनन्त ज्ञानमय वाणी प्रगटी हैं, जिसके विचारनेसे लौकिक पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है।

महाभारतके पश्चात् शीघ्रही कलियुगका राज्य फैल गया, सत्यधर्मका लोप होने लगा पवित्र सत्य, सनातन धर्मकी ओ-में अनेक हिंसा, पाखंडयुक्त सांसारिक विषय-वासनामें बद्ध करनेवाले शास्त्र और मत प्रकट होने लगे। अब क्या था? जिसने चाहा अपना नया मत प्रकट किया, जिसकी बातको माननेवाले दशपांच आदमी हुये वही आचार्य बन गया। सत्यपुरुषकी भक्ति और नामको निरंजन भगवानने अपने छल कपटमें छिपाकर अपनाही प्रताप पूर्णरूपसे प्रकट किया। इसी प्रकारसे ढाई सहस्र वर्षतक धर्म-विप्लव होता रहा और अनेक दंभ पाखंड और हिंसायुक्त धर्म्मोंने संसारको आच्छादित कर लिया। इसके साथ ही साथ देशभाषाने ही अपना वेष बदला, पवित्र देववाणी-रूप वस्त्रको उतारकर प्राकृत शृंगारको धारण किया अब तो और भी सत्यशास्त्रोंका प्रचार कम हो गया। सत्यशास्त्रके पठन पाठन का रिवाज ऐसा कम हो गया कि, जिसके पास शास्त्र होता वे पढ़ानेकी तो बात ही क्या है ग्रंथके दर्शन कराने को भी पाप समझने लगे।

बीच-बीचमें महात्मा बुद्धदेव और शंकराचार्य आदि ईश्वररूप महानुभाव लोगोंने यद्यपि बहुत उपायकर, धर्म्म रक्षा करनेमें उठा नहीं रक्खा तथापि उन लोगों के पर-लोकगमनके पश्चात् तत्कालही काल भगवानने अपना वही जाल पसारा, उन लोगोंके स्थापित मार्गको ऐसे स्वरूपमें पलटा कि, उन्हें भी अपना पूर्ण सहायक बना लिया।

पश्चात् चारों संप्रदायोंके आचार्योंने उन हिंसायुक्त धर्म्मोंके रोकनेका अनेक प्रकारसे उपाय किया वैष्णव धर्म्मकी जड़ रोपी गई परंतु उनके प्रकट होनेके थोड़ेही दिन पश्चात् विदेशियोंके प्रबल आक्रमणने ऐसा उथल-पुथल कर डाला कि धर्म्मके नाम लेनेवालों को प्राणान्त दंड होने लगा। धर्म, धन और प्रतिष्ठापर कुठार चलने लगा। ऐसा अत्याचार सत्य सनातनधर्म और पवित्र भारत भूमीपर होने लगा, उसका पूर्ण वृत्तान्त लिखना असंभव है। हाँ! कुछ कुछ इतिहासों से प्रकट होता है। संक्षेपतः यह है कि, अत्याचारियों विधर्मियोंका सताया हुआ यह देश त्राहि! त्राहि!!! करने लगा, सबही धार्मिक लोगोंके सदाचार छूट गये।

जीवहिं दुःख दुसह अति, त्राहि त्राहि बिलखन्त

उस भयानक कालमें एक भी भारतवासी ऐसा नहीं था कि जिसने एकचित्त होकर आर्तस्वरसे अपने दुःखों की निवृत्तिके लिये सर्वान्तिर्यामी सद्गुरु सत्यपुरुषकी प्रार्थना न की हो अब विलंब ही क्या था ! परमदयालू सद्गुरु सत्यपुरुषको दीन दुःखियोंकी, आर्तवाणी सुनकर फिर कहाँ रहा जाता है परोपकारके समक्ष सत्यलोकका आनंद कहाँ भाता है ? उसका कथन है कि,

अजहुँ लेउँ छुडाय कालसे जो करे सुरति हमारी ।

१– परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि युगे युगे ॥८॥
गी० अ० ॥४॥

बस उपरोक्त वचनको पूरा करनेके हेतु सं० ११५५ वि० में भारत वर्ष में प्रकट होकर भारत वासियोंको कालके प्रबल अत्याचारसे बचाने का उद्योग आरंभ किया ।

पाठक गण ! यही सत्यगुरु सत्यकबीर साहब हैं, जिन्होंने दोसौ वर्षतक सामान्य रीतिसे सत्य सामान्य धर्मका उपदेश कर अत्याचारियोंके अत्याचारको रोक रक्खा परंतु दो सौ वर्षके पश्चात् अब वह समय आ गया कि, प्रकट रूपसे सत्य धर्म का उपदेश किया जावे, और ऐसे सत्य मार्गपर जनसमुदायको लगाना चाहिये जिससे उनके परस्पर के पक्षपातपूरित धर्मद्वेष नष्ट होकर भ्रातृभावकी वृद्धि हो, सार्वजनिक सत्य आनंद की प्राप्ति हो ।

इसके उपरान्त १४५५ वि० जेठमास वसीयतको काशीके लहर तालाब में बाल-स्वरूप से प्रकट होकर सत्य हंसोंके कार्य्य साधन को आरंभ किया ॥

सत्यगुरुने बहुत छोटी अवस्था से ही अनेक आश्चर्य चमत्कार दिखलाकर लोगों को सत्यमार्गका उपदेश देना आरंभ किया । अनंत शब्द साखी द्वारा उस समयकी प्रचलित देश भाषामें सत्य धर्म्म को प्रकट करने लगे । सद्गुरु ने कोई विशेष धर्म चला कर नवीन धर्मस्थापकोंकी पंक्तिमें नाम लिखानेकी इच्छा कभी भी प्रकट नहीं की । आपका उपदेश सर्व वर्ण, सर्व जाति और सब मतोंवालों को समान ग्राह्य था, अब तो जनसमुदायसे धर्म्मद्वेष और परस्परका वैमनस्य हटकर शुद्ध प्रेमकी वृद्धि हो हिंसादि काल धर्मों का नाश होने लगा ।

इस प्रकारसे सत्य की वृद्धि देखकर काल भगवान्के अनुचरों को अत्यन्त घबराहट और व्याकुलता हुई ।

देखि चौकीदार बहु रीसे । कला न लहै हाथ सब मीसे ॥
सब हरिभोगकरे कौबारा । हमलोगनसे भा यह न्यारा ॥

नहिं डर महतों न राजा माने । ना जानो यह का व्रत ठाने ।।
पुनि यम अपना फन्द पसारा । हरिभोगनगरमें द्वन्द प्रचारा ।।
साहब ओट निज नाम धराई । बहु मति दुविधाजीव दृढ़ाई ।।
नाना बाणी अनमिल सबहीं । एक न एक मिले नहीं कबहीं ।।
।। मानुषविचार ।।

इस प्रकारसे अनन्त कला और कौशल द्वारा सत्योपदेशका विरोध करने पर भी जब सत्यगुरुने सत्य उपदेश देना नहीं बन्द किया तब धर्म्मरायके सेवकों ने सत्यगुरुको अनेक प्रकारका शारीरिक कष्ट देना आरंभ किया । शेखतकी ने ५२ कसनियों द्वारा अनंत दुःख दिया तथापि सत्यकबीर साहबने सत्य पुरुषकी भक्तिके सच्चे पथका उपदेश त्याग नहीं किया । देखो निर्भय ज्ञान आदि ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न और कबीर मन्शूरके १०२ पृष्ठसे एक साथ ही पूर्ण वृत्तान्त ।

निरंजन गोष्ठी आदि ग्रंथों में लिखा है कि, जब कबीरसाहबने जीवों को निरंजनके जालसे छुड़ानेके लिये भूतल पर आनेके हेतु सत्यलोकसे पयान किया तब मार्गमें काल निरंजनने बहुत कुछ युक्तिद्वारा सत्योपदेशके प्रगट होने को रोकना चाहा परंतु सत्यगुरुके आगे-जब उसकी एक युक्ति भी नहीं चली, तब कालने क्रोधित होकर कहा कि, यदि तुम पृथ्वीके जीवोंको मेरे राज्य से निकाल कर दयाल देशमें ले जाने का एक प्रकारसे उपाय करोगे तब मैं तुम्हारे ही सरीखे स्वरूपके अपने दूतों द्वारा अनेक उपायसे तुम्हारे उपदेशको व्यर्थ कर दूंगा । जीवोंको तुम्हारे विषयमें ऐसा बोध करूंगा कि, उनकी तुम्हारे ऊपर श्रद्धाही जमने न दूंगा । कालने जब ऐसी प्रतिज्ञा की तब भी कबीर गुरु उसके वचनकी कुछ परवाह न कर जीवोंको सत्य उपदेश देनेकी प्रतिज्ञा से उदासीन नहीं हुये । मानुष-विचार, टकसार आदि ग्रन्थोंमें धर्म रायके जालको भली प्रकार परखाया है, उनके देखनेसे काल जालका विशेष स्वरूप जान पड़ेगा । सत्यगुरुने धर्म्मरायके प्रबल कपट जालको परखकर, उससे अलग हो, सत्य मार्गको ग्रहण करने की युक्ति पूर्ण सत्योपदेशमय वाणीका भली प्रकार प्रचार करके, उनकी रक्षा और प्रचारके लिये गुरु धर्मदास साहब तथा उनके ब्यालीस वंशको, अपने प्रतिनिधिस्वरूप स्थापनकर सत्य लोकका पयान किया । सत्यगुरुके गुप्त होने पश्चात् ही काल भगवानने अपने अनुचरोंद्वारा कबीर साहबके नामसेही अनेक धर्म्म प्रगट कराये और उनके द्वारा सत्य पुरुषकी भक्ति तथा सत्य ज्ञान पारखको छिपाकर अपना धर्म्म प्रचार कराया । कबीरसाहब के नाम से ही अनंत वाणी और अनेक पुस्तकें बनने लगीं । अब तो कबीर साहबकी वाणी और काल भगवानकी बाणीका ऐसा हेल मेल हुआ कि, सत्यासत्यका निर्णय करना अत्यन्त कठिन हो गया । काल मार्ग और दयाल पथका विचार उठसा गया । तब तो सत्य गुरुने क्रमशः रामरहस्य साहब, पूर्ण

साहब और परमानन्द साहब आदि हंसोंद्वारा पंचग्रन्थी, *बीजककी टीका कबीरमन्शूर आदि ग्रन्थोंका प्रादुर्भाव कराकर कालके परदाको हटाकर, सत्य मार्ग को फिरसे शुद्ध और ििलग करवा दिया । यद्यपि वे ग्रन्थ वर्तमान में सूर्य्यके समान संसारमें प्रकाशित हो रहे हैं तथापि अज्ञानगह्वर निवासी वैराग्य, विचार नेत्रहीन, असत्यमार्गी उलूकोंको उनका प्रकाश सहन नहीं होता, इस कारण वे उनकी असूया करने से नहीं चूकते, असूया करने से इसी समय ही नहीं चूकते बरन उन लोगों के समयमें भी अनेक प्रकारसे उन्हें कष्ट और दुःख देकर, उनके उत्साहको रोककर, उन्हें सत्यको प्रकट कर रोकनेका एक यत्न भी उठा नहीं रखा था । परंतु वे सच्चे धर्म्मवीर सच्चे हंस लोग जो परोपकार के समक्ष अपने जीवनको भी तुच्छ समझते थे उनकी गीदड़ भभकियों में कब आ सकते थे वे इस बातको भली प्रकार जानते थे कि

धन्य जीव सो तारण तरना । अभय अशंक त्रास नहीं मरना ।
मृतक शरीर नाश सब भाँती । तेहि अपनाय कौन कुशलाती ।।१।।
मानुष होय देह भय त्यागे । अपने कारज सो मन लागे ।।
हृदया सांच सांच मुख भाखे । कपट खोट एको नहीं राखे ।।२।।
कोई बात कहे नहिं कांची । बोल अडोल भाखे सो सांची ।।
भव बंधन जाते है रूढा । ऐसी बात कहे सो मूढा ।।
जेहि विधि कारज जिवका होई । निर्णय वाक्य उचारे सोई ।।
साखी—सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हृदये सांच है, ताके हृदये आप ।।

धन्य हैं वे जीव जो प्राणान्त तक भी सत्यमार्गको नहीं छोड़ते हैं परोपकारसे मुह नहीं मोड़ते हैं जगत्के मोह 'माया' आशा और तृष्णासे नाता नहीं जोड़ते हैं और धिक्कार है उन देहात्मवादी असत्यमार्गी अत्याचारियोंको जो मिथ्या तुच्छ सांनारिक क्षणिक सुख और तुच्छ मान बडाईके हेतु सत्यधर्म और सत्यजीवनको तिलाञ्जलि देते हैं सत्यपंथी सदाचारी सत्यलोकके सच्चे निरतिशय सुखके भागी हैं और संसारमें सत्य सुखके भोगी, उन्हें तो उभय प्रकारसे आनंद है— और असत्यधर्मी अत्याचारी अपने दुराचारों के कारण कालके पगोंका दास और नरकका भोगी है ।

कहाँ हैं? सत्यपंथके (दंभ और पाखंडरहित) यात्री । कहाँ हैं? सत्य गुरुके सच्चे हंस कहाँ हैं? सत्यमार्गके ऊपर पड़े हुये कुश और कांटोंके शुद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले ? कहाँ हैं सच्चे पारखी ? एकबार अब जागे सत्य शब्द का खड्ग लेकर सत्य उपदेशका बख्तर पहिन कर सत्यधर्मकी रक्षाके लिये धर्मयुद्धमें आडटें । देखें ! अब यह कौनसा समय

* यों तो बीजककी बहुतसी टीकायें छपी हैं परंतु उनमें प्रधान और पूर्ण दो ही हैं एक तो पारखसिद्धान्तके ऊपर वंशधरके महंतोंमें प्रधान महंत पूर्णसाहब सत्यलोकवासी कृत है । दूसरी उपासनाकाण्ड और रामभक्तिनिरूपक श्रीमान् महाराजाधिराज श्रीरीवाँ राज्याधिपति साकेत वासी श्री १०८ विश्वनाथसिंहजू देव बहादुर विरचित है । शीघ्रही ये टीकायें श्री वेंकटेश्वर प्रेससे छपकर प्रकाशित हो वेंगी ।

आया है ? पं० श्रीदयानाम साहबका प्राकट्य हो गया है, यही समय है कि दिल्ली-*वाला पत्थरका हाथी जीवित होकर चलेगा और सत्यमार्गका विशेषरूपसे प्रचार होगा।

इसका विशेष प्रमाण और लक्षण भी प्रत्यक्ष है कि,

जबसे पं० श्रीदयानामसाहब का प्राकट्य हुआ है तबसे कबीर पन्थकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित होने लगी हैं, उनका प्रचार बढ़ने लग गया है और तो क्या स्वयम् पं० श्री उग्रनाम साहबने आज्ञा देकर अनेक पुस्तकें छपवाकर सर्वसाधारण में उसका प्रचार कराया है। और उसमें काल भगवान् की ओरसे विघ्न डाले जाते देखकर ही आपने एक महती सभा कर सत्यधर्म्मविद्वेषियों, सत्यमार्ग विध्वंसियों और सत्यशब्दके छिपानेवालों के कर्तव्या-कर्तव्यका विचार कर सत्यधर्म्म प्रचारकोंको यथोचित पारितोषिक दे और मिथ्या दंभि-योंको दंड देकर, सत्यधर्म्मके प्रचारके मार्गको निष्कंटक करनेका विचार किया है।

पाठक गण ! जिन वाणियोंपर सत्यपंथका आधार है जिसे कबीरपंथी सत्य-कबीर द्वारा प्रगटित स्वसंवेद कहते हैं उसी स्वसंवेदके सत्योपदेशोंमेंसे चुनी हुई लगभग तीन सहस्र साखियोंका संग्रहरूप यह "सत्यकबीरकी साखी" नामक ग्रंथ है। इस ग्रंथमें नीति "धर्म्म" ज्ञान और वैराग्य आदि धर्म्मके अंगों का इस प्रकार से वर्णन है कि सर्वसाधारण चाहे वह किसी देश, किसी जाति, अथवा किसी धर्म्मका भी क्यों न हो सामान्य रूपसे ग्रहण कर सकेगा। ऐसा निष्पक्ष उपदेशों से यह ग्रन्थ भरा है कि, प्रत्येक भिन्न-भिन्न धर्मके पक्षपाती भी इसे स्वीकार करने में किसी प्रकार भी आना-कानी नहीं करेंगे। यह भी कह देना उचित समझता हूँ कि यह पुस्तक आजकी संगृहीत नहीं है बरन २५० वर्षके भी प्रथम की लिखी हुई एक प्रति मुझे प्राप्त हुई है जिसके ऊपरसे शुद्ध करके यह पुस्तक छपवाई गई है।

इस ग्रन्थके ऐसे उपयोगी होनेपर भी इसके प्रकाश करनेमें अनेक विघ्न और कष्ट, भगवान् निरंजनके कृपापात्रोंद्वारा उठाने पड़े हैं तथापि सत्याचार्य सत्य गुरु सत्य कबीरकी दयासे आज यह अमूल्य उपदेशरत्नोंका भांडार आपके सन्मुख उपस्थित है।

---

* ग्रंथोंमें भविष्यत्वाणी है कि, गुरु धर्मदास साहबके वंशके तेरहवीं पीढ़ी में साक्षात् गुरु मुक्तामनिसाहब, दयानाम साहबके स्वरूपमें प्रकट होंगे, उनके शरीर में छाया नहीं होगी, उन्हींके समयमें दिल्लीका पत्थरवाला हाथी चलेगा और सत्य पंथका विशेषरूपसे प्रचार होगा। यद्यपि विद्या देवीके मंदिरसे निकाले हुये महात्मा गण इसका भाव न समझें और उन्हें यह आश्चर्य अथवा झूठी बात मालूम हो तो कोई आश्चर्य नहीं है वरन् बुद्धिमान् और सत्यधर्म मर्मज्ञ उपरोक्त भविष्यत् वाणीका मर्म भली प्रकार जानते हैं कि, छाया नाम है माया का, माया कहते हैं असत्य पदार्थों की तृष्णा और आसक्ति को, सो पं० श्रीदयानाम-साहब सांसारिक आसक्तिसे रहित शुद्ध पारख स्वरूप है। इनके समय में दिल्ली अर्थात् अन्तःकरणस्थित सत्य धर्माभिमान रूप हस्ती जो कालके प्रभावसे पत्थरके समान जड़ अर्थात् शिथिल हो गया है सो विशेप रूपसे उत्साह को प्राप्त हो सत्यधर्म उन्नतिमें लगेगा। यही हाथीका चलना है।

इसके अतिरिक्त मैंने अनेक वर्षों से देशदेशांतरोंमें भ्रमणकर अत्यन्त कठिनता और दु:खोंको झेलकर बहुतसी पुस्तकोंका संग्रह किया है जिसमें से कँएक तो छप चुकी हैं और शेष क्रमश: यथा अवसर छापी जायेंगी। अब मैं अपने पुस्तक संग्रह करने का संक्षेप वृत्तान्त लिखकर इस प्रस्तावनाको समाप्त करूंगा।

यद्यपि कबीरपंथका उपदेश मेरे वंशमें परंपरासे तीन सौ वर्षोंसे चला आया है जिससे कबीरपंथकी बहुत सी पुस्तकें हमारे पुरुषोंने संग्रह की हैं और चार वर्षके ही अवस्थासे मुझे मेरे पूज्य पिताश्रीजीने उन ग्रन्थोंके पठन-पाठनमें प्रवृत्त कराया था तथापि सन १८९२ ई० के मार्च मासके प्रथम मुझे उन ग्रन्थोंके ऊपर और कबीरपंथकी वर्तमान दशाकी ओर ध्यान देनेका विशेष अवसर नहीं आया था परंतु उक्तवर्षके मार्च मासमें कँएक ऐसी पुस्तकोंके देखने का अवसर आया जिसमें कबीरपंथकी निंदा सहित कबीरपंथियोंके वर्तमान आचार-विचार और उनके साथ-साथ कबीर साहबके ऊपर घोर अश्लील शब्दों द्वारा आक्रमण किया गया था।

सच्चे धर्माभिमानियोंको इस बात का पूर्ण अनुभव है कि, स्वधर्म की निन्दा सुनकर एक धर्म्माभिमानीके हृदयमें क्या भाव उत्पन्न होता है, मुझे भी उन पुस्तकोंको समाप्त करते करते एक ऐसी अवस्थामें जाना पड़ा, जहाँ स्वधर्म्म के विद्वेषियों. मिथ्या निन्दकोंके विरुद्ध अनेक प्रकारसे उत्साह देनेवाली अनंत युक्तियां उपस्थित थीं। उन संकल्प विकल्पोंमें पड़ा हुआ, धर्म्म वेदनासे व्याकुल हुआ मन उत्तेजनामें आया और बुद्धिने भली प्रकारसें निश्चय कर लिया कि, कुछ भी क्यों न हो परंतु किसी-न-किसी प्रकारसे इन धर्मविद्वेषियोंको तुरकी बतुर्की मुंहतोड़ जवाब देकर उनका मुंह रोकना चाहिये! यह निश्चय तो कर लिया परंतु अब इस निश्चयको पूर्ण करनेको मार्ग कौनसा अवलंबन करना चाहिये? किस उपायसे सत्यधर्म्मपर पड़ते हुए परदेको हटाना चाहिये? कहां तक लिखूं उस समय जो जो विचार मेरे मस्तिष्कमें घूम रहे थे, यदि वह सब मुझे याद हों और सब लिखे जावें तो बड़ा पोथा बन जावे।

कई एक मास पश्चात् यह निश्चय हुआ कि, प्रथम तो सर्वत्र (जहां-जहां कबीरपंथी लोग हैं) फिरकर स्वधर्मकी अवस्थाको देखूं और स्वधर्मके संत साधू, महंत और सेवकोंसे मिलकर उनसे स्वधर्मरक्षाका प्रयत्न कराऊं। जैसे ही यह विचार दृढ़ हुआ सद्गुरु समान पूज्यपाद पिता श्रीजीकी आज्ञा लेकर धर्म्मयात्राको निकला। फिर तो क्रमश: बिहार, पश्चिमोत्तर, पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, अफगानिस्थान, तिब्यतका पश्चिम और दक्षिण भाग, तुर्किस्थानका पूर्व भाग. खुरासान, बलख बुखारा और ईरानके अनेक भागोंका भ्रमणकर करांची पहुंचा। फिर वहांसे दोबारा पंजाब होकर दक्षिण देशकी यात्राको निकला, और दक्षिणके कबीरपंथी बड़े-बड़े मठों और मकानोंको देखता बुरहानपुर पहुँचा। वहां ४-५ महीना तक निवास कर सन १८९७ ई० के आरंभमें बंबई में आया।

फिर बंबई से गुजरात काठियावाड़ पश्चात् दक्षिण रामेश्वर पर्यंत भ्रमण कर सन १८९८ ई० के आरंभ में लखनऊ पहुँचा। उस समय अपना सदरस्थान लखनऊ ही रखा था; भ्रमणकाल में पुस्तकादि जो कुछ संग्रह करनेके पदार्थ थे वहां ही भेज देता था।

पाठकगण ! इन सात वर्षों की कठिन अनंत कष्ट और परिश्रमपूरित यात्राको समाप्त कर जब मैं स्थिर हुआ, आप समझते होंगे कि; उस समय मैं सफलकाम होकर आनंदकी लहरें लेता होऊंगा परंतु शोकके साथ लिखना पड़ता है कि इस यात्रा में स्वधर्म्म विषयक जो जो अनुभव मुझे प्राप्त हुये उनमें सिवाय निराशाके आशा की गंध भी नहीं थी। वारवार डायरीके पत्रोंको उलटता और आशा का नाममात्र भी ढूंढ़नेका बहुत प्रयत्न करता परंतु नाममात्र को भी आशा ने दर्शन नही दिया। अब तो देवी निराशाने ही अपने जालमें फँसा लिया। कैएक महीनों तक उसीके साथ विहार करता रहा। धर्म्मवेदनाने मेरे हृदयको अपना निवासस्थान बना लिया, व्याकुलता फिर भी अपना रंग दिखाने लगी; आपही बतलाइये ? ऐसे समयमें मेरा सहायक कौन था ! सिवाय सद्‌गुरु के दूसरा कौन था जो धैर्य्य देता ? अंतमें सद्‌गुरु ने ऐसी मति दी कि, जब तक कबीर पंथकी पुस्तकोंको अंधकारसे निकाला न जायगा तबतक कवीर पंथका सुधार असंभव है। जबतक अपना घर न सुधरे तब तक दूसरों से बात करना व्यर्थ है :

पाठकगण ! मेरी यात्रासे मुझे क्या प्राप्त हुआ ? स्वधर्म्म के निन्दकोंको उत्तर देनेके हेतु प्रयत्न करने गया था, अब तो उलटा स्वधर्म्मके सुधारकी चिन्ता गले पड़ी। यह वही समय है कि, "लेना का देना पड़ा ?" "चौबे गये छब्बे होने दो गांठ का खोकर दूबे वन गये" "नमाज बखशवाने गये रोजा भी गले पड़े।"

अब सब विचार छूट गया केवल स्वधर्म की पुस्तकोंके प्रकाशित करनेकी चिंता पीछे पड़ी फिर आशा देवीका दर्शन हुआ। स्वधर्मियोंकी ओरसे तो निराशा देवीने परदा-ही डाल रक्खा था केवल सत्यगुरुकी कृपासे आश्रय स्वपुरुषार्थका बल रह गया। परंतु आप जानते ही हैं कि, "एक चना भाड़ नहीं फोड़ सकता" न्यायसे वर्षों से विगड़े हुये को सुधारना किसी एकका काम नहीं है. तथापि जहाँतक हो सकता है गुरु कृपाके आश्रय, स्वपरिश्रमसे धर्म पुस्तकोंको ढूंढ़ने, शुद्ध करने और प्रकाशित करने करानेमें लगा हूं। इतने दिनोंके परिश्रमसे १० बीस पुस्तकोंके प्रकाशित करानेके अतिरिक्त प्रगटमें कोई विशेष संतोषजनक कार्य्य नहीं कर सका हूँ, तो भी इतना तो अवश्य हुआ है कि, अब अनेक कबीर-पंथी सज्जन, सेवकों, साधुओं, महंतों यहां तक कि पं० श्री हजूरसाहवने भी धर्म और उन्नति की आवश्यकता को अनुभव किया है। जिसका परिणाम आगामी कुदरमालका मेला है।

स्थानाभावके कारण अधिक न लिखकर पाठकगणोंको आशा दिलाता हूँ कि भला हो जानेके पश्चात् विशेष वृत्तान्तके सहित अपनी राम कहानी सुनाऊंगा।

अब सत्यगुरु सत्य कवीरसाहव पं० श्री उग्रनामसाहव तथा पं० श्री दयानाम-साहवके चरण कमलोंमें वारवार दंडवत् नमस्कार करता हुआ अपने मनोरथकी सफलता की प्रार्थना करके इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूँ। सद्‌गुरुका कृपाभिलाषी—

बम्बई	युगलानन्द क० पं० भा० प०
२६-११-१९०८.	(रसीदपुर- शिवहर निवासी)

अथ सत्यकबीरकी साखीकी अनुक्रमणिका

★

	नाम अंग	साखी	पृष्ठ.
	मङ्गलाचरण		१
१	गुरु देवको अंग ।	७३	१
२	गुरु पारखको अंग ।	३०	८
३	गुरु निर्दोषताको अंग ।	४	११
४	निगुरा नरको अंग ।	२६	१२
५	गुरु शिष्य हेराको अंग ।	४५	१४
६	सेवकको अंग ।	२१	१९
७	दासातनको अंग ।	९	२१
८	यतीको अंग ।	११	२२
९	सतीको अंग ।	१७	२४
१०	उपदेशको अंग ।	६५	२५
११	सुमिरनको अंग ।	१०१	३१
१२	बेअक्कलीको अंग ।	४	४१
१३	अकलको अङ्ग ।	४	४१
१४	प्रमोधको अङ्ग ।	५	४१
१५	भक्तिको अङ्ग ।	३६	४२
१६	स्वार्थको अङ्ग ।	६	४५
१७	परमार्थको अङ्ग ।	५	४६
१८	प्रेमको अङ्ग ।	३१	४७
१९	बिरहको अङ्ग ।	९०	५०
२०	परचाको अंग ।	१०५	५१
२१	रसको अंग ।	२१	७०
२२	लामको अंग ।	२	७२
२३	हैरानको अंग ।	५	७२
२४	मेदीनरको अंग ।	४	७३
२५	जरनाको अंग ।	९	७३
२६	लौको अंग ।	१२	७४
२७	पतिव्रताको अंग ।	४२	७६
२८	व्यभिचारिणीको अंग ।	१०	८०
२९	आनदेवको अंग ।	१५	८१
३०	चितावनीको अंग ।	११५	८२
३१	मनको अंग ।	८५	९३
३२	अमनको अंग ।	११	१०२
३३	पवनको अंग ।	१०	१०३
३४	सूक्ष्म मारगको अंग ।	४५	१०४
३५	सूक्ष्म जन्मको अङ्ग ।	४	१०८
३६	आशाको अङ्ग ।	१८	१०९
३७	मायाको अङ्ग ।	६१	१११
३८	मानको अङ्ग ।	२५	११७
३९	दीनताको अङ्ग ।	११	११९
४०	अचानकको अङ्ग ।	४९	१२०
४१	कथनीको अङ्ग ।	१७	१२५
४२	करणीको अङ्ग ।	१०	१२७
४३	कामको अङ्ग ।	८१	१२८
४४	शीलको अङ्ग ।	१३	१३६
४५	लोभको अङ्ग ।	७	१३७
४६	संतोषको अङ्ग ।	५	१३८
४७	क्रोधको अङ्ग ।	७	१३८
४८	क्षमाको अङ्ग ।	४	१३९
४९	मोहको अङ्ग ।	१०	१४०
५०	विवेकको अङ्ग ।	११	१४१
५१	सहजको अङ्ग ।	८	१४२
५२	सांचको अङ्ग ।	२४	१४३
५३	भ्रम विध्वंसको अंग	२२	१४५
५४	भ्रमणको अङ्ग ।	१८	१४७
५५	भेषको अङ्ग ।	३८	१४९
५६	कुसंगतिको अङ्ग ।	१९	१५३
५७	सुसंगतिको अङ्ग ।	३५	१५४
५८	असाधुको अंग ।	६	१५८
५९	साधुको अंग ।	३३	१५९
६०	साक्षीभूतको अंग ।	२४	१६२
६१	साधु महातमको अंग ।	८४	१६४
६२	देखा देखीको अंग ।	६	१७२
६३	मध्यको अंग ।	३४	१७२
६४	समझावटको अंग ।	६	१७६
६५	विचारको अंग ।	२४	१७६
६६	असार ग्राहीको अंग ।	८	१७९
६७	सार ग्राहीको अंग ।	१०	१८०
६८	पीवपिछानको अङ्ग ।	३३	१८१
६९	विश्वासको अङ्ग ।	३१	१८४
७०	धीरजको अङ्ग ।	४	१८७
७१	विरक्ताईको अङ्ग ।	२१	१८८
७२	सामर्थाइको अङ्ग ।	३१	१९०

अनुक्रमणिका

नाम अंग	साखी	पृष्ठ.
७३ कुशब्दको अङ्ग ।	१०	१९३
७४ सुशब्दको अङ्ग ।	५२	१९४
७५ दुविधाको अंग ।	८	१९९
७६ ऐक्यताको अंग ।	१३	२००
७७ पछतावाको अङ्ग ।	४	२०१
७८ कालको अङ्ग ।	१०२	२०१
७९ सजीवनको अंग ।	२४	२११
८० चित्त कपटीको अंग ।	१७	२१४
८१ सम दृष्टिको अंग	६	२१५
८२ हेतप्रीतिको अंग ।	२१	२१६
८३ कायरको अंग ।	९	२१८
८४ शूरातनको अंग ।	९७	२१९
८५ व्यापकको अंग ।	९	२२८
८६ जीवन मृतकको अंग ।	४१	२२९
८७ जीवन मुक्तिको अंग ।	४	२३३
८८ मांस अहारीको अंग ।	४०	२३३
८९ अमल अहारीको अंग	११	२३८
९० अपारखको अंग ।	२८	२३९
९१ पारखको अंग ।	३१	२४२
९२ निन्दाको अंग ।	१३	२४५
९३ अनिन्दाको अंग ।	६	२४६
९४ साकटनरको अंग ।	२२	२४७
९५ दयाको अंग ।	१०	२४९
९६ कुदयाको अंग ।	७	२५०
९७ स्वादीको अंग ।	६	१५१
९८ अनस्वादीको अंग ।	७	२५२
९९ सुन्दरीको अंग ।	८	२५२
१०० उपजनको अंग ।	१३	२५३
१०१ कस्तुरिया मृगको अंग ।	१३	२५४
१०२ विनतीको अंग ।	२७	२५६
१०३ वेलिको अंग ।	१३	२५८
१०४ अविहड़को अंग ।	३	२६०
१०५ वेहदको अंग ।	२१	२६०
१०६ आत्मअनुभवको अंग ।	२५	२६२
१०७ अद्वैत ज्ञानको अंग ।	३९	२६५
१०८ कवीर परिचयकी साखी	३३९	२६९

इति अष्टोत्तर शत अंगकी साखीकी अनुक्रमणिका समाप्त ।

अन्य विषयाअनुक्रमणिका

आदि मंगल ।	२५	३०४
सायर बीजकपद ।		३०७
चरित्र ।	(साखीसार)	३०८

इति ।

सत्यान्नास्ति परो धर्म्मः

सत्य नाम

श्री सत्य कबीर विरचित

सत्यशब्द टकसार

(उपासना काण्ड)

अथ अंगकी साखी प्रारंभ

*

गुरुदेवको अंग ॥ १ ॥

*

कबीर–दण्डवत् गोविन्द गुरु, बन्दूँ अविजन सोय ।
पहले भये प्रणाम तिन, नमो जो आगे होय ॥ १ ॥
कबीर–गुरुको कीजे दण्डवत, कोटि कोटि परनाम ।
कीट न जानै भृंगको, यों गुरुकरि आप समान ॥२॥
कबीर–गुरु गोविंद कर जानिये, रहिये शब्द समाय ।
मिलै तौ दण्डवत् बन्दगी, नहिं पलपल ध्यान लगाय ३॥
कबीर–गुरु गोविंद दोनों खड़े, किसके लागों पांय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दिया बताय ॥ ४ ॥

कबीर—गुरु गोविंद दोऊ एक हैं, दूजा सब आकार ।
आपा मेटै हरि भजै, तब पावै करतार ॥ ५ ॥
कबीर—गुरु तो गरुवा मिला, ज्यों आंटेमें लौन ।
जाति पांति कुल मिट गया, नाम धरैगा कौन ॥६॥
कबीर—कबीर रामानंदको, सत गुरु भये सहाय ।
जगमें जुगति अनूप है, सो सब दई बताय ॥ ७ ॥
कबीर—सत गुरुके परतापतें, मिटि गयो सब दुख द्वंद ।
कहैं कबीर दुबिधा मिटी, गुरु मिलिया रामानंद॥८॥
कबीर—सत गुरुके उपदेशका, सुनिया एक विचार ।
जो सत गुरु मिलता नहीं, जाता यमके द्वार ॥ ९ ॥
कबीर—यम द्वारेमें दूत सब, करते ऐंचा तानि ।
उनते कभू न छूटता, फिरता चारों खानि ॥१०॥
कबीर—चारि खानिमें भरमता, कबहुं न लगता पार ।
सो फेरा सब मिटि गया, सतगुरुके उपकार ॥११॥
कबीर—पाछे लागा जात था, लोक वेदके साथ ।
पैंडामें सतगुरु मिला, दीपक दीन्हा हाथ ॥१२॥
कबीर—दीपक दीना तेल भरि, बाती दई अघट्ट ।
पूरा किया बिसाहनां, बहुरि न आवै हट्ट ॥१३॥
कबीर—भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हान ।
दीपक ज्योति पतंग ज्यों, परता आय निदान॥१४॥
कबीर—भली भई जो गुरु मिला, जाते पाया ज्ञान ।
घटही मांहिं चबूतरा, घटही मांहिं दिवान ॥१५॥

कबीर--ज्ञानप्रकाशी गुरु मिला, सो जिन विसरी जाय ।
जब गोविन्द कृपाकरी, तबगुरु मिलिया आय॥ १६॥
कबीर--बलिहारी गुरु आपना, घरी घरी सौबार ।
मानुषतें देवता किया, करत न लागी बार ॥१७॥
कबीर--गुरुको मानुष जो गिनै, चरणामृतको पान ।
ते नर नरकै जाहिगें, जन्म जन्म होय स्वान ॥१८॥
कबीर--गुरु मानुष करिजानते, ते नर कहिये अंध ।
होंय दुखी संसारमें, आगे यमका फंद ॥१९॥
कबीर--कबीर ते नर अंध हैं, गुरुको कहते और ।
हरिके रूठे ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥ २० ॥
कबीर--कबीरा हरिके रूठते, गुरुके शरने जाय ।
कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय ॥२१॥
कबीर--गुरुहैं बडे गोविंदते, मनमें देखु विचारि ।
हरि सिरजे ते वारहैं, गुरु सिरजे ते पार ॥ २२ ॥
कबीर--गुरुसों ज्ञान जो लीजिये, सीस दीजिये दान ।
बहुतक भोंदू बहिगये, राखि जीव अभिमान ॥२३॥
कबीर--गुरुकी आज्ञा आवई, गुरुकी आज्ञा जाय ।
कहैं कबीर सो संत है आवा गवन नसाय ॥२४॥
कबीर--लक्ष कोस जो गुरु बसै, दीजै सुरति पठाय ।
शब्द तुरी असवार है, क्षण आवै क्षण जाय ॥२५॥
कबीर--गुरु जो बसै बनारसी, शिष्य समुंदर तीर ।
कह कबीर बिसरै नहीं, जो गुण होय शरीर ॥२६॥

कबीर—गुरु पारस गुरु परस है, गुरु चंदन सुख बास ।
सतगुरु पारस जीवका,(जिन)दीया मुक्ति निवास ॥२७॥
कबीर—गुरु पारसको अंतरो, जानत हैं सब संत ।
वह लोहा कंचन करै, ये करि लेइ महंत ॥ २८ ॥
कबीर—गुरु समान दाता नहीं, जाचक शिष्य समान ।
तीन लोककी सम्पदा, सो गुरु दीन्हीं दान ॥२९॥
कबीर—पहले दाता शिष्य भया, तन मन अरपा सीस ।
पीछे दाता गुरु भये, नाम किया बखशीस ॥३०॥
कबीर—राम नामके पटतरै, देबेको कछु नाहिं ।
कहा लै गुरु संतोषिये, हवस रही मनमाँहि ॥३१॥
कबीर—मन दीया जिन सब दिया, मनके संग शरीर ।
अब देबेको क्या रहा, यों कथि कहै कबीर॥३२॥
कबीर—तन मन दिया तो क्या हुआ,निज मन दिया न जाय।
कहै कबीर ता दाससों, कैसे मन पतियाय ॥३३॥
कबीर—तन मन दीया आपना, निज मन ताके सङ्ग ।
कहै कबीर सदकै किया, सुनि सतगुरु परसङ्ग॥३४॥
कबीर—निज मन मानां नामसों, नजरि न आवै दास ।
कहै कबीर सो क्यों करै, राम मिलनकी आस॥३५॥
कबीर—निज मन तो नीचा किया, चरनकमलकी ठौर ।
कहै कबीर गुरु देव बिन, नजर न आवै और॥३६॥
कबीर—तन मन दिया तो भल किया, शिरका जासी भार।

जो कभू कहै मैं दिया, बहुत सहे शिर मार ॥३७॥
कबीर–तन मन ताको दीजिये, जाकै विषया नाहिं ।
आपा सबही डारिकै, राखै साहिब माहिं ॥३८॥
कबीर–शिष्य खाँड़ा गुरु मसकला, चढ़ै शब्द खरसान ।
शब्द सहे सन्मुख रहै, निपजे शिष्य सुजान ॥३९॥
कबीर–सतगुरु समान को सगा, सोधि समानी दात ।
हरिजी समान को हितु, हरिजन समानी जात ॥४०॥
कबीर–सतगुरु महिमा अनंत है, अनंत किया उपकार।
लोचन अनन्त उघारिया, अनन्त दिखावनहार ॥४१॥
कबीर--सब जग भरमा यों फिरै, ज्यों रामाँका रोज ।
सतगुरु सों सुधि भई, पाया हरिका खोज ॥४२॥
कबीर--थापन पाई थिर भया, सत गुरु दीन्ही धीर ।
कबीर हीरा बनीजिया, मान सरोवर तीर ॥४३॥
कबीर--कबीर हीरा बनीजिया, हिरदै प्रगटी खान ।
पारब्रह्म कृपा करी, सतगुरु मिले सुजान ॥४४॥
कबीर--निश्चय निधी मिलाय तत, सतगुरु साहस धीर ।
निपजीमें साझी घना, बाँटनहार कबीर ॥ ४५ ॥
कबीर--चैतन चौकी बैठिके, सतगुरु दीनी धीर ।
निर्भय होय निशंक भजु, केवल कहैं कबीर ॥४६॥
कबीर--थिति पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाय ।
अनन्य कथा जिव संचरी, हृदय रही समाय॥४७॥
कबीर–सतगुरु हमसों रीझिके, कह्यो एक परसंग ।

बरषे बादल प्रेमको, भीजि गया सब अंग ॥४८॥

कबीर--कबीर बादल प्रेमको, हम पर बरस्यो आय ।
अंतर भीजी आतमा, हरी भई बनराय ॥४९॥

कबीर--सतगुरुके सदके किया, दिल अपनेको सांच ।
कलियुग हमसे लरि परा, मुहकम मेरा बांच ॥५०॥

कबीर--सतगुरु शब्द कमान करी, बाहन लागे तीर ।
एकहि बाही प्रेमसों, भीतर बिधा शरीर ॥ ५१ ॥

कबीर--सतगुरु साँची सूरमा, शब्द जो बाह्या एक ।
लागतही भय मिटि गया, परा कलेजे छेक ॥५२॥

कबीर--सतगुरु साँचा शूरमा, नख शिख मारा पूर ।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥५३॥

कबीर--सतगुरु मेरा शूरमा, बेधा सकल शरीर ।
बान दुवासों फूटिया,(क्यों) जीवै दास कबीर॥५४॥

कबीर--सतगुरु मारा बान भरि, धरकर धीरी मूठि ।
अंग उघारैं लागिया, गई दुवासों फूटि ॥५५॥

कबीर--सतगुरु मारा तानिके, शब्द सुरंगे बान ।
मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गहूं कमान॥५६॥

कबीर--सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गई सब जेब ।
आप कहूं आसा कहूं, तसबी कहूँ कि तेब ॥५७॥

कबीर--सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निजठौर।
राम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और॥५८॥

कबीर--कर कमान सर साँधिकै, खैंचि जो मारा माँहिं ।

भीतर बिंधेसो मरिहै, जीवै पै जीवै नाहिं ॥५९॥

कबीर—जबही मारचा खैंचिके, तब मैं मूआ जानि ।
लागी चोट जो शब्दकी, गई कलेजे छानि ॥६०॥

कबीर—हँसै न बोलै उनमुनी, चञ्चल मेल्या मार ।
कह कबीर अन्तर बिंधा, सतगुरुका हथियार ॥६१॥

कबीर—गूँगा हूआ बावरा, बहरा हूआ कान ।
पांवन ते पिंगला भया, सतगुरु मारा बान ॥६२॥

कबीर—सतगुरु मारी प्रेमकी, रही कटारी टूटि ।
वैसी अनी न सालई, तैसी सालै मूठि ॥६३॥

टीका—अनी पहली प्रीति लागती । मूठ पिछली प्रीति ।

कबीर—दिलहीमें दीदार है, बादि झखै संसार ।
सतगुरु शब्दका मसकला, मुझे दिखावन हार ॥६४॥

कबीर—जो दीसे सो बिनसि है, नाम धरा सो जाय ।
कबीर सोही तत्व गह्यो, सतगुरु दीन्ह बताय ॥६५॥

कबीर—कुदरत पाई खरीसों, चित्त सों चित्त मिलाय ।
भँवर बिलम्बा कमल रस, अब कैसे उड़िजाय ॥६६॥

कबीर—रामनाम छाँड़ू नहीं, सतगुरु सीख दई ।
अविनासी सों परसिके, आत्मा अवर भई ॥६७॥

कबीर—चित चोखा मन निर्मला, बुधि उत्तम मति धीर ।
सो धोखा नहीं विरहिहीं, सतगुरु मिले कबीर ॥६८॥

कबीर—सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठे आय ।

पार उतारै औरको, अपनो पारस लाय ॥६९॥
कबीर–बिन सतगुरु बचिहै नहीं, फिर बूडै भवमांहि।
भवसागरकी त्राससे, सतगुरु पकड़े बाँहि ॥७०॥
कबीर–सतगुरु बड़े सराफ हैं, परखें खरा अरु खोट।
भवसागरते काढ़िके, राखैं अपनी ओट ॥७१॥
कबीर–कबीर महल बनाइया, ज्ञान गिलावा दीन्ह।
हरि देखनके कारने, शब्द झरोखा कीन्ह ॥७२॥
कबीर–जन कबीर बन्दन करि किस विधि कीजे सेव।
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरु देव ॥७३॥

इति गुरुदवको अंग ॥१॥

अथ गुरु पारखको अंग ॥२॥

कबीर–गुरू मिला नहिं शिष्य मिला, लालच खेला दाव।
दोनों बूड़े धारमें, चढ़ि पाथर की नाव ॥ १ ॥
कबीर–जाका गुरु है आंधरा, चेला खरा निरन्ध।
अन्धेको अन्धा मिला, पडा कालके फन्द ॥ २ ॥
कबीर–जानीता जब बूझा नहीं, बूझि न कीया गौन।
अन्धेको अन्धा मिला, पन्थ बतावै कौन ॥ ३ ॥
कबीर–जानोता जब बूझिया, पैंडा दिया बताय।
चलता चलता जहां गया, तहां निरंजन राय ॥४॥
कबीर–माइ मूड़ूं उस गुरुकी, जाते भरम न जाय।
आपुन बूड़ा धारमें, चेला दिया बहाय ॥ ५ ॥

कबीर--गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव ।
सोइ गुरू नित बन्दिये, शब्द बतावै दाव ॥ ६ ॥

कबीर--पूरे सतगुरुके बिना, पूरा शिष्य न होय ।
गुरु लोभी शिष्य लालची, दूनी दाझन सोय ॥ ७ ॥

कबीर--पूरा सहजे गुण करै, गुण ना आवै छेह ।
सायर पोषे शर भरै, दान न मांगै मेह ॥ ८ ॥

कबीर--पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
स्वाँग जतीका पहिरिकै, घर घर मांगी भीख ॥ ९ ॥

कबीर--सतगुरु तो ऐसा मिला, ताते लोह लुहार ।
कसनी दे कंचन किया, तायलिया ततसार ॥१०॥

कबीर--पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
निकसा था हरि मिलनको, चालि न सक्या बीख॥ ११॥

कबीर--सतगुरु मिलि निरभय भया, रही न दूजी आस ।
जाय समाना शब्दमें, राम नाम विश्वास ॥१२॥

कबीर--गुरू किया है देहका, सतगुरु चीन्हां नाहिं ।
भव सागरके जालमें, फिरि फिरि गोता खाहिं ॥१३॥

कबीर--जागुरु तें भ्रम ना मिटे, भ्रांति न जीवकी जाय ।
गुरु तो ऐसा चाहिये, देई ब्रह्म बनाय ॥१४॥

कबीर-कनफुका गुरु हद्दका, बेहदका गुरु और ।
बेहद का गुरु जब मिले, लहै ठिकाना ठौर ॥१५॥

कबीर-गुरूको तो गम्य नहीं, पाहन दिया बताय ॥

सिख सोधे बिन सेइया, पारिन पहुँचा जाय ॥१६॥

कबीर–सत गुरु नेतो गम कही, भेद दिया अरथाय ।
सुरति कँवल के अन्तरै, निराधार पद पाय ॥१७॥

कबीर–गुरू नाम है गम्यका, शिष्य सीखले सोय ॥
बिनु पद ई मरजाद बिन, गुरू शिष्य नहिं कोय ॥१८॥

कबीर–भेरै चढिया झाँझरे, भवसागरके माँहि ।
जो छाँडे तो बांचि हैं, नातर बूडे जाँहि ॥१९॥

टीका–ज्ञान विवेक रहनीहीन गुरु सोई झांझरा भेरा (किशती) भेरा काया । तीजा भेरा संसार । इनका त्याग करै सो उरे पार ।

कबीर–बूडे थे पर ऊबरे, गुरुकी लहरि चमक्क ।
भेरा देखा झांझरा, उतरी परा फरक्क ॥२०॥

कबीर–जाका गुरु है गिरही, गिरही चेला होय ।
कीच कीच को धोवते, दाग न छूटे कोय ॥२१॥

टीका–गृह शरीर अथवा शरीर सम्वन्धी संसार–अर्थात् शरीरमें जिसकी आत्म बुद्धि है वह गिरही है । ऐसे देह आत्मवादी के शरणमें जाकर सत्य की प्राप्ति होनी वैसे ही निष्फल है जैसे, कीचसेही कीच को धोना ।

कबीर–कुमति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय ।
जनम जनमका मूरचा, पलमें डारै धोय ॥२२॥

कबीर–गुरुआतो ससता भया, पैसा केर पचास ।
राम नाम धन बेचिकै, करै शिष्यकी आस ॥२३॥

कबीर–गुरुवातो घर घर फिरै, दीक्षा हमरी लेहु ।
कै बूडो कै ऊछलौ, टका पर्दनी देहु ॥२४॥

कबीर–घर में घर दिखलायदे, सो [illegible] चतुर सुजान ।

पाँच शब्द धुनकार धुन, बाजै शब्द निसान ॥२५॥
कबीर-छीपा रंगे सुरंग रंग, नीरस रस कर लेय ।
ऐसा गुरु पै जो मिलै, शिष्य मोक्ष पुनि देय ॥२६॥
कबीर-झूठे गुरुकी पक्षको, तजत न कीजे बार ।
पार न पावै शब्दका, भरमें बारंबार ॥२७॥
कबीर-सांचे गुरुके पक्ष में, मनको दे ठहराय ।
चंचलते निश्चल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥२८॥
कबीर-गुरु सिकिलीगर कीजिये, ज्ञान मसकला देइ ।
मनका मैल छुडाईके, चित्त दर्पण करि लेइ ॥२९॥
कबीर-मैं उपकारी ठेठका, सतगुरु दिया सुहाग ।
दिल दरपन दिखलायके, दूर किया सब दाग॥३०॥

अथ गुरुनिर्दोषताको अंग ॥ ३ ॥

कबीर-गुरू बिचारा क्या करै, जो शिष्ये माहीं चूक ।
भावै ज्यों परमोधिये, बांस बजाई फूंक ॥ १ ॥
कबीर-सत गुरु का सारा नहीं, शब्द न लागा अंग ।
कोरा रहिगा सीदरा, सदा तेलके संग ॥ २ ॥
कबीर-सतगुरु मिले तो क्या भया, जो मन परिगया भोल ।
कपास बिनाया कापडा, क्या करै बिचारी चोल ॥३॥
कबीर-गुरू बतावै साधुकों, साधु कहैं गुरु पूजि ।
अरस परसके खेल में, भई अगमकी सूझि ॥ ४ ॥

अथ निगुरा नर को अंग ॥ ४ ॥

कबीर–जो निगुरा सुमिरन करै, दिन में सौ सौं बार ।
नगर नायका सत करै, जरै कौनकी लार ॥ १ ॥
कबीर–गुरु बिन अहि निस नाम ले, नहीं संतका भाव ।
कहै कबीर ता दासका, परै न पूरा दाव ॥ २ ॥
कबीर–गर्भ योगेश्वर गुरु बिना, लागे हरिकी सेव ।
कहै कबीर वैकुण्ठते, फेर दिया शुकदेव ॥ ३ ॥
कबीर–गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान ।
गुरु बिन दान हराम है, पूछो वेद पुरान ॥ ४ ॥
कबीर–निशि अँधियारी कारने, चौरासी लख चन्द ।
गुरु बिन एते उदय हों, तौहू सुदृष्टिहि मन्द ॥५॥
कबीर–चौसठ दीवा जोयके, चौदह चन्दा मांहि ।
तिहिं घर किसका चांदना, जिहिं घर सदगुरु नाहिं६

टीका–चौंसठ दीवा चौसठ (योगिनी का) कला जान, चौदह चन्द चौदह विद्या निधान हो । परन्तु गुरु ज्ञान के बिन हृदय में अँधेराही है ।

साखी

कबीर–कोटिक चन्दा ऊगवै, सूरज कोटि हजार ।
सतगुरु मिलिया बहिरे, दीसै घोर अँधियार ॥७॥

टीका, चन्दा क्रोडों प्रकारकी सांसारिक विद्या ।

कबीर–दारुकमें पावक वसै, घुनका घर किया जाय ।
यों हरि संग बिमुख निगुरुको, काल ग्रासिही खाय॥८॥
कबीर–पूरेको पूरा मिलै, पूरा परसी दाव ।

निगुरा तो कुवट चलै, जब तब करै कुदाव ॥९॥

कबीर-सावन छूटा मेघ ज्यों, बूँद परी असमान ।
सब जग तो गुरुमुख भया, गुरु नाहिं लागे कान ॥१०॥

कबीर-गुरू मिला तब जानिये, मिटै मोह तनताप ।
हरष शोक व्यापै नहीं, तब हरि आपै आप ॥११॥

कबीर-जो कामिनी परदा रहै, सुने न गुरु मुख बात ।
सोतो होगी शूकरी, फिरै उघारे गात ॥ १२ ॥

टीका--कामिनी मति बुद्धि ।

कबीर-संगति भई तो क्या भया, हिरदय भयो कठोर ।
नौ नेजा पानी चढै, तऊ न भीजै कोर ॥१३॥

कबीर-कबिरा हृदय कठोरके, शब्द न लागै सार ।
सुधि बुधिके हृदय विधे, उपजै ज्ञान बिचार ॥१४॥

कबीर-झिरमिर झिरमिर बरसिया, पाहन ऊपर मेंह ।
माटी गलि पानी भई, पाहन वाही तेह ॥ १५ ॥

कबीर--हरिया जानै रूखडा, उस पानीका नेह ।
सूखा काठ न जानि है, कितहूं बूढ़ा मेह ॥ १६ ॥

कबीर-पारब्रह्म बूडो मोतिया, झड़ी बांधि सिखर ।
सुगरां सुगरां चुनिलिया, चूक परी निगुर ॥ १७ ॥

कबीर-कबिरा हरिरस बरसिया, गिरिपर्वत शिखराय ।
नीर निवानूं ठाहरै, नाबह छापर डाय ॥१८॥

कबीर-कबिरा मूढक प्रानियां, नख शिख पाखर आहि ।

बाहनहारा क्या करै, बान न लागै ताहि॥१९॥

कबीर--बेकामी कों सिरजिनिवावै,सांटी खोवै भालि गमावै।
दासकबीर ताहिको भावै,रारि समै सनमुख सरसावै२०

कबीर–पसुवा सौं पानो परचौ, रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगगी, भावै दूना बीज॥२१॥

कबीर–चन्दन परसा बावना, बिष ना तजै भुवंग।
वा चाहै गुन आपना, कहा करै सतसंग॥२२॥

कबीर–ऊंचे कुलके कारने, बांस बध्यो हंकार।
चन्दन बास बेधे नहीं, जारचो सब परिवार॥२३॥

कबीर–कबिरा चंदन के भेरै, नीम्ब भी चन्दन होय।
बूडचो बांस बड़ाइया, यौं जनि बूड़ो कोय॥२४॥

कबीर–कबिरा लहरी समुद्रकी, मोती बिखरे आय।
बगुला परख न जानई,हंसा चुगि चुगि खाय॥२५॥

कबीर–सारा लशकर ढूँढिया, सारदूल नहिं पाय।
गीदड को शर बाहिके, नामें काम गमाय॥२६॥

अथ गुरु शिष्य हेराको अंग॥ ९॥

कबीर–ऐसा कोऊना मिला, हमको दे उपदेश।
भवसागर में बूड़ता, कर गहि काढे केस॥ १॥

कबीर–सतगुरु हम सों रीझिकै, एक दिया उपदेस।
भवसागरते बूडता, कर गहिकाढे केस॥ २॥

कबीर–ऐसा कोई ना मिला, जासों रहिये लाग।

सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥ ३ ॥

कबीर—कबीर ऐसा तो सतगुरु मिला, जासों रहियालाग ।
सब जग तो शीतल भया, मिटी आपनी आग ॥४॥

कबीर—गुरु तुम्हारा कहाँ हैं चेला कहाँ रहाय ।
क्यों कर तो मिलना भया, क्यों बिछुरैं आवैजाय ॥५॥

कबीर—गुरू हमारा गगनमें, चेला है चित माँहि ।
शब्द सुरति में लीनहै, बिछुरत कबहूँ नाँहि ॥ ६ ॥

कबीर—ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जलाय ।
पाँचो लरिका पटकि करि, रहै राम लौ लाय ॥ ७ ॥

कबीर—हम घर जारा आपना, लिया मुराडा हाथ ।
अब घर जारों तासुका, जो चलै हमारे साथ ॥ ८ ॥

कबीर—ऐसा कोई नामिला, समुझे सैन सुजान ।
ढोल बाजता ना सुने, सुरति बिहूना कान ॥ ९ ॥

कबीर—ऐसा कोई ना मिलै, हमको ले पहिंचानि ।
अपना करी कृपा करै, ले उतार मैदान ॥१०॥

कबीर—ऐसा कोई ना मिलै, राम भजन का मीत ।
तन मन सौंपे मृगज्यों, सुनै वधिकका गीत ॥११॥

कबीर—ऐसा कोई ना मिलै, जासों कहूँ निसंक ।
जासों हिरदाकी कहूँ, सो फिरि मांडे कंक ॥१२॥

कबीर—ऐसा कोई नामिलै, जासों कहूं दुख दुख रोय ।
जासों कहिये भेदकी, सो फिर बैरी होय ॥१३॥

कबीर–ऐसा कोई ना मिला, सब विधि देइ बताय ।
शून्य मंडलमें पुरुष है, ताहि रटूँ लौलाय ॥१४॥
कबीर–हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाँहि ।
ऐसा कोई ना मिला, पकड़ि छुड़ावै बांहि ॥१५॥
कबीर–तीन सनेही बहु मिला, चौथा मिला न कोय ।
सबहि पियारे रामके, बैठे परबस होय ॥१६॥

टीका–तीन सब प्रकार की त्रिपुटी अर्थात् त्रिगुणात्मक शरीर उपलक्ष सब जगतकाही स्नेही मिलता है परंतु सत्यपद आत्मपदके स्नेही नहीं मिलते ।

कबीर–जैसा ढूंढतमें फिरूँ, तैसा मिलै न कोय ।
तत्ववेता तिरगुन रहित, निरगुनसों रत होय ॥१७॥
कबीर–सारासूरा बहु मिले, घायल मिला न कोय ।
घायलको घायल मिलै, राम भक्ति दृढ होय ॥१८॥
कबीर–प्रेमी ढूंढत मैं फिरूँ, प्रेमी मिलै न कोय ।
प्रेमी सों प्रेमी मिलै, सब विष अमृत होय ॥१९॥
कबीर–माया डोलै मोहती, बोलै कडुआ बैन ।
कोई घायल ना मिलै, सांई हिरदा सैन ॥ २० ॥
कबीर–सर्पहि दूध पिलाइये, सोई विष हो जाय ।
ऐसा कोई ना मिले, आपेही विष खाय ॥ २१ ॥
कबीर–नादी बादी बहु मिले, करत कलेजे छेद ।
कोइ तख्त तरेका ना मिलै, जासों पूछूँ भेद ॥२२॥
कबीर–तख्य तरेकी सो कहै, तख्त तरेका होय ।

मंझ महलकी को कहै, बांका परदा सोय ॥२३॥
कबीर-मंझ महलकी गुरु कहै, देखा सब घर बार ।
कूंची दीन्ही हाथ कर, परदा दिया उघार ॥२४॥
कबीर-बांका परदा खोलिकै, सनमुख लै दीदार ।
बास सनेही सांइयां, आदि अंतका यार ॥ २५ ॥
कबीर-आदि अंत सबको नहीं, निज बानेका दास ।
सब संतन मिलि यों रमें, ज्यों पुहुपनमें बास ॥२६॥
कबीर-पुहुपन केरी बास ज्यों, व्यापि रह्या सब ठांहि ।
बाहिर कबहू न पाइये, पावै संतों मांहि ॥ २७ ॥
कबीर-प्रगट कहूँ तो मारिया, परदा लखै न कोय ।
सहना छिपा पयालमें, कोकहि वैरी होय ॥२८॥
कबीर-या पराल को फूँकिये, तनियक लाई आग ।
सहना पाया ढूँढता, धन्य हमारा भाग ॥२९॥

टीका-पराल प्रकृति माया. सहना आत्मा सतगुरु । दूसरा सहना साधु ।

कबीर-बोलता कहां बसै कहु, केतिक रूप सरूप ।
कै पँखुरी की सुरति है, केतिक वस्तु अनूप ॥३०॥
कबीर-बोलता मध्येमें बसै, हरा वरन स्वरूप ।
सात पंखुरी सुरति है-किंचित वस्तु अनूप ॥३१॥
कबीर-वस्तु कहूँ ढूंढे कहीं; किहिं विधि आवै हाथ ।
कहै कबीर तब पाइये, भेदी लीजे साथ ॥ ३२ ॥
कबीर-भेदी लीन्हां साथकरि, दीन्ही वस्तु बताय ।

कोटि जनमका पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥३३॥

कबीर–विरछा पूछै बीज कों, बीज वृक्षके मांहि ।
जीव जो ढूँढे ब्रह्मको, ब्रह्म जीवके पांहि ॥३४॥

कबीर–डाल जो ढूँढे मूल को, मूल डालके मांहि ।
आप आपकों सब चले, (कोई) मिलै मूल सों नाहिं॥३५

कबीर–मूल कबीरा गहि चढे, फल खाये भरि पेट ।
चौरासी की गम्य नहीं, ज्यों जाने त्यों लेट ॥३६॥

कबीर–आदि हती सब आपमें, सकल हती ता मांहि ।
ज्यों तरवरके बीजमें, डार पात फल छांहि ॥३७॥

कबीर–जिन ढूँढ्या तिन पाइयां, गहरे पानी पैठि ।
मैं बौरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठि ॥३८॥

कबीर–हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय ।
बुन्द समानी समुद्रमें, सो कित हेरी जाय ॥३९॥

कबीर–हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय ।
समुद्र समाना बुन्दमें, सो कित हेरा जाय ॥४०॥

कबीर–बुन्द समानी समुद्रमें, यह जाने सब कोय ।
समुद्र समाना बुन्दमें, बूझै विरला कोय ॥४१॥

कबीर–समुद्र समाना बुन्दमें, गोखुरके अस्थान ।
इच्छा रूप समाइया, कबहुँ न पावै जान ॥४२॥

कबीर–कहाँ बुन्द सायर मिली, किहि विधि कौन सनेह ।
यह मनमें संशय भई, समझि अरथ काहि देह ॥४३॥

कबीर–गगन बुन्द सायर मिली, उत्तम परम सनेह ।
मनकी संशय दूरि करि, समझि अरथ यह लेह ॥ ४४ ॥
कबीर–एक समाना सकलमें, सकल समाना नाहिं ।
कबीर समाना बूझमें, तहाँ दूसरा नाहिं ॥ ४५ ॥

अथ सेवकको अंग ॥ ६ ॥

कबीर–सेवक सेवामें रहै, अंत कहूं नाहिं जाय ।
दुख सुख शिर ऊपर सहै, कहैं कबीर समुझाय ॥ १ ॥
कबीर–सेवक सेवामें रहै, सेवक कहिये सोय ।
कहै कबीर सेवा बिना, सेवक कबहुँ न होय ॥ २ ॥
कबीर–सेवक मुखे कहावई सेवामें दृढ नाहिं ।
कहै कबीर सो सेवका, लख चौरासी माहिं ॥ ३ ॥
कबीर–सेवक सेवामें रहे, सेवकरे दिन राति ।
कहै कबीर कुसेवकहि, सन्मुख ना ठहराति ॥ ४ ॥
कबीर–फल कारन सेवाकरे, निशि दिन जांचे राम ।
कहै कबीर सेवक नहीं, चाहे चौगन दाम ॥ ५ ॥
कबीर–राम धनी जाचैं नहीं, सेव करे दिनरात ।
कहै कबीर ता सेवकै, काल करे नहिं घात ॥ ६ ॥
कबीर–सेवक स्वामी एक मत, मतमें मत मिलिजाय ।
चतुराई रीझे नहीं, रीझे मनके भाय ॥ ७ ॥
कबीर–सब कुछ गुरुके पास है, पाइय अपुनै भाग ।
सेवक मन सों प्यार है, निशि दिन चरणों लागि ॥ ८ ॥

कबीर–शिष्य को ऐसा चाहिये, गुरुको सर्वस देय ।
गुरु को ऐसा चाहिये, शिष्यका कछू न लेय ॥ ९ ॥
कबीर–सतगुरु शब्द उलंघि करि, जो कोई शिष्य जाय।
जहाँ जाय तहाँ काल है कहै कबीर समझाय ॥१०॥
कबीर–सतगुरु बरजै शिष्य करै, क्यों कर बाचै काल ।
दुहुं दिशि देखत बहि गया, पानी फूटी पाल ॥११॥
कबीर–सतगुरु कहै सो शिष्य करे, सब सिद्ध कारज होय ।
अमर अभय पद पाइये, काल न झांकै कोय ॥१२॥
कबीर–आस करै वैकुण्ठकी, बांछित है तिहु काल ।
शुक्र कही बलि ना करी, तिहिते गयो पताल ॥१३॥
कबीर–साहिबको भावै नहीं, सो हमसों जनि होय ।
सतगुरु लाजै आपना, साधु न मानै कोय ॥१४॥
कबीर–द्वार धनीके परि रहै, धका धनीका खाय ।
कबहुक धनी निवाजि है, जो दर छाड़ि न जाय १५॥
कबीर–साहबके दरबारमें, कमी काहुकी नाहिं ।
बन्दा मौज न पावही, चूक चाकरी मांहि ॥१६॥
कबीर–धूम धाम सहता रहै, कबहु न छाडे संग ।
पाहा बिना लागै नहीं, कपड़ा के बहुरंग ॥१७॥
कबीर–सेवक कुत्ता रामका, मोतिया वाका नाव ।
डोरी लागी प्रेमकी, जित खैंचे तित जाव ॥१८॥
कबीर–तू तू करै तो बाहिरे, दुर दुर करै तो जाव ।

ज्यौं हरि राखै त्यौं रहौ, जो देवे सो खाय ॥१९॥

कबीर—मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागैगा मोर ॥ २० ॥

कबीर—तेरा तुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो मोर ।
मेरा मुझको सौंपता, जीव धरकैगा तोर ॥२१॥

अथ दासातनको अंग ॥ ७ ॥

कबीर—दासातन हृदये नहीं, नाम धरावै दास ।
पानीके पीये बिना, कैसे मिटै पियास ॥ १ ॥

कबीर—नांव धरावै दास सो, दासा तन में लीन ।
कहै कबीर लौलीन बिन, स्वान बुद्धि कहि दीन॥२॥

कबीर—दासातन हृदय बसै, साधन सों आधीन ।
कहै कबीरा दाससो, दास लक्ष लौलीन ॥ ३ ॥

कबीर—स्वामी होना सोहरा, दोहरा होना दास ।
गाडर आनी ऊनको, बाधी चरै कपास ॥ ४ ॥

कबीर—कबीर हरि सबको भजै, हरिको भजै न कोय ।
जब लगि आस शरीरकी, तब लग दास न होय ॥५॥

कबीर—निरबन्धन बंधा रहै, बंध्या निरबन्ध होय ।
कर्म करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥ ६ ॥

कबीर—भुक्ति मुक्ति मांगू नहीं, भक्ति दान दै मोहि ।
और कोई जाचूं नहीं, निस दिन जाचूं तोहि ॥ ७ ॥

---

१ श्रीकृष्ण भगवान् गीताके तीसरे अध्यायके ६ ठवें और सातवें श्लोकमें कहते हैं ।

श्लोक ६ अ० ३.

कर्मेंद्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

टीका—कर्मे इन्द्रियोंको बाहरसे रोक करके, मनसे शब्दादि विषयोंका स्मरण करता हुआ जो बैठा है (त्यागी बना है) कर्म्मोंका अनुष्ठान नहीं करता सो मलिन अन्तःकरण वाला, कर्म त्यागी, मिथ्याचारी है अर्थात् ऐसा त्यागी दंभी और कपटी है ।

ऐसेही त्यागी के हेतु गुरु साहब इस साखीमें कहते हैं-"निर्बन्धन बंधा रहै ।" आगेका तीन चरण निचले श्लोकका अर्थ सूचना करता है ।

श्लोक ७ अ० ३.

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्म्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

टीका-जो ज्ञान इंद्रियोंको मन करके विषयोंसे रोककर कर्म इंद्रियों करके कर्म्म योगको आसक्ति रहित हुआ करता है, सो श्रेष्ठ है । गुरु साहब कहते हैं जो इस प्रकारका प्रवृत्तिवाला पुरुष है वह अवश्य मुक्त होता है और उपरोक्त मिथ्या वैरागी अवश्य बारंबार संसारमें बँधा हुआ जन्म मरनको प्राप्त होता है ।

कबीर--राम धनी सिर पर खड़ा, कहा कमी तोहि दास ।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करै, मुक्ति न छाडे पास ॥८॥

कबीर--दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल ।
पलक एकमें परगटे पलमें करै निहाल ॥ ९ ॥

अथ यतीको अंग ॥८॥

कबीर--सदा कृपाल दुख परहरन, बैर भाव नहिं दोय ।
क्षमा ज्ञान सतं भाषिये, हिंसा रहित जो सोय ॥१॥

कबीर--दुख सुख एक समान है, हरष शोक नहिं व्याप ।

पर उपकारि निष्कामता, उपजै छोह न ताप ॥२॥

कबीर--इंद्रिय दमन निगरह करन, हृदया कोमल होय ।
सदा शुचि आचारसो, रहि विचारसों सोय ॥३॥

कबीर--और देव नहिं चित्त बसै, बिन प्रतीति भगवान ।
मिलि अहार भोजन करै, तृष्णा चलै न जान॥४॥

कबीर--सदा रहै संतोषमें, धरम आप दृढ़ धारि ।
आश एक भगवानकी, और न चित्त बिचारि ॥५॥

कबीर--सावधान औ शीलता, सदा प्रफुल्लित जानि ।
निर्विकार गम्भीर मत, धीरजवान बखानि ॥६॥

कबीर--षटहिं बिकार शरीरके, तिनको चित्त न लाय ।
शोक मोह प्यासहिं क्षुधा, जरा मृत्यु नशिजाय॥७॥

कबीर--मान अपमान न चित धरै, औरन को सनमान ।
जो कोई आशा करै, उपदेशै तेहि ज्ञान ॥ ८ ॥

कबीर--कपट कुटिलता छाँडिकै, सबसों मित्रहि भाव ।
कृपावान सम ज्ञानवंत, बैर भाव नहिं काव ॥ ९ ॥

कबीर--निश्चय भक्ति अरु दृढ़मती, ये सब लक्षण जान ।
सोइ साधु है जगतमें, जो यह लक्षणवान ॥१०॥

कबीर--ऐसा साधुन खोजिकै, रहिये चरणों लाग ॥
मिटै जनम की कल्पना, जाके पूरण भाग ॥११॥

अथ सतीको अंग ॥ ९ ॥

कबीर--शीलवंत शूर ज्ञान मत, अति उदार चित होय ।
लज्जावान अति निछलता, कोमल हिरदय सोय॥ १॥

कबीर--दयावंत धरमके ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
संतोषी सुखदायकरु, सेवक परम सुजान ॥ २ ॥

कबीर--चतुर विवेकी धीरमत, क्षमावंत बुद्धिवान ।
आज्ञावान परमत लिया, मुदित प्रफुल्लित जान ॥ ३॥

कबीर--ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहूँ सों होत ।
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत ॥ ४ ॥

कबीर--षट दर्शन कों प्रेम करि, असन वसन सो पोष ।
सेवा करे हरिजननकी, हर्षित परम संतोष ॥ ५ ॥

कबीर--ऐसी भांति जो सती है, सो निज मुक्ति प्रमान ।
मुक्ति देत संसारको, सोई सती तू जान ॥ ६ ॥

कबीर--यह सब लक्षण चित धरै, अपलक्षण सब त्यागि ।
सावधान सम ध्यान है, हरि चरणन रहे लागि ॥७॥

कबीर--अब तौ ऐसी ह्वै परी, मन अति निर्मल कीन्ह ।
मरनेका भय छांडिकै, हाथ सिधोंरा लीन्ह ॥८॥

कबीर--ढोल दमामा बाजिया, शब्द सुना सब कोय ।
जो सल देखि सती भगै, दो कुल हाँसी होय ॥९॥

कबीर--सती जलनकों नीकसी, चित्त धरि एक बिवेख ।
तन मन सौंपा पीवकों, अंतर रही न रेख ॥१०॥

कबीर--सती जलनकों नीकसी, पिउका सुमिरि सनेह ।
शब्द सुनत जिय नीकसा, भूलि गई वा देह ॥११॥
कबीर--सती शूर तन ताइया, तन मन कीया घान ।
दिया महोला पीवकों, तब मरहट करै बखान ॥१२॥
कबीर--सती बिचारी सत किया, काटों सेज बिछाय ।
लै सूती पिय आपनां, चहुँ दिशि अग्नि लगाय॥१३॥
कबीर--सती पुकारें सल चढी, सुनु रे मीत मसान ।
लोग बटाऊ सब गये, हम तुम रहे निदान॥ १४ ॥
कबीर--सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड ।
साधू भीख न मांगई, जो मांगें सो भाँड ॥१५॥
कबीर--हूं तोहि पूछों हे सखी, जीवत क्यों न जराय ।
मूवा पीछै सत करैं, जीवन क्यों न कराय ॥१६॥
कबीर--कबिरा सतियाँ कुसयाँ, जरे मरेकी लार ।
सतिया सोई जानिये, जरे संभारि संभारि ॥१७॥

अथ उपदेशको अंग ॥ १० ॥

कबीर--अंतर याहि बिचारिया, साखी कहो कबीर ।
भवसागरमें जीव है, सुनिकै लागे तीर ॥ १ ॥
कबीर--काल काल तत्काल है, बुरा न करिये कोय।
अनबावे लुनता नहीं, बावै लुनता होय ॥ २ ॥
कबीर--जो तोको काँटा बुवै, ताको बो तू फूल ।
तोहि फूलके फूल हैं, वाको हैं त्रिशूल ॥ ३ ॥
कबीर--दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय ।
बिना जीवकी स्वाँससे, लोह भस्म ह्वै जाय ॥ ४ ॥

कबीर–कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥ ५ ॥

कबीर–या दुनियाँ में आइके, छाड़ि देइ तू ऐंठि ।
लेना होय सो लेइले, उठी जातु है पैठि ॥ ६ ॥

कबीर–खाय पकाय लुटायले, यह मनुवा मिजमान ।
लेना होय सो लेइलै, यही गोय मैदान ॥ ७ ॥

कबीर–लेना होय सो लेइलै, कही सुनी मत मान ।
कही सुनी युग युग चली, आवागमन बँधान ॥ ८ ॥

कबीर–सतहीमें सत बाँटई, रोटीमें ते टूक ।
कहैं कबीर ता दासको, कबहुँ न आवै चूक ॥ ९ ॥

कबीर–देह धरेका गुण यही, देह देह कछु देह ।
बहुरि न देही पाइये, अबकी देह सो देह ॥ १० ॥

कबीर–कहै कबीर पुकारिके, दोय बात लखिलेय ।
कै साहबकी बंदगी, कै भूखोंको कछु देय ॥ ११ ॥

कबीर–कहै कबीरा देइ तू, जब लगि तेरी देह ।
देह खेह हो जायगी, तब कौन कहेगा देह ॥१२॥

कबीर–हाड़ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देह ।
अकल बड़ी उपकार कर, जीवनका फल येह ॥१३॥

कबीर–गाँठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह ।
आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेह ॥ १४ ॥

कबीर–इहां बिसाहनकरि चलो, आगै बिषमी बाट।
स्वर्ग बिसाहन ना मिलै, ना बनिया ना हाट॥१५॥

कबीर—धर्म किये धन ना घटै, नदी न घट्टे नीर ।
अपनी आखें पेखिये, यों कथि कहै कबीर ॥ १६ ॥
कबीर—कबीर तहां न जाइये, जहाँ जो कुलको हेत ।
साधुपनौ जानै नहीं, नाम बाप को लेत ॥ १७ ॥
कबीर—कबीर तहाँ न जाइये, जहां सिद्ध को गाम ।
स्वामी कहै न बैठना, फिरि फिर पूछै नाम ॥ १८ ॥
कबीर—इष्ट मिलै और मन मिलै, मिलै सकल रस रीति ।
कहै कबीर तहँ जाइये, यह संतन की प्रीति ॥ १९ ॥
कबीर—ऐसी बानी बोलिये, मनका आपा खोय ।
औरन को शीतल करै, आपुहिं शीतल होय ॥२०॥
कबीर—जगमें बैरी कोइ नहीं, जो मन शीतल होय ।
या आपा कों डारि दै, दया करै सब कोय ॥२१॥
कबीर—कहते को कह जान दै, गुरु की सीख तु लेय ।
साकट एक स्वानको, फेरि जवाब न देय ॥२२॥
कबीर—हस्ती चढिये ज्ञानके, सहज दुलीचा डारि ।
स्वान रूप संसार है, भूसनदे झकमारि ॥ २३ ॥
कबीर—कबिरा काहेको डरै, सिरपर सिरजनहार ।
हस्ती चढि डुरिये नहीं, कूकर भुसे हजार ॥२४॥
कबीर—आवत गारी एकहै, उलटत होय अनेक ।
कहै कबीर नहिं उलटिये, वाही एककी एक ॥२५॥

सोरठा

कबीर--गारी मोटा ज्ञान, जो रंचक उरमें जरै ॥
कोटि सँवारे काम, बैरी उलटि पांयन परै ॥२६॥

साखी

कबीर--गारीहीसों ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच ।
हारि चलै सो साधु है, लागि मरे सो नीच ॥२७॥
कबीर--हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार ।
हारा तौ हरि सों मिलै, जीता यमकी लार ॥२८॥
कबीर--जेता घट तेता मता, घट घट और स्वभाव ।
जा घट हार न जीत है, ता घट ब्रह्म समाव ॥२९॥
कबीर--गीरही तो चिन्ता घनी, बैरागी तो भीख ।
दोनों का तिहिंबिच जीव है, देहु न संतों सीख॥३०॥
कबीर--बैरागी तो विरक्त भला, गिरही चित्त उदार ।
दोऊ चूकि खाली परै, ताको वार न पार ॥३१॥
कबीर--घरमें रहै तो भक्ति करु, नातर करु बैराग ।
बैरागी होय बन्धन करै, ताका बड़ा अभाग ॥३२॥
कबीर-धारा तो दोही भली, गिरही कै बैराग ।
गिरही दासातन करै, बैरागी अनुराग ॥ ३३ ॥
कबीर-अजर धान्य अतीत का, गृही करै जो अहार ।
निश्चयही हो दरिद्री, कहै कबीर बिचार ॥ ३४ ॥
कबीर-जैसा अन्न जल खाइये, तैसाही मन होय ।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥ ३५ ॥

कबीर–माँगन मरन समान है, मति कोई माँगो भीख।
मांगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥३६॥
कबीर–माँगन मरन समान है, सीख दई मैं तोहि।
कहै कबीर सतगुरु सुनो, मति रे मगावो मोहि॥३७॥
कबीर–उदर समाता माँगिलै, ताको नाहीं दोष।
कहे कबीर अधिका गहे, ताका गती न मोष॥३८॥
कबीर–उदर समाता अन्न लै, तनहि समाता चीर।
अधिकहिं संग्रह ना करै, तिसका नाम फकीर॥३९॥
कबीर–अनमाँगा मिले आति भला, माँगि लिया नहिं दोष।
उदर समाता कहि मिले, तो निश्चय पावै मोष॥४०॥
कबीर–भीख तीन प्रकारकी, सुनहु संत चित लाय।
दास कबीर प्रगट कहै, भिन्न भिन्न अरथाय॥४१॥
कबीर–अनमाँग्या उत्तम कह्यो, मध्यम माँगि जो लेय।
कहै कबीर निकृष्ट सो, परघर धरना देय॥४२॥
कबीर–उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन।
कहै कबीर ताके गहे, महा परम सुख चैन॥४३॥
कबीर–भँवर भीख मध्यम कही, सुनौ संत चितलाय।
कहै कबीर जाकों गही, मध्यम माँहि समाय॥४४॥
कबीर–भीखहिं गदहाकी कहूँ, निकृष्ट कहावै सोय।
कहै कबीर इस भीखमें, मुक्ति न कबहूँ होय॥४५॥
कबीर–कथा कीरतन कलि विषें, भवसागरकी नाव।
कहै कबीर या जगतमें, नाहीं और उपाव॥४६॥

कबीर–कथा कीरतन करनकी, जाके निसि दिन रीति।
कहै कबीर वा दास सों, निश्चय कीजे प्रीति ॥४७॥
कबीर--कथा कीरतन छाँडिके, करै जो और उपाव।
कहै कबीर ता साधुके, पास कोई मति जाव ॥४८॥
कबीर–कथा कीरतन रात दिन, जाके उद्यम एह।
कहै कबीर ता साधुके, चरण कमल की खेह ॥४९॥
कबीर–कथा करो करतार की, निसि दिन साँझ सकार।
काम कथा को परिहरौ, कहैं कबीर बिचार ॥५०॥
कबीर–काम कथा सुनिये नहीं, सुनिके उपजे काम।
कहै कबीर विचारिके, बिसरि जाय हरि नाम॥५१॥
कबीर–कथा करो करतारकी, सुनो कथा करतार।
आन कथा सुनिये नहीं, कहै कबीर विचार ॥५२॥
कबीर–अन्य कथा अन्तर परै, ब्रह्म जीवमें सोय।
कहै कबीर यह दोष बड, सुन लीजो सब कोय॥५३॥
कबीर–कथा कीरतन कलि विषे तरबेको उपकार।
सुने सुनावै और को, यहि उपदेश हमार ॥५४॥
कबीर–कथा कीरतन सुननको, जो कोइ करै सनेह।
कहै कबीर ता दासके, मुक्तिमें नहीं सँदेह ॥५५॥
कबीर–कबीर संगी साधुका, दल आया भरपूर।
इन्द्रियोंको तब बाँधिवा, या तन कीया धूर ॥५६॥
कबीर–बहतेको बह जान दे, मत पकड़ावे ठौर।
समझाया समझै नहीं, देइ धका दो और ॥५७॥

टीका–अनधिकारियों को उपदेश देना व्यर्थ है।

कबीर-बहते को न बहन दे, गह पकरायो ठौर ।
कह्यौ सुन्यों माने नहीं, शब्द कहौ द्वै और ॥५८॥

टीका--अधिकारी को हठ करके बारम्बार उपदेश करना चाहिये ।

कबीर-बन्दे तू कर बन्दगी, जो पावै दीदार ।
औसर मानुष जन्मका, बहुरि न बारम्बार ॥५९॥

कबीर-बारबार तो सों कह, सुनरे मनवा नीच ।
बनजारेके बैल ज्यों, पैडा मांहीं मीच ॥६०॥

कबीर-बनजारेके बैल ज्यों, टाँडो उतरचो आय ।
एकनके दूना भया, एक चला मूल गँवाय ॥६१॥

कबीर-मन राजा नायक भयो, टाँडो लादा जाय ।
है है है है है रही, पूंजी गई बिलाय ॥ ६२ ॥

कबीर-बनजारे को बैलज्यों, भरमि फिरचो चहुँ देश ।
खांड़ लादि भुस खात है, बिन सतगुरु उपदेश ॥६३॥

कबीर-जीवत कोइ समुझे नहीं, मुआ न कह संदेश ।
तन मन से परिचय नहीं, ताको क्या उपदेश ॥६४॥

कबीर-मैं कथि कही कह गये, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
राम नाम तत्वसार है, सब काहू उपदेश ॥६५॥

अथ सुमरनको अंग ॥ ११ ॥

कबीर-सुमरन मारग सहजका, सतगुरु दिया बताय ।
स्वाँसाहि स्वाँस जो सुमिरता, एक दिन मिलसी आय॥१॥

कबीर-माला स्वाँस उस्वाँसकी, फेरेंगे निजदास ।
चौरासी भरमै नहीं, कटै करमकी फाँस ॥२॥

कबीर-ज्ञान कथे बकि बकि मरै, काहे करै उपाय ।
सतगुरु हमसों यों कह्यो, सुमरन करो समाय ॥३॥
कबीर-कबीर सुमरन सार है, और सकल जंजाल ।
आदि अंत मधि सोधिया, दूजा देखा ख्याल ॥४॥
कबीर-निजसुख आतम राम है, दूजा दुःख अपार ।
मनसा वाचा कर्मना, कबिरा सुमिरन सार ॥५॥
कबीर-दुखमें सुमिरन सब करै, सुखमें करै न कोय ।
जो सुखमें सुमिरन करै, तौ दुख काहेको होय॥६॥
कबीर-सुखमें सुमिरन ना किया, दुखमें कीया यादि।
कहै कबीर ता दासकी, कैसे लगै फिरियादि ॥७॥
कबीर-थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय ।
सूत न लगै बिनावनी, सहज तन सुख होय ॥८॥
कबीर-सुमिरन सों सुख होत है, सुमिरन सों दुखजाय ।
कहै कबीर सुमिरन किये, स्वामी माँहि समाय॥९॥
कबीर-साँई सुमिर मति ढील कर, जा सुमिरे ते लाह ।
इहाँ खलक खिदमत करै, उहाँ अमर पुरजाह॥१०॥
कबीर-साँई यों मति जानियो, प्रीति घटै मम चित्त ।
मरूं तो तुम सुमिरत मरूं, जीवत सुमरूँ नित्य ॥११॥
कबीर-साँईको सुमिरन करै, ताकों बन्दे देव।
पहली आप उगावही, पाछै लागै सेव ॥१२॥
कबीर-जप तप संयम साधना, सब सुमिरनके माँहिं ।
कबिरा जानें रामजन, सुमिरन सम कछु नाहिं ॥१३॥

कबीर–सह कामी सुमिरन करें, पावै उत्तम धाम ।
निहकामी सुमिरन करै, पावै अविचल राम ॥१४॥

कबीर–राजा राना राव रंक, बड़ा जो सुमिरे राम ।
कहै कबीर बंदा बड़ा, जो सुमिरे निष्काम ॥१५॥

कबीर–जिन हरि जैसा सुमरिया, ताको तैसा लाभ ।
ओसे प्यास न भागई, जबलग धसै न आभ ॥१६॥

कबीर–सुमिरनकी सुधि यों करो, जैसे कामी काम ।
कहै कबीर पुकारिके, खुशी होय तब राम ॥१७॥

कबीर–सुमिरनकी सुधि यों करो, ज्यों गागरि पनिहार ।
बोलत डोलत सुरति में, कहै कबीर विचार ॥१८॥

कबीर–सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों सुरभी सुत मांहि ।
कहै कबीर चारो चरत, बिसरत कबहूं नांहि ॥१९॥

कबीर–सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कंगाल ।
कहै कबीर विसरै नहीं, पल पल लेत संभाल ॥२०॥

कबीर–सुमिरन सों मन लाइये, जैसे नाद कुरंग ।
कहै कबीर विसरै नहीं, प्रान तजे तिहि संग ॥२१॥

कबीर–सुमिरन सों मन लाइये, जैसे कीट रु भृंग ।
कबीर बिसारै आपको, होय जाय तिहि रंग ॥२२॥

कबीर–सुमिरन सों मनलाइये, जैसे दीप पतंग ।
प्रान तजै छिन एकमें, जरत न मोरै अंग ॥२३॥

कबीर–सुमिरन सों मन लाइये, जैसे पानी मीन ।
प्रान तजै पल बीसरै, दास कबीर कहि दीन ॥२४॥

कबीर–सुमिरन मन लागै नहीं, विषहि हलाहल खाय ।
कह कबीर हटका न रहै, करि करि थका उपाय ॥२५॥

कबीर–सुमिरन सो मन जब लगै, ज्ञानांकुश दै शीस ।
कहै कबीर डोले नहीं, निश्चय बिश्वाबीस ॥२६॥

कबीर–सुमिरन माँहि लगाय दै, सुरति आपनी सोय ।
कहै कबीर संसार गुन, तुझे न व्यापै कोय ॥२७॥

कबीर–सुमिरन सुरति लगायके, मुखते कछू न बोल ।
बाहर के पट देइके, अन्तरके पट खोल ॥२८॥

कबीर–जो बोलै तो राम कहु, अनत कहूँ मति जाय ।
दास कबीर निस दिन कहै, सुमिरन सुरति लगाय २९॥

कबीर–कबीरा हरि हरि सुमिरिले, प्राण जाहिंगे छूट ।
घरके प्यारे आदमी, चलते लेइँगे लूट ॥३०॥

कबीर–लूटि सकै तौ लूटिले, राम नाम है लूटि ।
पाछै फिरि पछिताहुगे, प्राण जाँयगे छूटि ॥३१॥

कबीर–लूटि सकै तौ लूटिलै, राम नाम हे लूटि ।
नाम जो निर्गुन के गहो, ना तर जैहो खूटि ॥३२॥

कबीर–कहै कबीरा लूटिलै, राम नाम भंडार ।
काल कंठ जब गहैगा, रोकै दसहू द्वार ॥३३॥

कबीर–कबिरा निर्भय राम जपु, जबलगि दीवे बाति ।
तेल घटे बाती बुझे, तब सोवोगे दिन राति ॥३४॥

कबीर–कबिरा सूता क्या करे, जागि जपो मुरारि ।
एक दिना है सोवना, लंबे पैर पसारि ॥३५॥

कबीर–कबिरा सूता क्या करे, उठि न भजो भगवान ।
जम घर जब लै जायँगे, पडा रहै गा म्यान ॥३६॥
कबीर–कबिरा सूता क्या करै, गुण गोविन्द का गाय ।
तेरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदेका खाय ॥३७॥
कबीर–कबिरा सूता क्या करै, सूते होय अकाज ।
ब्रह्मा को आसन डिग्यौ, सुनी कालकी गाज॥३८॥
कबीर–कबिरा सूता क्या करै, ऊठि न रोवो दुःख ।
जाका बासा गोरमें, सो क्यों सोवै सुक्ख ॥३९॥
कबीर–कबिरा सूता क्या करै, जागनकी करि चौंप ।
ये दम हीरा लाल है, गिन गिन हरिको सौंप॥४०॥
कबीर–कबिरा सूता क्या करै, कहै न देखै जागि ।
जाके संगते बीछुरा, ताहीके संग लागि ॥ ४१ ॥
कबीर–अपने पहरै जागिये, ना परि रहिये सोय ।
ना जानों छिन एकमें, किसका पहरा होय ॥४२॥
कबीर–नींद निसानी मीचकी, उठू कबीरा जागि ।
और रसाइन छाँडिके, राम रसाइन लागि ॥४३॥
कबीर–सोया सो निष्फल गया, जागा सो फल लेय ।
साहिब हक्क न राखसी, जब माँगै तब देय ॥४४॥
कबीर–केशव कहि कहि कूकिये, ना सोइय असरार ।
रात दिवसके कूकने, कबहुँक लगै पुकार ॥४५॥
कबीर–जैसे माया मन रमैं, तैसे राम रमाय ।
तारा मंडल छाँडिके, जहँ केशव तहँ जाय ॥४६॥
कबीर–कबीर क्षुधा है कूकरी, करत भजनमें भंग ।

याकू टुकडा डारिके, सुमिरन करूं सुसंग ॥४७॥
कबीर–घीहीका टुकडा बुरा, द्वै द्वै आँगुल दांत ।
भजन करै तो ऊबरै, नातर काढै आंत ॥ ४८ ॥
कबीर–कबीर चित चंचल किया, चहुँ दिशि लागी लाय ।
हरि सुमिरन हाथे घडा, लीजे बेगि बुझाय ॥४९॥
कबीर–चिंता तो हरि नामकी, और न चितवै दास ।
जो कछु चितवे नाम बिनु,सोइ कालकी फाँस ॥५०॥
कबीर–कबीर मेरी सुमिरनी, रसना ऊपर राम ।
आदि युगादी भक्ति है, सबको निज विश्राम॥५१॥
कबीर–जबही नाम हृदय धर्‌यो, भयो पापको नास ।
मानौं चिनगी अग्निकी, परी पुराने घास ॥५२॥
कबीर–नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हजार ।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार ॥५३॥
कबीर–पहले बुरा कमाइकै, बांधो विषयकी पोट ।
कोटि कर्म फिरे पलकमें,जब आयो हरि ओट॥५४॥
कबीर–कोटि कर्म फिरे पलकमें, जो रंचक आवै नाँव ।
अनेक युग जो पुन्य करै,नहीं नाम विनु ठाँव ॥५५॥
कबीर–कबीर हरिके नाममें, सुरति रहै करतार ।
ता मुखतें मोति झरैं, हीरा अनंत अपार ॥५६॥
कबीर–कबीर हरिके नाममें, बात चलावै और ।
तिस अपराधी जीवकूं, तीन लोक कित ठौर ॥५७॥
कबीर–राम नामको सुमिरताँ, उधरे पतित अनेक ।

कहै कबीर नहिं छाँडिये, राम नामकी टेक ॥५८॥

कबीर–राम नामको सुमिरतां, अधम तरै संसार ।
अजामेल गनिका सुपच, सदना सिवरी नार ॥५९॥

कबीर–सप्नहिमें बररायके, जोरे कहैगा राम ।
वाके पगकी पाँवड़ी, मेरे तनको चाम ॥६०॥

कबीर–नाम जपत कन्या भली, साकट भला न पूत ।
छेरीके गल गलथना, जामें दूध न मूत ॥६१॥

कबीर–राम जपत कोढी भला, चुइ चुइ परै जो चाम ।
कंचन देह किस कामकी, जा मुख नाहीं राम ॥६२॥

कबीर–राम जपत दारिद्री भला, टूटी घरकी छान ।
कंचन मंदिर जारिदे जहाँ, भगति न सारंग पान ॥६३॥

कबीर–टोटा माहीं हरि भजे, तिनका नावँ सपूत ।
मायाधारी मसखरा, केता गया अऊत ॥६४॥

कबीर–कबीर सब जग निर्धना, धवंनता नहिं कोय ।
धनवंता सोइ जानिये, राम नाम धन होय ॥६५॥

कबीर–जाकी गाँठी राम है, ताके है सब सिद्धि ।
कर जोरैं ठाढी सबैं, अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥६६॥

कबीर–कबीर प्रगट हि राम कहि, छानै राम न गाय ।
फूसक जोड़ा दूरि करु, बहुरि न लागै लाय ॥६७॥

कबीर–बाहर क्या दिखराइये, अंतर जपिये राम ।
कहा महोला खलक सो, परचो धनी सों काम ॥६८॥

कबीर–कबीर आपनराम कहि, और न राम कहाय ।

जा मुख राम न नीसरे, ता मुख राम कहाय ॥६९॥

कबीर–कबीर मुख सोई भला, जामुख निकसै राम ।
जामुख राम न नीकसै, सो मुख है किस काम ॥७०॥

कबीर–कबिरा राम रिझायलै, जिह्वा सों करि मित्त ।
हरिसागर जनि बीसरै, छीलर देखि अनित्त ॥७१॥

कबीर–कबिरा राम रिझायले, मुख अम्मृत गुनगाय ।
फूटा नग ज्यों जोरि मन, संधे संधि मिलाय ॥७२॥

कबीर–गोविंदके गुन गावता, कबहूँ न कीजै लाज ।
यहि पद्धति आगे मुकति, एक पंथ द्वै काज॥७३॥

कबीर–गुन गाये गुन ना कटै, रटै न नाम वियोग ।
अहनिसि हरि ध्यायो नहीं, क्यों पावै दुर्लभ योग॥७४॥

कबीर–कबीर कठिनाई खरी, सुमिरत हरिको नाम ।
सूली ऊपर नट बिंधा, गिरै तो नाहीं ठाम ॥७५॥

कबीर–मारग चलता जो गिरैं, ताको लगै न दोष ।
कहै कबीर बैठा रहै, ता सिर करडी कोस ॥७६॥

कबीर–लंबा मारग दूर घर, बिकट पंथ बहुमार ।
कहौ संत क्यों पाइये, दुर्लभ हरि दीदार ॥ ७७ ॥

कबीर–कबीर हरिके मिलनकी, बात सुनी हम दोय ।
कै कछु हरिको नामले, कै कर ऊंचा होय ॥७८॥

कबीर–आँखडिया झाईं परी, पन्थ निहारि निहारि ।
जी भरिया छाला परयो, राम पुकारि पुकारि॥७९॥

कबीर–कबिरा नैननिझर लाइया, रहट बहे निस जाम ।

पपीहा यों पी पी करै, कब रे मिलैंगे राम ॥८०॥

कबीर–पाँच संगी पिव पिव करैं, छठा जो सुमिरै मन ।
आई सुरति कबीर की, पाया रामरतन ॥ ८१ ॥

कबीर–मेरा मन सुमरै रामको, मेरा मन रामहिं आहि ।
अब मन रामहिं ह्वै रहा, शीश नवाऊँ काहि ॥८२॥

कबीर–तू तू करता तू भया, तुझमें रही न हूँ ।
वारी तेरे नाम की, जित देखूँ तित तूँ ॥ ८३ ॥

कबीर–तू तू करता तू भया, तुझमें रहा समाय ।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब मन अनत न जाय॥८४॥

कबीर–रग रग बोले रामजी, रोम रोम ररंकार ।
सहजे ही धुनि होत है, सोही सुमिरन सार ॥८५॥

कबीर–सहजेही धुनि लगि रही, कहै कबीर घट माँहि ।
हृदये हरि हरि होत है, मुखकी हाजत नाँहि ॥८६॥

कबीर–अजपा सुमिरन घट विषय, दीन्हा सिरजन हार ।
ताही सों मन लगि रहा, कहै कबीर बिचार ॥८७॥

कबीर–कबिरा माला काठकी, बहुत यतनका फेर ।
माला फेरो स्वांसकी, जामें गाँठि न मेर ॥ ८८ ॥

कबीर–माला जपूं न कर जपूं, मुखसे कहूँ न राम ।
मन मेरा सुमिरन करै, कर पाया बिसराम ॥८९॥

कबीर–माला तौ करमें फिरै, जीभ फिरै मुख मांहि ।
मनुवा तौ चहुँ दिशि फिरै, यह तो सुमिरन नांहि॥९०॥

कबीर–राम नामको सुमिरता, हंसि कर भावै खीज ।
उलटा सुलटा नीपजै, ज्यों खेतनमें बीज ॥ ९१ ॥
कबीर–स्वाँस सुफल सो जानिये, हरि सुमिरनमें जाय ।
और स्वाँस योंही गये, करि करि बहुत उपाय॥९२॥
कबीर–जाकी पूंजी स्वाँस है, क्षण आवै क्षण जाय ।
ताकों ऐसा चाहिये, रहे राम लौलाय ॥ ९३ ॥
कबीर–कहा भरोसो देहको, बिनसि जाय छिन मांहि ।
स्वाँस स्वाँस सुमिरन करौ, और यतन कछु नाहिं॥९४॥
कबीर–कहता हूं कहिजात हूँ, कही बजाए ढोल ।
स्वाँसा खाली जात है, तीन लोकका मोल ॥९५॥
कबीर–ऐसे महँगे मोलका, एक स्वाँस जो जाय ।
चौदा लोक नहिं पटतरे, काहे धूरि मिलाय ॥९६॥
कबीर–जिवना थोराही भला, जो हरिका सुमिरन होय ।
लाख बरसका जीवना, लेखे धरै न कोय ॥९७॥
कबीर–कहता हूँ कहि जात हूं, सुनता है सब कोय ।
सुमिरन सों भला होयगा, नातर भला न होय॥९८॥
कबीर–कबीर सुमिरन अंगको, पाठ करै मन लाय ।
विद्या हीन विद्या लहै, कहै कबीर समुझाय ॥९९॥
कबीर–जो कोई सुमिरन अंगको, पाठ करै मन लाय ।
भक्ति ज्ञान मन ऊपजै, कहे कबीर समुझाय॥१००॥
कबीर–जो कोइ सुमिरन अंगको, निसिवासर करे पाठ ।
कहै कबीरा संतसों, संधै औघट घाट ॥ १०१ ॥

अथ बेअकलीको अंग ॥ १२ ॥

कबीर–अकिल बिहूना आवदी, जानै नहीं गँवार ।
जैसे कपि परवस पर्यौ, नाचै घर घर बार ॥ १ ॥
कबीर–अकिल बिहूना सिंह ज्यों, गयो शसाके संग ।
अपनी प्रतिमा देखिके, भयो जो तन को भंग॥२॥
कबीर–अकिल बिहूना आंधरा, गल पर्यौ फंदै आय ।
ऐसे सब जग बंधिया, कहा कहूं समुझाय ॥ ३ ॥
कबीर–पंख छता परवस पर्यौ, सूवाके बुद्धि नाहिं ।
अकिल बिहूना आदमी, यों बंधा जग माहिं ॥४॥

अकलको अंग ॥ १३ ॥

कबीर–अकिल अरश सों ऊतरी, विधिना दीन्हीं बांटि ।
एक अभागी रह गया, एकन लई उ छांटि ॥१॥
कबीर–अलच्छ अकिल जानै नहीं, जीव जहद्दम लोय ।
हरदम हरि जान्या नहीं, भिश्त कहांते होय ॥२॥
कबीर–बिना वसीले चाकरी, बिना बुद्धिकी देह ।
बिना ज्ञानका जोगना, फिरै लगाये खेह ॥३॥
कबीर–जल परमाने मांच्छली, कुल परमाने बुद्धि ।
जाको जैसा गुरु मिलै, ताको तैसी सुद्धि ॥ ४ ॥

अथ प्रमोधको अंग ॥ १४ ॥

कबीर–मनहीको परबोधिलै, मनहीको उपदेश ।
जो या मनको बस करै, शिष्य होय सब देश ॥१॥

कबीर-बात बनाई जग ठग्यो, मन परमोधा नाहिं ।
कह कबीर मन लग गया, लख चौरासी माहिं ॥२॥
कबीर-राशि पराई राखतां, घरका खाया खेत ।
औरनकों परमोधतां, मुखमें परिगई रेत ॥३॥
कबीर-पंडित सेती कहिरह्या, भीतर बेधा नाहि ।
औरन को परमोधतां, गया मोहरका मांहि ॥४॥
कबीर-अजहूं तेरा सब मिटै, जो मानै गुरु सीख ।
जब लगि तू घरमें रहै, मति कहूं मांगै भीख ॥५॥

टीका-अपनी बुद्धिद्वारा विचारकर पदार्थका निश्चय करना चाहिए केवल दूसरोंके ऊपरही भरोसा मत रखो ।

अथ भक्तिको अंग ॥ १९ ॥

कबीर-भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद ।
परगट करी कबीरने, सात द्वीप नव खंद ॥ १ ॥
कबीर-कबिरा हरिकी भक्ति करु, तजि विषया रस चौज ।
बार बार नहिं पाइये, मानुष जनमकी मौज ॥२॥
कबीर-कबिरा हरिकी भक्ति बिन, धिग जीवन संसार ।
धूंआ कासा धालहरा, जात न लागै बार ॥ ३ ॥
कबीर-भक्ति भाव भादों नदी, सबै चली घहराय ।
सरिता सोई जानिये, जेठमास ठहराय ॥ ४ ॥
कबीर-हरष बड़ाई पेखिकै, भक्ती कर संसार ।
जब कछु देखै हीनता, अवगुण धरै गंवार ॥ ५ ॥
कबीर-जबलग नाता जातिका, तब लगि भक्ति न होय ।

नाता तोरे हरि भजै, भक्त कहावे सोय ॥ ६ ॥

कबीर—भक्ति बीज बिनसै, नहीं, आय परै जो झोल ।
जो कंचन बिष्टा परै, घटै न ताको मोल ॥ ७ ॥

कबीर—रामनाम हल जोतिये, सुमिरन बीज जमाय ।
खंड ब्रह्मण्ड सूखा परे, भक्ति वृथा नहिं जाय ॥ ८ ॥

कबीर—जलज्यौं प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम ।
माता प्यारा बालका, भक्ति पियारी राम ॥ ९ ॥

कबीर—भक्ति तो प्रणसों होत है, मन दै कीजे भाव ।
परमारथ परतीतमें, यह तन जाय तो जाव ॥१०॥

कबीर—भाग बिना नहिं पाइये, प्रेम प्रीतिकी भक्त ।
बिना प्रेम नहिं भक्ति कछु, भक्ति भऱ्यो सब जक्त ॥११॥

कबीर—प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज दम्भ विचार ।
उदर भरनके कारने, जन्म गँवाँयो सार ॥१२॥

कबीर—भक्ति बिनावै नाम बिन, भेष बनाये होय ।
भक्ति भेष बहु अंतरा, जानै बिरला कोय ॥१३॥

कबीर—भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास ।
भक्त सुमिरि भगवंतको, भेष जगतकी आस ॥१४॥

कबीर—जहां भक्ति तहँ भेष नहिं, वर्णाश्रम हू नाहिं ।
नाम भक्ति जो प्रेम सों, सों दुर्लभ जग माहिं ॥१५॥

कबीर—भक्ति स्वरूप भगवंतकी, भेष आहि कछु और ।
भक्त स्वरूप भगंवत है, भेष जो मनकी दौर ॥१६॥

कबीर–भक्ति कठिण अति दुर्लभ, भेष सुगम निज सोय।
भक्ति जो न्यारी भेषतें, यह जानैं सब कोय ॥१७॥

कबीर–भाव बिना नहिं भक्ति जग, भक्ति बिना नहिं भाव ।
ये दोऊ जो परस्पर, दोय मिलि एक सुभाव ॥१८॥

कबीर–भक्ति सर्वहिं ऊपर अहै, भागि न पावै सोय ।
कहै पुकारे संतजन, सत सुमिरत सब कोय ॥१९॥

कबीर–भक्ति पदारथ जब मिले, तब प्रभु होत सहाय ।
प्रेम भक्तिकी भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥२०॥

कबीर–भक्ति सोई जो भावसों, इक मन चितकों राखि ।
सांच शील सों खेलिये, मैं तैं दोऊ नाखि ॥२१॥

कबीर–विष्णु भक्ति है दुर्लभ, ज्यों खांडेकी धार ।
बिना सांच पहुँचै नहीं, महा कठिन व्यवहार ॥२२॥

कबीर–भक्ति द्वार है सांकरा, राई दशवें भाय ।
मन तो मैंगल ह्वै रह्यो, कैसे होय समाय ॥२३॥

कबीर–भक्ति दुवारा मोकला, सुमिरि सुमिरि समाय ।
मनको तो मैदा किया, निर्भय आवै जाय ॥२४॥

कबीर–भक्ति दुहेली रामकी, नहिं कायरको काम ।
निस्नेही निरधारको, आठ पहर संग्राम ॥२५॥

कबीर–भक्ति दुहेली रामकी, नहिं कायरका काम ।
शीश उतारै हाथलै, सो लेसी हरिनाम ॥ २६ ॥

कबीर–भक्ति दुहेली रामकी, जैसी खाँड़े धार ।

जो डगमगै सो गिरपरै, निश्चल उतरै पार ॥२७॥

कबीर-कामी क्रोधी लालची, इनपै भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ शूरमां, जाति बरण कुल खोय॥२८॥

कबीर-जाति बरन कुल खोयकै, भक्ति करै चितलाय ।
कहै कबीर सतगुरु मिलै, आवागमन नसाय ॥२९॥

कबीर-जबलग भक्ति सहकामना, तब लगि निष्फल सेव ।
कहै कबीर वे क्यों मिलै, निष्कामी निज देव॥३०॥

कबीर-कबीर हरिकी भक्तिका, मनमें बहुत हुलास ।
मेवासा भाजै नहीं, होन चहै निजदास ॥ ३१ ॥

कबीर-मेवासा मोही किया, दुर्जन काढा दूरि ।
राज पियारे रामका, नगर बसै भरपूर ॥ ३२ ॥

कबीर-आरतसों हरि भक्ति कर, सब सिधि कारज होय ।
कूपा माग्या राछ है, सदा न फबसी कोय ॥३३॥

कबीर-भक्ति निसेनी मुक्तिकी, चढै संत सब ध्याय ।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम जहँडाय३४

कबीर-निर्पक्षीको भक्ति है, निर्मोहीको ज्ञान ।
निर्द्वन्दीको मुक्ति है, निर्लोभी निर्बान ॥ ३५ ॥

कबीर-विषय त्याग वैराग्य है, समता कहिये ज्ञान ।
सुखदाई सब जीवसों, यही भक्ति परमान ॥३६॥

अथ स्वारथको अंग ॥१६॥

कबीर-जो कोई करै सो स्वारथी, अरस परस गुन देत ।

बिन किय करै सो शूरमां, परमारथके हेत ॥ १ ॥

कबीर–स्वारथका सब कोइ सगा, जग साराही जान ।
बिनु स्वारथ आदर करै, हरिकी प्रीति पिछान ॥२॥

कबीर–सबै सगाई अर्थकी, परमारथ की नाहिं ।
कहै कबीर परमारथी, कोइ कोई कलिमांहि ॥३॥

कबीर–मेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय ।
मन परतीति न ऊपजे, जीव विश्वास न होय ॥४॥

कबीर–आप स्वारथी मेदिनी, भक्ति स्वारथी दास ।
कबिरा जन परमारथी, डारी तनकी आस ॥५॥

कबीर–सुखके सगे हैं स्वारथी, दुखमें रहे जो दूरि ।
कहै कबीर परमारथी, दुख सुख सदा हजूरि ॥६॥

परमारथको अंग ॥ १७ ॥

कबीर–मरूं पर मांगों नहीं, अपने तनके काज ।
परमारथके कारने, मोहिं न आवे लाज ॥ १ ॥

कबीर–परमारथके कारने, कबहूं न दीजे पीठि ।
स्वारथ सेमल फूल है, कली अपूठी पीठ ॥ २ ॥

कबीर–तरुवर सरवर संत जन, चौथा वरषै मेह ।
परमारथके कारणे, चारुन धारी देह ॥ ३ ॥

कबीर–वृक्ष कबहूं नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर ।
परमारथके कारने, साधुन धरचौ शरीर ॥ ४ ॥

कबीर–साधु बड़े परमारथी, घन ज्यौं बरषैं आय ।
तपनि बुझावैं औरकी, अपनो पौरुष लाय ॥ ५ ॥

अथ प्रेमको अंग ॥ १८ ॥

कबीर–यह तौ घर है प्रेमको, खालाको घर नाँहि ।
शीश उतारैं भुइं धरैं, तब पैठे घरमाँहि ॥ १ ॥
कबीर–शीश उतारैं भुइं धरै, ऊपर राखै पाँव ।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥ २ ॥
कबीर–यह तो घर है प्रेमका, मारग अगम अगाद ।
शीश काटि पग तर धरै, तब निकसे प्रेमका स्वाद ॥ ३ ॥
कबीर–प्रेम भक्तिको है घर, ऊँचा बहुत इकंत ।
शीश काटि पगतर धरे, तब जाय पहूँचै संत ॥ ४ ॥
कबीर–शीश काटि पासंग किया, जीव सेर भर लीन ।
जिहिं भावै सो आइलै, प्रेम आगे हम कीन्ह ॥ ५ ॥
कबीर–प्रेम न बारी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा प्रजहीं जो रुचै, शीस देइ ले जाय ॥ ६ ॥
कबीर–प्रेम पियाला सो पिये, शीस दक्षिणा देय ।
लोभी शीस न दे सकै, नाम प्रेमको लेय ॥ ७ ॥
कबीर–प्रेम पिलाया भरि पिया, राचि रह्या गुरु ज्ञान ।
दिया नगारा शब्दका, लाल खड़ा मैदान ॥ ८ ॥
कबीर–छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय ।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥ ९ ॥

कबीर–आया प्रेम कहां गया, देखैया सब कोय ।
पलमें रोवै खल हँसे, सो तो प्रेम न होय ॥१०॥

कबीर–सागर उमड़ा प्रेमका, खेवटिया कोइ एक ।
सब प्रेमी मिलि बूड़ता, यह नहिं होती टेक ॥११॥

कबीर–यही प्रेम निरबाहिये, रहनि किनारे बैठि ।
सागरतें न्यारा रहा, गया लहरिमें पैठि ॥१२॥

कबीर–प्रेम प्रेम सब कोइ कहैं, प्रेम न चीन्हे कोय ।
आठ पहर भीना रहैं, प्रेम कहावै सोय ॥१३॥

कबीर–प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हे कोय ।
जौन प्रेम साहिब मिलै, प्रेम कहावै सोय ॥१४॥

कबीर–पहले प्रेम ना चाखिया, मुक्ति निरासी आय ।
पीछे तन मन बाँटिया, गया चकमका लाय ॥१५॥

कबीर–पहले प्रेम न चाखिया, चाखि न लीया स्वाद ।
सूना घरका पाहुना ज्यों आवै त्यों बाद ॥१६॥

कबीर–प्रेम पियारे लालसों, मन दे कीजै भाव ।
सतगुरु के परतापते, भला बना है दाव ॥१७॥

कबीर–जाघट प्रेम न संचरे, सो घट जानु मसान ।
जैसे खाल लुहारकी, स्वाँस लेत बिन प्रान ॥१८॥

कबीर–प्रेम बनिज नहिं करि सकै, चढै न नामके गैल ।
मानष केरी खोलरी, ओढ़े फिरे ज्यों बैल ॥१९॥

कबीर-प्रेम बिकाता मैं सुना, माथा साटै हाटि ।
पूछत बिलम्ब न कीजिये, ततक्षण दीजे काटि ॥२०॥

कबीर-प्रेम बिना धीरज नहीं, विरह बिना वैराग्य ।
सतगुरु बिना मिटै नहीं, मन मनसाका दाग॥२१॥

कबीर-जहां प्रेम तहँ नेम नहिं, तहां न बुधि व्यवहार ।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि बार ॥२२॥

कबीर-प्रेम भक्तिमें रचि रहै, मोक्ष मुक्ति फल पाय ।
शब्दमाहिं जब मिलि रहै, नहिं आवै नहिं जाय ॥२३॥

कबीर-प्रेम पांवरी पहरिके; धीरज कज्जल देय ।
शील सिंदूर भरायकै, पुनि पियका सुख लेय॥२४॥

कबीर-प्रेमी ढूढत मैं फिरा, प्रेमी मिला न कोय ।
प्रेमी सों प्रेमी मिलै, राम भक्ति दृढ होय ॥२५॥

कबीर-प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट उपजा होय ।
जो पै मुख बोले नहीं, तो नैन देत हैं रोय ॥२६॥

कबीर-प्रेम बिना नहिं भेष कछु, नाहक करे सुबाद ।
प्रेमबाद जबलग नहीं, तबलग भेष सब बाद ॥२७॥

कबीर-प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय ।
भावे रहो जो गृहहिमें; भावे बनमें जाय ॥ २८ ॥

कबीर-योगी जंगम सेवरा, संन्यासी दरबेश ।
बिना प्रेम पहुंच नहीं, दुर्लभ हरिका देश ॥ २९ ॥

कबीर-जो तू प्यासा प्रेमका, शीश काटि करि गोय ।

जब तू ऐसी करैगा, तब कछु होय सो होय ॥३०॥

कबीर–पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
दोय खड्ग इक म्यानमें, देख्या सुना न कान ॥३१॥

अथ विरहको अंग ॥ १९ ॥

कबीर–रात्यूं रूनी बिरहिनी, ज्यूं रबिचां कूं कुंज।
कबीर अंतर प्रगट्यो, बिरह अग्निका पुंज ॥ १ ॥

कबीर–अमर कुंज उर लाइया, गरजि भरा सब ताल।
जिनतें साहब बीछुरा, तिनका कौन हवाल ॥२॥

कबीर–चकई बिछुरी रैनिकी, आय मिली परभांति।
जे नर बिछुरे रामसे, मिलै दिवस नहिं राति ॥३॥

कबीर–बासर सुख नहिं रैनिसुख, ना सुख सपना माहिं।
जे नर बिछुरे राम सूं, तिनको धूप न छांह ॥४॥

कबीर–बहुत दिननकी जो हती, बाट तुम्हारी राम।
जिय तरसै तुम मिलनको, मन नाहीं बिसराम॥५॥

कबीर–बिरहिनि ऊभी पंथ सिर, पंथी पूछै धाय।
एक शब्द कहो पीवका, कबरे मिलैंगे आय ॥६॥

कबीर–बिरहिनि उठि-उठि भुइँपरै, दरशन कारन राम।
मूवा पीछे देहुगे, सो दर्शन केहिं काम ॥ ७ ॥

क़बीर–मूवा पीछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस किहि काम॥८॥

कबीर–बिरहिन देय संदेहरा, सुनो हमारे पीव।

जल बिन मछरी क्यों जिये, पानीमेंका जीव ॥९॥

कबीर-बिरहिनि देय संदेसरा, सुनहू राम सुजान ।
बेगि मिलौ तुम आयके, नहिं तर तजिहों प्रान॥१०॥

कबीर-अंदेसो नहिं भागसी, संदेशो कहियाय ।
कै हरि आया भागसों, कै हरि पासि गयाय॥११॥

कबीर-आय न सकिहौं तोहि पै, सकूं न तुझे बुलाय ।
जिवरा योंही लेहुगे, बिरह तपाय तपाय ॥१२॥

कबीर-बिरह तेज इनमें तपै, अंग सबै अकुलाय ।
घट सूना जिव पीवमें, मौत ढूंढि फिरि जाय॥१३॥

कबीर-या तन जारूं मसिकरूं, धूँवा जाय सुरंग ।
मति वह राम दया करै, बरसि बुझावै अंग॥ १४ ॥

कबीर-या तन जारूं मसिकरूं, लिखूं रामको नाव ।
लेखन करूं करंककी, लिखि लिखि राम पठांव॥१५॥

कबीर-सांई सेवत जरिगई, मांस न रहिया देह ।
साईं जब लग सेयहीं, या तन होइ है खेह ॥१६॥

कबीर-बिरहा पूत लुहारका, धुवै हमारी देह ।
कोइला किया न छूटि है, जबलग होय न खेह॥१७॥

कबीर-बिरहिन बिरह जलाइया, बैठी ढूँढै छार ।
मति कोइ कोइला ऊबरै, जारै दूजी बार ॥ १८ ॥

कबीर-तन मन जोबन जारिकै, भसम किया सब देह ।
उठी कबीरा बिरहिनी, अजहूं ढूँढे खेह ॥ १९ ॥

कबीर–बिरह जलाई मैं जलूँ, जलती जलहर जाँव।
मो देखा जलहर जलै, संतों कहा बुझांव ॥ २० ॥

कबीर–बिरह जलाई मैं जलूँ, मोहिं बिरहको दुःख।
छांह न बैठूं डरपती, मति जलि ऊठे रूख ॥२१॥

टीका–छांह आसा। रूख प्रेम।

कबीर–बिरहिनि जलती देखिकै, साईं आवै धाय।
प्रेम बूंद सूं छिरकिकै, जलती लेइ बुझाय ॥२२॥

कबीर–कै बिरहिनि कों मीच दै, कै आपा दिखलाय।
आठ पहरका दाझना, मो पै सहा न जाय ॥२३॥

कबीर–बिरहिनि थी तो क्यों रही, जरी न पिवके साथ।
रह रह मूढ गहेलरी, अब क्यों मीजै हाथ ॥२४॥

कबीर–हूँ जो बिरहकी लाकडी, समझि समझि धुंधुआय।
छूटि परूं जो बिरह सो, जो सगरीही जलि जाय२५

कबीर–लकरी जरि कोइला भई, मोतन अजहूं आगि।
बिरहकी ओदी लाकरी, सिलग सिलग उठि जागि॥२६॥

कबीर–निस दिन दाझै बिरहिनी, अंतर गतिकी लाय।
दास कबीरा क्यों बुझै, सतगुरु गये लगाय ॥२७॥

कबीर–तन मन जोबन यों जला, बिरह अग्नि सूं लागि।
मृतक जो पीर न जानहीं, जानैगी वा आगि॥२८॥

कबीर–बिरह कमंडल भरि लिया, बैरागी दोउ नैन।
मांगें दरस मधूकरी, छका रहैं दिन रैन ॥ २९ ॥

कबीर-बिरह बिथा बैरागकी, कही न काहू जाय।
गूंगा सपना देखिया, समझि समझि पछिताय॥३०॥

कबीर-बिरही प्रानी बिरहकी, पिंजर पीर न जाय।
एक पीर है प्रीतिकी, रही कलेजे छाय॥ ३१ ॥

कबीर--चोट सतावै बिरहकी, सब तन जंजर होय।
मारन हारा जानि है, कै जिस लागी सोय॥३२॥

कबीर-भेरै चढ़िया सरपकै, भवसागरके माँहि।
जो छाँडौं तो बूडि हों, गहो तो डसिहै बाँहि॥३३॥

टीका-मेरा नाम सरप, संसार नाम वेलका संसार है। दूजा मेरा सत-संग सरप विरह सागर संसार। तीजे मेरा शरीर, सर्प इंद्रिय, छाँडी पोखों नहीं तो शरीर छुटे। गहि पोखों तो साहिबसों न्यारा रहौं।

साखी

कबीर-बिरह भुवंगहिं परसि करि, किया कलेजे घाव।
बिरहिन अंगन मोरही, ज्यों भावैं त्यूं खाव॥३४॥

कबीर-बिरह भुअंगहि तन डसा, मंत्र न लागै कोय।
बिरह बियोगी क्यों जियै, जियै तो बौरा होय॥३५

कबीर-सब रग तांति रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त॥ ३६ ॥

कबीर-यातन का दीवल करों, बाती मेलों जीव।
लोही सींचू तेलज्यों, कब मुख देखूँ पीव॥ ३७॥

कबीर-बिरहा बिरहा मति कहो, बिरह अहै सुलतान।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जानु मसान॥३८॥

कबीर–विरह राम पठाइया, कोइ साधन कों परमोधि ।
जा घट ताला मेलि है, ताको लावो सोधि ॥३९॥

कबीर–बिरहा आया दरद सो, कड़वा लागा काम ।
काया लागी काल है, मीठा लागा राम ॥ ४० ॥

कबीर–आँखडिया प्रेम कसाइया, जिन जानो दुखड़ियाँ ।
राम सनेही कारने, रोय रोय रातडियाँ ॥ ४१ ॥

कबीर–सोई आँसू साजना, सोई लोग बिडाय ।
जो लोचन लोही चुवै, तो जानो हितआय ॥४२॥

कबीर–कबिरा हसना दूरि करि, रोवन सो कर चित्त ।
बिन रोया क्यों पाइये, प्रेम पियारे मित्त ॥४३॥

कबीर–हसूँ तो दुःख न बीसरूँ, रोऊँ तो बल घटिजाय ।
मनही माँहि बिसूरनां, ज्यों घुन काठहि खाय॥४४॥

कबीर–कीडे काठ जु खाइया, खाया किनहू दीठ ।
छोत उपाय देखिया, भीतर जमिया चीठ ॥४५॥

कबीर–चीठर जमिया चूनका, बैरी बिरहा खद्द ।
बिछुरीया सो साजना, वेद न काहू लद्द ॥ ४६ ॥

कबीर–हँसि हँसि कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।
हांसी खेला हरि मिले, तो नहीं सुहागनि होय॥४७

कबीर–हांसी खेलां हरि मिलै, तौ कौन सहै खुरसान ।
काम क्रोध तृष्णा तजै, ताहि मिलैं भगवान॥४८॥

कबीर–देखत देखत दिन गया, निशि भी देखत जाय ।

बिरहनि पिय पावै नहीं, जियरा तलफत जाय॥४९॥

कबीर-नैना अन्तर आव तू, निस दिन निरखूं तोहि।
कब हरि दर्शन देहुगे, सो दिन आवै मोहि ॥५०॥

कबीर-नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोरैं तुझ्झ।
ना तुव मिलो न सुखी, ऐसी बेदन मुझ्झ ॥५१॥

कबीर-रनयां राम छिपाइयाँ, रहो रहो शंख मझूर।
देवल देवल धाहरी, दिवसन ऊगे सूर ॥ ५२ ॥

कबीर-तूं मति जानैं बीसरो, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूं तो तुम सुमिरत मरूं, जिऊं तो सुमिरूं नित्त ५३

कबीर-फारि पटोरा धज करूं, कामलियां पहरांव।
जिन जिन भेषे हरि मिलैं, सो सो भेष बनाँव ॥५४॥

कबीर-परबत परबत मैं फिरूं, नैन गँवाऊँ रोय।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जासों जीवन होय ॥५५॥

कबीर-गलौं तुम्हारे नाँव पर, ज्यौं आंटा में लौन।
ऐसा बिरहा मेलिकै, नित दुःख पावै कौन ॥५६॥

कबीर-बिरहा कहै कबीरकों, तु मति छाँडे मोहिं।
पार ब्रह्मके तेजमें, जहाँले राखूं तोहिं ॥ ५७ ॥

कबीर-सुखिया सब संसार है, खावै और सोय।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोय ॥ ५८ ॥

कबीर-मो बिरहनिका पीउ मुआ, दाग न दीया जाय।
मांसहिं गलिगलि भूईपरा, करंक रही लपटाय॥५९॥

कबीर--भली भई जो पिव मुआ, नित उठि करता रार ।
छूटी गलकी फाँसरी, सोऊँ पांव पसार ॥ ६० ॥
कबीर--कागा करंक ढँढोरिया, मूठि यक रहिया हाड़ ।
जिस पिंजर बिरहा बसै, मांस कहारे राड़ ॥६१॥
कबीर--मांस गया पिंजरा रहा, तमकन लागा काग ।
साहब अजहुँ न आइया, कोई मंद हमारा भाग६२॥
कबीर--कागा कर कंकन चूंथिरे, उडिरे परेरों जाय ।
मैं दुख दाझी बिरहको, तू दाधा मांस न खाय॥६३॥
कबीर--रंगत मांस सब भखि गया, नेक न कीन्हीं कान ।
अब बिरहा कूकर भया, लागो हाड चबान ॥६४॥
कबीर-बिरहा सेती मति अडै, रे मन मोर सुजान ।
हाड मांस रग खात है, जीवत करै मसान ॥६५॥
कबीर-मैं तुमको ढूंढत फिरूं, तुम कहूं न मिलिया राम ।
हिरदा मांहि उठि मिले, कसल तुम्हारे काम॥६६॥
कबीर-सो दिन कैसा होयगा, राम गहैंगे बांह ।
अपना करि बैठायसी, चरन कमल की छाँह॥६७॥
कबीर-अंक भरे भरि भेंटिया, मन नहिं बंधै धीर ।
कहै कबीरते क्यों मिलै, जबलग दोय शरीर॥६८॥
कबीर-जीव बिलंबा जीवसों, अलख लख्यो नहिं जाय ।
साहिब मिलै न झल बुझै, रही बुझाय बुझाय॥६९॥
कबीर-जीव विलंबा जीव सों, पिय जो लिया मिलाय ।

लेख समाना अलेखमे, अब कछु कहा न जाय॥७०॥

कबीर–जो जन बिरही नामके, तिनकी गति भइ एह।
देही सूं उद्यम करैं, सुमिरन करैं बिदेह॥ ७१ ॥

कबीर–जो जन बिरही नामके, सदा मगन मन माँहिं।
ज्यों दरपनकी सुन्दरी, कोई न पकरै बाहिं॥७२॥

कबीर–सब कोइ बिरहिनि पीयरी, तू बिरहिन क्यों लाल।
अविनाशी की सेजपर, मौजी भया निहाल॥७३॥

कबीर–अबिनाशी की सेजका, कैसा है उनमान।
कहिबेको सोभा नहीं, देखेही परमान॥ ७४ ॥

कबीर–अविनाशीकी सेज पर, केलि करै आनन्द।
कहै कबीर वा सेजपर, बिलसत परमानन्द॥७५॥

कबीर–कबीर चिनगी बिरहकी, मो तन परी उडाय।
तन जरिके धरती जरी, अम्बर जरिया जाय॥७६॥

टीका–तन तामस। धरती कुबुद्धि धारना। अम्बर आपा।

कबीर–आगि लगी आकाशमें, झरि झरि परै अंगार।
कबिरा जरि कंचन भया, काच भया संसार॥७७॥

टीका–आगि ज्ञानविरह। आकाश आपा। अंगार इंद्री। कंचन करता। काच जीव।

कबीर–लाई लावन हार की, जा लाई पर जलै।
बलिहारी लावन हार की, छप्पर बांचै घर जलै॥७८॥

टीका–छप्पर काया। घर हिरदय। लावनहार सतगुरु।

कबीर–दीपक पावक आनिया, तेल भि आना संग।

तीनूं मिलिकै जोइया, उडि उडि परै पतंग ॥७९॥

टीका–दीपक देह साधुकी । पावक ज्ञान विरह । तेल तत्त्व ज्ञान पतंग जिज्ञासी ।

कबीर–हिरदा भीतर धौं जले, धुँआँ प्रगट नहिं होय ।
जाके लागी सो लखै, कै जिस लाई सोय ॥८०॥

टीका–धौं ज्ञान विरह । जली प्रकृति । धूंआं धारना भासे नहीं ।

कबीर–झाल उठी झोली जली, खपरा फूटम फूत ।
योगी था सो रमि गया, आसन रही भभूत ॥ ८१ ॥

टीका–झाल ज्ञान विरह । झोली अंतःकरण का विकार । खपरा खोटी काया । फूटो भावै रहो । योगी जीव । रमि गया मनकी ममता गई । आसन स्थान । भभूत अनुभव सो रही ।

कबीर–आगि जो लागी नीरमें, कादो जरिया झार ।
उत्तर दिशिका पण्डिता, रहैं बिचार बिचार ॥८२॥

टीका–अग्नि ज्ञान विरह । नीर जल बून्दकी काया । कादों कर्म, जले उत्तरायण मुक्ति मानें । दक्षिणायन अगति मानें, सो पण्डित इस विचार में उरझि रहे हैं दूसरा उत्तर शब्द । दक्षिण दृष्टि पण्डित पहुँचे । संत जो शब्द विचारे गति देखि स्थिर हो रहै ।

कबीर–धौं लागी सायर जलै, पंखी बैठे आय ।
दाधी देह न पालिहै, सतगुरु गये लगाय ॥८३॥

अर्थ–धौं ज्ञान विरह । सायर शरीर । जली प्रकृति । पंखी पाँचों इंद्री । निश्चय हाय नाम लहै । गुन उदै नहीं–

कबीर–जल दाझा चीखल जला, भिरहा लागी आगि ।
तिनका बपुरा ऊबरा, गल पूरा के लागि ॥८४॥

अर्थ–जल जल बून्दकी काया । चीखर चिन्ता तिनका जीव । पूरा परमेश्वर ऊबरा तासों लागि कै बचा ।

कबीर–अहेरी धौं लाइया, मृगहिं पुकारैं रोय ।
जाबन में की लाकडी, दाझत है बन सोय ॥८५॥

अर्थ–अहेरी तो गुरु । धौं न विरह । मृग पांचों इन्द्रियें । वन विकार ।

कबीर–पानी मांहीं परजली, हुई अपरबल आगि ।
बहती सरिता रह गई, मच्छ रहे जल त्यागि ॥८६॥

अर्थ–पानी जल बूंद की काया । पर जलै प्रकृति । अपर बल ज्ञान विरह । सरिता सुरति । मन मच्छ । जल माया त्यागी ।

सोरठा

कबीर–समुन्दर लागी आगि, नदिया जलि कोइला भई ।
उठा कबीरा जागि, मच्छी बिरछा चढ़िगई ॥८७॥

अर्थ–समुन्दर शरीर । अग्नि ज्ञान विरह । नदी नव द्वार । मछरी मनसा । वृक्ष ब्रह्म ।

साखी

कबीर–मारा है मरि जायगा, बिन सर थोथी भाल ।
मरा पुकारै वृक्षतर, आज मरैं की काल ॥ ८८ ॥

अर्थ–सर शब्द । भाल थोथी गुनातीत । वृक्ष सत्संगति ।

कबीर–बिरह अग्नि तनमन जला, लगि रह्या तत जीव ।
कै वा जानैं बिरहिनी, कै जिन भेटा पीव ॥ ८९ ॥

कबीर–बिरह कुहारी तन बहै, घाव न बांधै रोह ।
मरनेका संशय नहीं, छूटि गया भ्रम मोह ॥९०॥

अथ परचाको अंग ॥२०॥

कबीर–अगवानी तो आइया, ज्ञान विचार विवेक ।
पीछैं हरि भी आयँगे, सारी सोंज समेक ॥ १ ॥

कबीर–कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सैन ।
पति सँग जागी सुंदरी, कवतिग देखा नैन ॥ २ ॥
कबीर–पार ब्रह्मके तेजका, कैसा है उनमान ।
कहबेकी शोभा नहीं, देखे ही परमान ॥ ३ ॥
कबीर–अगम अगोचर गम्म नहीं, तहां झिल मिल जोति ।
तहाँ कबीरा बंदगी, पाप पुन्य नहिं छोति ॥ ४ ॥
कबीर–कबिरा मन मधुकर भया, किया निरंतर बास ।
कमल जु फूला नीर बिन, निरखेंगे निजदास ॥५॥
कबीर–सीप नहीं सायर नहीं, स्वाति बूंद भी नाँहि ।
कबिरा मोती ऊपजै, शून्य शिखर घट माँहि ॥६॥
कबीर–काया सीप संसारमें, पानी बून्द शरीर ।
बिना सीपके मोतिया, प्रगटे दास कबीर ॥ ७ ॥
कबीर–कबिरा मोतिन की लरी, हीरन को परकाश ।
चांद सुरजकी गम्म नहीं, तहँ दरसन पावै दास ॥८॥
कबीर–घटमें औघट पाइया, औघट माँहीं घाट ।
कहै कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट ॥ ९ ॥
कबीर–सूर्य समाना चाँदमें, दोऊ किया घर एक ।
मनका चेता तब भया, पूरब जन्मका लेख ॥१०॥
कबीर–कछु करनी कछु करमगति, कछु पुरबीला लेख ।
देखो भाग कबीरका, दोसत किया अलेख ॥११॥
कबीर–पिंजर प्रेम प्रकाशिया, जागा योग अनंत ।

संशय छूटा सुख भया, मिला पियारा कंत ॥१२॥

कबीर-पिंजर प्रेम प्रकाशिया, अंतर भया उजास ।
सुख करि सूती महलमें, बानी फूटी बास ॥ १३ ॥

कबीर-जकलागी जोगी हुआ, मिटि गई ऐंचा तान ।
उलटि समाना आपमें, अब भया ब्रह्म समान॥१४॥

कबीर-उनमुनि लागी शून्यमें, निसदिन रहै गलतान ।
तन मनकी कछु सुधि नहीं,पद पाया निरबान॥१५॥

कबीर-उनमुनि चढ़ी अकासकूं, गई धरनिसूं छूटि ।
हंस चला घर आपने, काल रहा सिरकूटि ॥१६॥

कबीर-उनमुनिसों मन लागिया, गगनहि पहुँचा जाय ।
चांद विहूना चांदना, अलख निरंजन राय ॥१७॥

कबीर-उनमुनिसे मन लागिया, उनमुनि नहीं बिलंगि ।
लून बिलंग्या पानिया, पानी नून बिलंगि ॥१८॥

कबीर-पानीहीते हेम भया, हेमहि गया बिलाय ।
जो कछु था सोही भया, अब कछु कह्या न जाय॥१९॥

कबीर-भली भई जो भय परी, गई दिसा सब भूलि ।
पाला गलि पानी भया, ढूलि मिलिया उस कूल ॥२०॥

टीका-भली भावना । पाला पिंड; दूजा प्रान । कुल कर्ता ।

कबीर-चिंतामनि पाई चोहटै, हड्डी मारता हाथ ।
मीरा मुझपर मिहरी करि,मिलूँ न काहू साथ॥२१॥

टीका-चिंतामणि परमेश्वर, हंड्डी हिरस । मीरा-सतगुरु, परमात्मा ।

कबीर-आया था संसारमें, देखनको बहु रूप ।

कहै कबीरा संत हो, परिगया नजरि अनूप ॥२२॥

कबीर-पक्षी उडानी गगनको, पिंड रहा परदेश ।
पानी पीया चोंच बिन, भूलि गया वह देश ॥२३॥

अर्थ-पक्षी ·आत्मा । गगन ऊंची दिशा । परदेश सव देह । चूच विना अन्तर्गति भजन । पानी नाम ।

कबीर-पक्षि उड़ानी गगनको, उडिके चढ़ि असमान ।
जेहि शर मण्डल भेदिया, सो शर लाया कान॥(२३)॥

टीका-पंखी आत्मा । असमान ऊंची दिशा ब्रह्म । तामें जल माया । मण्डल कान किनारे लंघै । दूजा गुरुका शब्द । मण्डल देह । नख शिख भेद्या प्रेममें जो प्रथम कान सुना था ।

कबीर-ऊंचा चढ़ि असमानकों, मेरु उलंघि ऊडि ।
पशु पक्षी जीव जन्तु सब, रहा मेरुमें गूडि ॥२४॥

कबीर-मेरी मिटी मुक्ता भया, पाया ब्रह्म विश्वास ।
मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस ॥ २५ ॥

कबीर-सुरति समानी निरति में, अजपा मांही जाप ।
लेख समाना अलेखमें, आपा माहीं आप ॥ २६ ॥

कबीर-सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार ।
सुरति निरति परचा भया, तब खुली सिंधु द्वार ॥२७॥

कबीर-सुचि पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर ।
सकल पाप सहजे गया, साहिब मिले हजूर ॥२८॥

कबीर-हरि पाया शीतल भया, मिटी मोह तन ताप ।
निसिवासर सुखनिधि लहा, अंतर प्रगटे आप ॥२९॥

कबीर-तन भीतर मन मानिया, बाहर कबहुँ न लाग ।

ज्वाला तें फिरि जल भया, बुझी बलंती आग ॥३०॥

कबीर—तत पाया तन बीसरा, मन धाया धरि ध्यान ।
तपत मिटी शीतल भया, शून्य किया अस्थान ॥३१॥

कबीर—पाया था सो गहि रहा, रसना लागी स्वाद ।
रतन निराला पाइया, जगत टटोरा बाद ॥३२॥

कबीर—कबिरा दिल दरिया मिला, पाया फल समरत्थ ।
सायर माँहिं ढढोरता, हीरा चढिगा हत्थ ॥३३॥

कबीर—जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं ।
कबिरा नगरी एकमें, राजा दो न समाहिं ॥३४॥

कबीर—जाकारण मैं जाय था, सोतो पाया ठौर ।
सोही फिर आपन भया, जासूं कहता और ॥३५॥

कबीर—मैं जाना मैं और था, मैं तो भया अब सोय ।
मैं तैं दोऊ मिटि गई, रहीं कहनको दोय ॥३६॥

कबीर—कबिरा देखा एक अंग, महिमा कही न जाय ।
तेज पुंज परसा धनी, नैना रहा समाय ॥३७॥

कबीर—कौतुक दीठा देह बिन, रवि शशि बिना उजास ।
साहब सेवा मांहि है, बे परवाही दास ॥३८॥

कबीर—नेव बिहूना देहरा, देह बिहूना देव ।
कबिरा तहां बिलंबिया, करै अलखकी सेव ॥३९॥

टीका—देवरा देह । देह बिहूना देव परमेश्वर ।

कबीर—देवल मांहीं देबरी; तिलजेता विस्तार ।

माँहीं पाती माँहिं जल, माँहीं पूजन हार ॥५०॥

टीका—देवल देह। देवरी आत्मा। पाती प्रीति। जल प्रेम। पूजनहार प्रान।

कबीर—कबिरा कमल प्रकाशिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अँधियारी मिटिगई; बाजे अनहद तूर ॥५१॥

टीका—कमल काया। निर्मलसूरज्ञान। निस अँधियारी अज्ञानता। अनहद तूरि अनहद शब्द।

कबीर—अनहद बाजे निझर झरैं, तब उपजै ब्रह्मज्ञान।
अविगति अन्तर प्रगटही, लगा प्रेम निज ध्यान ॥५२॥

अर्थ—अनहद शब्द। नीझरनाम दूजा अमी।

कबीर—आकाशे अँवदा कुआ, पातालै पनिहार।
जल हंसा कोइ पीवई, बिरला आदि बिचार ॥५३॥

अर्थ—अधर कुआं तालाव दशमां द्वार। पाताल गुदाद्वार। पनिहारी आत्मा। नीर नाम। दूजा अमी। हंसा साध आदि ईश्वर।

कबीर—शिव भक्ति मुख को जुवै, पश्चिम दिसि उठै धूर।
जलमें सिंह जो घर करै, मछरी चढ़ैं खजूर ॥५४॥

अर्थ—शिव मन। शक्ति मनसा। पश्चिम परमेश्वर। धूरि ध्यान। जस जल बून्दीकी काया। सिंह ज्ञान। खजूर ऊंची दिशा ब्रह्म।

कबीर—अमृत बरसै हीरा नीपजे, घटा परै टकसार।
तहां कबीरा पारखी, अनुभव उतरै पार ॥५५॥

अर्थ—अमृत अमी। दूजानाम हीरामन, टकसार शब्द।

कबीर—गगन गरजे बरषै अमी, बादल गहर गँभीर।
चहुँ दिस दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ॥५६॥

कबीर—गगन मण्डलके बीचमें, तहवां झलकै नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचैंगे गुरुपूर ॥५७॥

कबीर—गगन मण्डलके बीचमें, महल परा एक चीन्ह ।
कहै कबीर ते पावही, जिहि गुरु परीक्षा दीन्ह ॥४८॥
कबीर—गगन मंडलके बीचमें, बिना कमलकी छाप ।
पुरुष एक तहाँ रमिरहा, नहीं मंत्र नहिं जाप ॥४९॥
कबीर—गगन मंडलके बीचमें, तुरी तत्त्व एक गाँव ।
लक्ष निसाना रूपका, परखि देखाया ठाँव ॥ ५० ॥
कबीर—गगन मंडलके बीचमें, जहां सुहंगम डोरि ।
शब्दहि अनहद होत है, सुरति लगी तहां मोर ॥५१॥
कबीर—गरजै गगन अमी चुवै, कदली कमल प्रकास ।
तहां कबीरा बंदगी, कै कोई निजदास ॥ ५२ ॥
कबीर—धरती गगन पवनै नहीं, नहीं होत तिथिवार ।
तब हरिके हरिजन हुते, कहैं कबीर बिचार ॥५३॥
कबीर—चाँद नहीं सूरज नहीं, हता न वो ओंकार ।
तहां कबीरा रामजन, को जानै संसार ॥ ५४ ॥
कबीर—जादिन किरतम ना हता, नहीं हाट नहिं बाट ।
हता कबीरा संतजन, (जिन) देखा औघट घाट ॥५५॥
कबीर—नहीं हाट नहिं बाट है, नहिं धरती नहिं धीर ।
असंख्य युग परलै गया, तबकी कहै कबीर ॥५६॥
कबीर—धरती हती पग धरौं, नीर हता नहिं न्हाँव ।
माता नो जन्म्या नहीं, क्षीर कहाँते खाँव ॥५७॥
कबीर—पवन नहीं पानी नहीं, नहीं धरती आकास ।

एक निरंजन देवका, कबिरा दास खवास ॥ ५८ ॥

कबीर-अन्न नहीं जहां तप करूं, नीर नहीं तहाँ न्हाव ।
धरती नहीं जहाँ पग धरूं, गगन नहीं तहाँ जाव ॥ ५९ ॥

कबीर-पाँच तत्त्व गुन तीनिकै, आगे मुक्ति मुकाम ।
तहाँ कबीरा घर किया, जहां गोरख दत्त न राम ॥ ६० ॥

कबीर-सुरनर मुनिजन औलिया, ये सब वैलै तीर ।
अलह रामकी गम नहीं, तहां घर किया कबीर ॥ ६१ ॥

कबीर-सुरनर मुनिजन देवता, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
ऊंचा महल कबीरका, पार न पावै शेश ॥ ६२ ॥

कबीर-हम बासी वा देशको, जहां अविनाशीकी आन ।
दुख सुख कोइ व्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥ ६३ ॥

कबीर-हम बासी उस देशको, जहाँ बारा मास बिलास ।
प्रेम झरैं बिलसैं कँवल, तेजपुंज परकास ॥ ६४ ॥

कबीर-हम बासी उस देशको, जहँवाँ नहिं मास वसंत ।
नीझर झरै महा अमी, भीजत है सब संत ॥ ६५ ॥

कबीर-हम बासी उस देशको, जहां जाति बरन कुल नाहिं ।
शब्द मिलावा होय रहा, देह मिलावा नांहि ॥ ६६ ॥

कबीर-हम बासी उस देशके, जहां गगनि धरनि दोऊ नांहि ।
भँवरा बैठा पंख बिनु, देखा पलकों मांहिं ॥ ६७ ॥

कबीर-हम बासी वा देशके, जहां पार ब्रह्मका खेल ।
दीपक जरै अगम्यका, बिन बाती बिन तेल ॥ ६८ ॥

कबीर–हम बासी उस देशके, जहाँ पारब्रह्मका कूप ।
अविनाशी विनशै नहीं, आवै जाय सरूप ॥६९॥
कबीर–कबिरा दिलदरिया मिला, बैठा दरगह आय ।
जीव ब्रह्म मेला भया, अब कछु कहा न जाय ॥७०॥
कबीर--जब दिल मिला दयालसों, फांसी परी बिलाय ।
मोहि भरोसा इष्टका, बंदा नरक न जाय ॥७१॥
कबीर--जब दिल मिला दयालसों, तब कछु अन्तर नाहिं ।
पाला गलि पानी भया, यों हरिजन हरिमाहिं॥७२॥
कबीर--ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघारी पौलि ।
दरशन भया दयालका, सूल भई सब सौलि ॥७३॥
कबीर--दीपक जोया ज्ञानका, देखा अपरम देव ।
चारि वेदकी गम नहीं, जहाँ कबीरा सेव ॥७४॥
कबीर--कबिरा जब हम गावते, तब ब्रह्म जाना नाहिं ।
अब ब्रह्म दिलमें देखिया, गावन कूं कछु नाहिं ॥७५॥
कबीर--मानसरोवर सुगम जल, हंसा केलि कराय ।
मुकताहल मोती चुगै, अब उडि अंत न जाय ॥७६॥
कबीर--शून्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव ।
सदा समूह सुख बिलसिया, विरला जानै भेव ॥७७॥
कबीर--कबिरा कंचन प्रकासिया, ब्रह्म बास जहां होय।
मन भँवरा जहाँ लुबधिया, जानैगा जन कोय ॥७८॥
कबीर--संशै करूं न मैं डरूं, सब दुख दिया निवारि ।

सहज शून्य में रमि रहा, माया देवसुरारि ॥७९॥

कबीर–लून गला पानी मिला, बहुरि न भरिहैं गून ।
हरिजन हरि सों मिलि रहा, काल रहा सिर धून ॥८०॥

कबीर–ध्वजा फरक्के शून्यमें, बाजै अनहद तूर ।
तकिया है मैदानमें, पहुँचेगे कोई शूर ॥८१॥

कबीर–उलटि समाना आपमें, पलटी ज्योति अनंत ।
साहिब सेवक एक सँग, खेलें सदा बसंत ॥८२॥

कबीर–शून्य मण्डलमें घर किया, बाजै शब्द रसाल ।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल ॥८३॥

कबीर–हिल मिल खेला ब्रह्मसों, अन्तर रही न रेख ।
समझेका मत एक है, क्या पण्डित क्या शेख ॥८४॥

कबीर–पूरे सों परिचय भया, सब दुख मेला दूरि ।
निर्मल कीन्ही आत्मा, ताते सदा हजूर ॥८५॥

कबीर–जब लगि पिय परिचय नहीं, कन्या कुँवारी जानि।
हथ लेवो हूँ सालियो, मुसकिल परि पहिचानि ॥८६॥

कबीर–पूरे सो परचा भगा, दुख सुख मेला दूरि ।
यम सों बाकी कटि गई, सांई मिला हजूर ॥८७॥

कबीर–जैसे सूती रंगरहा, भाग ना मान गुनान ।
हथ लेवो हरिसूं जुरचो, अखै अमर बरदान ॥८८॥

कबीर–पिय परिचय तब जानिये, पिय सों हिल मिल होय ।
पियकी लाली मुख परै, प्रगटहिं दीसै सोय ॥८९॥

कबीर–लाली मेरे लालकी, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी भई निहाल ॥९०॥

कबीर–सुरति उड़ानी गगन कों, चरन बिलंबी जाय।
सुख पाया साहब मिला, तब आनंद अंग न माय ९१॥

कबीर–मकरतार सों नेहरा, झलकै अधर बिदेह।
सुरति सुहंगम मिलि रही, पल पल जुरै सनेह॥९२॥

कबीर–धरति समानी अधरमें, अधर धराकै मांहि।
अधर धरा जब देखिया, दीसे दूसर नांहि ॥९३॥

कबीर–अबिगति की गति कहा कहूँ, जाकै गांव न ठाँव।
गुनबिहूना देखिया, क्या कहि धरिये नांव ॥९४॥

कबीर–ऐसा अविगति अलख है, अलख लखा नहिं जाय।
ज्योति सरूपी राम है, सबमें रह्यौ समाय ॥९५॥

कबीर–अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै बैन।
निज मन धरचो स्वरूप में, सत गुरु दीन्ही सैन॥९६॥

कबीर–मिलि गया नीर कबीर सों, अंतर रही न रेख।
तीनूं मिलि एकै भया, नीर कबीर अलेख ॥ ९७ ॥

कबीर–नीर कबीर अलेख मिलि, सहज निरंतर जोय।
सत्य शब्द और सुरति मिलि, हंस हिरंबर होय॥९८॥

कबीर–जा बन सिंह न संचरै, पक्षी उड़ि नहिं जाय।
रैन दिवसकी गम नहीं, तहां रहा कबीर समाय॥९९॥

कबीर–जिन पांयन भु बहु फिरा, देखा देश बिदेश।

तिन पायन थिति पाइया, आंगन भया बिदेश १००॥

कबीर–गुन इंद्री सहजे गई, सतगुरु करी सहाय।
घट में ब्रह्म विराजिया, बकि बकि मरै बलाय॥ १०१॥

कबीर–कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहना नाहिं।
एक रही दूजी गई, बैठा दरिया माहिं॥ १०२॥

कबीर–साखी शब्दी कब कही, मौन रहै मन मांहि।
बिछुरा था कब ब्रह्मसों, कहिबे को कछु नांहिं १०३॥

कबीर–साखी शब्दी जब कही, तब कछु जाना नाँहिं।
बिछुरा था तबही मिला, अब कहु कहना काहि १०४॥

कबीर–या देखा वा देखिया, वा देखा या थीर।
यह वह दोउ एकै भया, जब सतगुरु मिले कबीर १०५॥

अथ रसको अंग॥ २१॥

कबीर–पिया पियाला प्रेमका, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रमिरह्या, और अमल क्या खाय॥ १॥

कबीर–कबिरा हरि रस जिन पिया, अंतरगत लौलाय।
रोम रोम में रमिरहा, और अमल क्या खाय॥ २॥

कबीर–कबिरा हरि रस यों पिया, बाकी रही न थाक।
पाका कलस कुँभारका, बहुरि न चढ़िहै चाक॥ ३॥

अर्थ–कलसा काया। कुंभार प्रान। चाक चौरासी।

कबीर–राम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबिरा पीवन दुर्लभ अहै, नांगै सीस कलाल॥ ४॥

कबीर--कबिरा भाठी प्रेमकी, बहुतक बैठे आय ।
सिर सौंपै सो पीवही, और पै पिया न जाय ॥ ५ ॥
कबीर--हरि रस महँगा जन पियें, देवैं सीस कलाल ।
घट ओछा दिन दूबला, बंछैगा बहुकाल ॥ ६ ॥
कबीर--हरिरस महँगा पीविये, छांडि जीवकी बानि ।
शिरके सांटे हरि मिलै, तबलगि सुँहुँगा जानि ॥७॥
कबीर--शिर दिये जो पाइये, देत न कीजे कानि ।
शिर के सांटे हरि मिलै, तब लगि सुँहुँगा जानि॥८॥
कबीर-मोह मता अविगत रता, आसा अकल अजीत ।
नाम अमल माते रहैं, जीवन मुक्त अतीत ॥ ९ ॥
कबीर--मोह मता नहिं संचरै, सालै चित्त सनेह ।
बारिज बंधा कलालके, डारि रहा शिर खेह ॥१०॥
कबीर--आठ गांठ कोपीनके, साधु न मानै शंक ।
नाम अमल माता रहै, गिनै इंद्रको रंक ॥ ११ ॥
कबीर--दाबै दाझन होत है, निरदावै रहै निशंक ।
जो जन निरदावै रहै, कहै इंद्र नहिं रंक ॥ १२ ॥
कबीर--हरिरस पीया जानिये, उतरै नाहिं खुमारि ।
मतवाला घूमत फिरै, नहिं जो तनकी सार ॥१३॥
कबीर--जिहि सर घड़ा न बूडता, मंगल मलि मलि न्हाय ।
देवल बूडा कलस सों, पक्षी पियासा जाय ॥१४॥

अर्थ--सर शरीर । घडा कँवला । मंगल मन । निर्मल जलमें नहाय । देवल देह । कलस कँवल । पक्षी प्रकृति ॥

कबीर–सबै रसायन हम पिया, हरिरस सम नहिं कोय ।
रंचक घटमें संचरै, सबतन कंचन होय ॥ १५ ॥
कबीर–थोरोहीसो छाकिया, भांडा पीया धोय ।
फूल पियाला जिन पिया, रहै कलालां सोय ॥१६॥
कबीर–राता माता नामका, पिया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदारका, मांगै मुक्ति बलाय ॥१७॥
कबीर–राता माता नामका, मदका माता नाहिं ।
मदका माता जो फिरै, ते मतवाला काहिं ॥१८॥
कबीर–मतवाला घूमत फिरै, रोम रोम रस पूरि ।
छांडे आस शरीरकी, तब देखै राम हजूरि ॥१९॥
कबीर–प्रेम पियाला भरिपिया, जरा न किया जतन ।
आवै छक तब जानिये, रंका घडा रतन ॥ २० ॥
कबीर–कबिरा हरिरस भर पिया, कोइ न पीवै नीर ।
भाग बडा सो पीवसी, भरि भरि पीवे कबीर॥२१॥

अथ लाभको अंग ॥ २२ ॥

कबीर–काया कमण्डल कर लिया, तुम जल निरमल नीर ।
पीवत तृषा न भाजही, तिरषावंत कबीर ॥ १ ॥
कबीर–मन उलटि दरिया मिला, लागा मलमल न्हान ।
थाह तें थाह न पावही, तू पूरा रहमान ॥ २ ॥

अथ हैरानको अंग ॥ २३ ॥

कबीर–पण्डित सेती कहि रहा, कहा न मानै कोय ।

वह अगाध ये क्यों कहै, भारी अचरज होय ॥१॥

कबीर—बसै अपिण्डी पिण्डमें, तागति लखै न कोय।
कहै कबीरा संतहो, बड़ा अचम्भा मोय ॥ २ ॥

कबीर—घटमें रहै सूझै नहीं, करसों गहा न जाय।
मिला रहै और ना मिलै, तासों कहा बसाय ॥३॥

कबीर—आठ पहर चौबिस घड़ी, मोमन यही अंदेश।
या नगरी प्रीतम बसै, मैं जानों परदेश ॥ ४ ॥

कबीर—प्रीतम कों पतिया लिखूँ, जो कहूँ होय विदेश।
तनमें मनमें नैनमें, ताको कहा सँदेश ॥ ५ ॥

अथ भेदी नरको अंग ॥ २४ ॥

कबीर—कबिरा भेदी भगतसों, मेरा मन पतियाय।
सेरी पावै शब्दकी, निर्भय आवै जाय ॥ १ ॥

कबीर—भेदी जानै सर्वगुण, अनभेदी क्या जानि।
कै जानै गुरु पारखी, कै जाकै लागा बान ॥ २ ॥

कबीर—भेद ज्ञान तौलौं भलों, जौलौं मुक्ति न होय।
परम ज्योति प्रगटै जहाँ, तहाँ विकल्प नहिं कोय॥३॥

कबीर—भेद ज्ञान साबुन भया, सुमिरन निर्मल नीर।
अंतर धोई आत्मा, धोया निर्गुन चीर ॥ ४ ॥

अथ जरनाको अंग ॥ २५ ॥

कबीर—भारी कहूं तो बहु डरूं, हलका कहूँ तो झीठ।
मैं क्या जानूं रामको, नैंना कछू न दीठ ॥ १ ॥

कबीर–दीठा है तो कस कहूं, कहूं तो को पतियाय ।
हरि जैसा है तैसा रहो, हरषि हरषि गुनगाय ॥२॥
कबीर–ऐसी अद्भुत मति कथो, कथो तो धरो छिपाय ।
वेद कुराना ना लिखि, कहूं तो को पतियाय ॥३॥
कबीर–जो देखै सो कहै नहीं, कहै सो देखै नाहिं ।
सुनै जो समुझावै नहीं, रसना दृग शरवन काहिं॥४॥
कबीर–जो पकरै सो चलै नहीं, चलै सो पकरै नाहिं ।
कहै कबीर या साखिको, अरथ समुझ मनमाहिं ॥५॥
कबीर–जो पकरै सो चलै नहीं, चलै सो पकरै नाहिं ।
कर पदको तुम कहत हो, समुझि लीन मनमाहिं॥६॥
कबीर–जानि बूझि जड़ होय रहै, बल तजि निर्बल होय ।
कहै कबीर वा दासको, गंजि सकै नहिं कोय ॥७॥
कबीर–जानिकै अनजान हुआ, तत्त्व न लीया छानि ।
गुरु किया नफा होयगा, चेला किया न हानि॥८॥
कबीर–वाद विवादे विष घना, बोलै बहुत उपाधि ।
मौनि गहि हरि सुमिरिये, जो कोई जानै साधि॥९॥

अथ लौको अंग ॥ २६ ॥

कबीर–सुरति ठीक लीनै जलौ, मन नीत डोलनहार ।
कमल कूप में ब्रह्म जल, सांचौ बारम्बार ॥ १ ॥
कबीर–लौलागी लौ ना परै, आप बिसरजन देह ।
अमृत पीवै आतमा, हरि सों जुरै सनेह ॥ २ ॥

कबीर--गंग यमुन के अंतरै, सहज शून्य लौ घाट।
तहां कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट ॥३॥

कबीर--लै पाऊं तौ लै रहौ, लैन कहूं नहिं जाँव।
लै बूढै सो लै तिरे, लै लै तेरो नाँव ॥ ४ ॥

कबीर--लौ लागी तब जानिये, छूटि न कबहूँ जाय।
जीवत लौ लागी रहै, मूवा मांहिं समाय ॥ ५ ॥

कबीर--जैसी लौ प्रथमहिं लगै, तैसी निबहै ओर।
अपनी देहकी को गिनै, तारे पुरुष करोर ॥ ६ ॥

कबीर--जैसी लौ प्रथमहिं लगै, तैसी ही रहि जाय।
जाके हृदये लौ बसै, सो मोहिं माहि समाय ॥७॥

कबीर--और सुरति बिसरी सकल, लौ लागी रहै संग।
आव जाव कासे कहूँ, मन राते हरि रंग ॥ ८ ॥

कबीर--जिहि बन सिंह न संचरै, पक्षी उड़ि नहिं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, तहां रहै लौ लाय ॥९॥

कबीर--लौ लागी अंतर कसा, आप बिसरजन देह।
अमृत पीवे आत्मा, हरि सों लागा नेह ॥ १० ॥

कबीर--जब लगि कथनी हम कथी, दूरि रहा जगदीस।
लौ लागी कल ना परै, अब बोलना नाहि हदीस११॥

कबीर--ग्रंथ माहिं अर्थ पाइया, अर्थ माहिं है भूल।
लौ लागी निर्मल भया, मिटि गई संशय शूल॥१२॥

अथ पतिव्रताको अंग ॥ २७ ॥

कबीर–पतिव्रताके एक है, व्यभिचारिनके दोय ।
प्रतिव्रता व्यभिचारिणी, कहु क्यों मेला होय ॥१॥

कबीर–पतिव्रताको सुख घना, जाके पति है एक ।
मन मैली व्यभिचारिणी, ताके खसम अनेक ॥२॥

कबीर–प्रतिव्रता मैली भली, गलै काचकी पोत ।
सब सखियनमें यों दिखे, ज्यूं सूरजकी जोत ॥३॥

कबीर–पतिव्रता मैली भली, काली कुचल कुरूप ।
पतिव्रता के रूप पर, वारों कोटि स्वरूप ॥४॥

कबीर–पतिव्रता तब जानिये, रती न खंडै नैन ।
अंतर तो सूची रहै, बोलै मीठा बैन ॥ ५ ॥

कबीर–पतिव्रता पतिको भजै,पति भजि धरै विश्वास ।
आन दिशा चितवै नहीं, सदा पीवकी आस ॥६॥

कबीर–पतिव्रता पतिकों भजै, और न अन्य सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय ॥७॥

कबीर–पतिव्रता ऐसे रहै, जैसे चोली पान ।
जब सुख देखे पीवका, चित्त न आवै आन ॥८॥

कबीर–पतिव्रता व्यभिचारिणी, एक मंदिरमें बास ।
वह रंग राती पीवके, वह घर घर फिरै उदास ॥९॥

कबीर--हरि न रटा तौ क्या हुआ, जो अन्तर है हेत ।
पतिव्रता पतिकों भजै, मुखहिं नाम नहिं लेत॥१०॥

कबीर-सुरति समानी नाममें, नाम किया परकास ।
पतिव्रता पतिकों मिली, पलक न छांडै पास ॥११॥
कबीर-सांई मेरा सुलछना, मैं पतिव्रता नार ।
देहु दीदार दया करौ, अपने निज भरतार ॥१२॥
कबीर-प्रीति रीति तुझ सों मेरे, बहुगुनियाला कन्त ।
जो हँसि बोलूँ और सूं, तो नील रंगाऊँ दंत ॥१३॥
कबीर-मोचित पलहु न बीसरूं, तुम परदेशहिं जाय ।
यह अंग और न भेलसी, जदितदि तुम मिलिआय १४॥
कबीर-नैना अन्तर आव तू, नैन झांपि तोहि लेउं ।
ना मैं देखों और को, ना तोहि देखन देउं ॥१५॥
कबीर-साईं मेरा एक तू, और न दूजा कोय ।
दूजा साईं जो करूं, जो कलि दूजा होय ॥१६॥
कबीर-बार बार क्या आखिय, मेरे मनकी सोय ।
कलि तो ऊखल होयगी, साईं और न होय ॥१७॥
कबीर-जो यह एक न जानियां, तो बहुजाने क्या होय ।
एकहिते सब होत है, सब ते एन न होय ॥१८॥
कबीर-जो यह एकै जानिया, तो जानौ सब जान ।
जो यह एक न जानिया, तौ सबही जानु विजान ॥१९॥
कबीर-एकै साधे सब सधै, सब साधै यक जाय ।
जो तू सींचै मूल कों, फूलै फलै अघाय ॥२०॥
कबीर-सब आये इस एक में, डार पात फल फूल ।

कबिरा पीछे क्या रहा, गहि पकरा निजमूल ॥२१॥

कबीर–जो मन लागैं एक सूं, तौ निरवारा जाय ।
तूरा दोमुख बाजतो, न्याय तमाचा खाय ॥२२॥

कबीर–एक रामको जानिकै, दूजा देइ बहाय ।
तीरथ व्रत जप तप नहीं, आतम तत्त्व समाय ॥२३॥

कबीर–मैं अबला पिव पिव करूं, निर्गुण मेरा पीव ।
शून्य सनेही राम बिन, और न देखूं जीव ॥२४॥

कबीर–घर परमेश्वर पाहुना, सुनो सनेही दास ।
षट्‌रस भोजन भक्ति करि, कबहुं न छांडै पास ॥२५॥

कबीर–भौरै भूली खसमके, कबहुं न किया विचार ।
सतगुरु साहिब बताइया, पूरबला भरतार ॥२६॥

कबीर–कबिरा भेरै बैठिकै, सबसे कहूं पुकारि ।
धरा धरैं सो धर कुटी, अधर धरैं सो नारि ॥२७॥

कबीर–धरिया कूं धींजूं नहीं, गहूं अधर की बाहिं ।
धरिया अधर पहिचानियां, तौ कछु धरा वहि नाहिं ॥२८॥

कबीर–कबिरा सीप समुद्रकी, रटै पियास पियास ।
सकल बूंदकों ना गिनै, स्वाति बूंदकी आस ॥२९॥

कबीर–कबिरा सीप समुद्रकी खारा जल नहिं लेय ।
पानी पीवै स्वातिका, शोभा सागर देय ॥३०॥

कबीर–ऊंची जाति पपीहरा, नवै न नीचा नीर ।
कै जांचै सुरपतिहिंको, कै दुख सहै शरीर ॥३१॥

कबीर--परा पपिहरा सुरसरी, लगा बधिकका बान ।
मुख मूदैं श्रुति गगनमें, योंहि निकसि गये शान॥३२॥
कबीर--पपिहाका प्रण देखता, धीरज रहै न रंच ।
मरती बेर जलमें परा, तऊ न बोरै चंच ॥ ३३ ॥
कबीर--पपिहा प्रण कबहूं न तजै, तजै तो तन बेकाज ।
तन छूटैं तो कछु नहीं, प्रण छूटै तो लाज ॥३४॥
कबीर-चातक सुतहि पढ़ावई, आन नीर मति लेय ।
मम कुल येहि स्वभाव है, स्वाति बूँद चित्त देय॥३५॥
कबीर-चातक चित्तहि चुभिगया, सुत सपूतकी बात ।
आन नीर परसै नहीं, सुनौ तात यह बात ॥३६॥
कबीर-सुखके माथे सिल परौ, हरि हिरदा सों जाय ।
बलिहारी वा दुःखकी, पल पल राम कहाय ॥३७॥
कबीर-कबिरा सुखको जाय था, आगे मिलिया दुःख ।
जाहू सुख घर आपुने, हम जानें अरु दुःख ॥३८॥
कबीर-दोजख हमहिं अंगेजिया, या दुख नाहीं मुझ्झ ।
मेरे भिस्त न चाहिये, वांछि पियारे तुझ्झ ॥३९॥
कबीर-मैं सेवक समरत्थका, कबहुँ न होय अकाज ।
पतिबरता नंगी रहै, वाही पतिकी लाज ॥४०॥
कबीर-मैं सेवक समरत्थका, कोई पूरिबले भाग ।
सूती जागी सुन्दरी, साँई दिया सुहाग ॥ ४१ ॥
कबीर-पतिव्रता कही एक तू, और न दूजा कोय ।
अष्ट पहर निरखत रहै, सोही सुहागिनि होय॥४२॥

अथ व्यभिचारिणीको अंग ॥ २८ ॥

कबीर–कबिरा कलियुग आयकै, कीया बहुत जमीत ।
जिन दिल बाँधा एक से, ते सुख सोवे निचिंत॥ १॥

कबीर–गुरु मरजाद न भक्तिपन, नहिं पियका अधिकार ।
कहै कबीर व्यभिचारिणी, आठ पहर भरतार ॥ २॥

कबीर–व्यभिचारिणि व्यभिचारिमें, आठ पहर हुशियार ।
कहै कबीर पतिव्रत्त बिन, क्यों रीझे करतार ॥ ३॥

कबीर–व्यभिचारिणिके बस नहीं, अपनो तनमन सोय ।
कहैं कबीर पतिव्रत्त बिन, नारी गई बिगोय ॥ ४॥

कबीर–नारि कहावै पीवकी, रहै और संग सोय ।
जार सदा मनमें बसै, खसम खुशी क्यों होय ॥ ५ ॥

कबीर–सेज बिछावै सुन्दरी, अन्तर परदा होय ।
तन सोंपै मन दै नहीं, सदा सुहागनि सोय ॥ ६ ॥

कबीर–कबिरा मन दीया नहीं, तन करि डारचा जेर ।
अन्तर्यामी लखि गया, बात कहनका फेर ॥ ७ ॥

कबीर–राम राम रटिबो करै, निस दिन साधन संग ।
कहा धों कौन कुफेरते, नैना लागा रंग ॥ ८ ॥

कबीर–मन दीया कहिं औरहीं, तन साधनके संग ।
कहै कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥ ९ ॥

कबीर–कबिरा पंथ निहारता, आन परी है सांझ ।
जन जनको मन राखता, वेश्या रह गई बांझ ॥ १० ॥

अथ आनदेवको अंग ॥ २९ ॥

कबीर--सौ बरसां भक्ति करै, एक दिन पूजै आनि ।
सो अपराधी आत्मा, परै चौरासी खानि ॥ १ ॥
कबीर--राम नामको छांडिकै, करै आन को जाप ।
ताके मुहडे दीजिये, नौसादरको बाप ॥ २ ॥
कबीर--राम नामको छांड़िकै करै और को जाप ।
बेश्या केरे पूत ज्यों, कहै कौन को बाप ॥ ३ ॥
कबीर--राम नाम को छाँड़िकै, करै अन्यकी आस ।
कहै कबीर ता दासका, होय नरकमें बास ॥ ४ ॥
कबीर--राम नाम को छांडिकै, राखै करवा चौथि ।
सोतो होयगी सूकरी, तिन्हैं राम सों कौथि ॥ ५ ॥
कबीर--राम नामको छाँडिके, राति जगावन जाय ।
साँपिनि ह्वै कर औतरै, अपना जाया खाय ॥ ६ ॥
कबीर--आन भजै सो आँधरा, राम भजै सो साध ।
तत्त्व भजै सो वैष्णव, तिन का मता अगाध ॥ ७ ॥
कबीर--राति जगावैं राँडिया, गावैं बिषियां गीत ।
मारैं लौंदा लापसी, राम न आवै चीत ॥ ८ ॥
कबीर--करै सुहाली लापसी लाय आनकी जात ।
ज्वारा हँसै मलकता आया मेरी घात ॥ ९ ॥
कबीर--कामी तरै क्रोधी तरै लोभी तरै अनंत ।
आन उपासी कृतघ्नी, तिरै न राम कहंत ॥१०॥

कबीर–काज कनागत कारटा, आन देव को खाय ।
कहै कबीर समुझै नहीं, बांधा यमपुर जाय ॥११॥
कबीर–देवी देव मानैं सबै, अलख न मानैं कोय ।
जा अलखेका सब किया, तासों बेमुख होय ॥१२॥
कबीर–देवी देव ठाढे भए, हमकों ठौर बताय ।
जो मुझ सों बेमूख है, तिन कों लूटो खाय ॥१३॥
कबीर–पन छूटै छूटा फिरै तेनर भूत खबीस ।
भूतनैं पीडा राखका पडा पटकके सीस ॥१४॥
कबीर–मांइ मसानी सेढि सीतला, भैरू भूत हनुमंत ।
साहिब से न्यारा रहै, जो इनको पूजंत ॥१५॥

अथ चितावनीको अंग ॥ ३० ॥

कबीर–कबिरा नौबत आपनी, दिन दश लेहु बजाय ।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥ १ ॥
कबीर–जिनके नौबत बाजती, मंगल बंधते बारि ।
एक हरिके नाम बिन, गये जनम सब हारि ॥ २ ॥
कबीर–ढोल दमामा दुरबरी, सहनाई संग भेरि ।
औसर चले बजायके, है कोई राखै फेरि ॥ ३ ॥
कबीर–सातों शब्दज बाजते, घरि घरि होते राग ।
ते मंदिर खाली परैं, बैठन लागे काग ॥ ४ ॥
कबीर–कबिरा थोडा जीवना मांडे बहुत मंडान ।
सबही ऊभा मंथसिर, राव रंक सुलतान ॥ ५ ॥

कबीर—एक दिन ऐसा होयगा, सबसे परै बिछोय।
राजा राना राव रंक, सावध क्यौं नहिं होय ॥ ६ ॥

कबीर—ऊजड़ खेड़े टेकरी, घड़ि घटि गये कुम्हार।
रावण जैसा चलिगया, लंकाको सरदार ॥ ७ ॥

कबीर—ऊँचा दीसै धोलहरा, मांडी चीती पौलि।
एकै हरिके नाम बिन, जम पारैंगे रोलि ॥ ८ ॥

कबीर—ऊँचा मंदिर मैरियां, चूना कली ढुलाय।
एकै हरिके नाम बिन, जदि तदि परलै जाय ॥९॥

कबीर—ऊँचा महल चिनाइया, सुबरन कली झुलाय।
ते मंदिर खाली परै, रहै मसाना जाय ॥ १० ॥

कबीर—कबिरा देवल हाड़का, माटी तना बंधान।
खरहर ता पाया नहीं, देवलका सहिदान ॥ ११ ॥

कबीर—कबिरा देवल ढहपरा, ईंट भई सँघार।
कोई चिजारा चूनिया, मिला न दूजी बार ॥१२॥

कबीर—कबिरा देवल ढहपरा, ईंट रही संवारी।
करी चिजारा प्रीतडी, ज्यूं ढहै न दूजीवारी ॥१३॥

कबीर—कहा चुनावै मेड़िया, चूना माटी लाय।
मींच चुनैगी पापिनी, दौरी कलैगी आय ॥ १४ ॥

कबीर—कहा चुनावै मेडिया लंबी भीत उसारि।
घर तो साढे तीन हाथ, घना तो पवने चारि ॥१५॥

कबीर—पांच तत्वका पूतला, मानुष धरिया नाम।

दिना चारके कारनैं, फिरि फिरि रोकै ठांम ॥१६॥

कबीर–कबिरा कहा गरबिया, ऊँचा देखि अवास ।
काल्हि परे भुइ लोटना, ऊपरि जमि है घास ॥१७॥

कबीर–कबिरा कहा गरबिया, इस योवनकी आस ।
टेसू फूलै दिवस दस, खरभर भये पलास ॥१८॥

कबीर–कबिरा कहा गरबिया, देही देखि सुरंग ।
बीछडया मिलसी नहीं, ज्यों कांचली भुजंग ॥१९॥

कबीर–कबिरा कहा गरबिया, चाम लपेटा हाड़ ।
हैवर ऊपर छत्र शिर, तेऊ दीये खाड़ ॥ २० ॥

कबीर–कबिरा कहा गरबिया, काल गहे कर केश ।
ना जानैं कित मारसी, कै घर कै परदेश ॥ २१ ॥

कबीर–पाकी खेती देखिके, गरवे कहा किसान ।
अजहूँ झोला बहुत है, घर आवै तब जान ॥ २२ ॥

कबीर–कबिरा ऐसा संसार है, जैसा सेंभल फूल ।
दिन दशके व्योहारमें, झूठे रंग न भूल ॥ २३ ॥

कबीर–कबिरा धूरि सकेलि कै, पुरी जो बन्धी एह ।
दिवस चारका देखना, अंत खेह की खेह ॥ २४ ॥

कबीर–कबिरा धंधै धरि रहैं, बिन धंधे धुल नाहिं ।
जो नर बिनठे मूलको, ते धंधे ध्यावैं नाहिं ॥२५॥

कबीर–पांच पहर धंधैं गया, तीन पहर रहा सोय ।
एक पहर हरि ना जप्यो, मुक्त कहां ते होय ॥२६॥

कबीर–धूम धाम में दिन गया, सोचत होगई सांझ ।
एक घरी हरि ना भजा, जननी जनि भई बांझ॥२७॥

कबीर--राति गवांई सोय के, द्योस गवांया खाय ।
हीरा जनम अमोल है, कौड़ी बदले जाय ॥ २८ ॥

कबीर–कबिरा मन्दिर लाखका, जड़िया हीरालाल ।
दिवस चारिका देखना, बिनस जायगा काल॥२९॥

कबीर–कबिरा सुपने रैनके, परा जीवमें छेक ।
जैसे हूतो द्वै जनां, जो जागूं तो एक ॥ ३० ॥

टीका–स्वल्प संसार विसघा दोजना जीव ब्रह्म मिले रैन अज्ञानता सोचै अज्ञान रहत जीव जुदा ब्रह्म दूजा जाना ज्ञान एक ब्रका ब्रह्म ।

कबीर–कबिरा सुपने रैनकै, उघरि आये नैन ।
जीव परा बहु लूटमें, जागूं तो लेन न देन ॥३१॥

अर्थ–स्वप्न शरीर । तरुन अवस्था । उघरेनैन ज्ञान उपज्यौ । लुटैं संसार। संग्रह जाग्या ज्ञान । देख्यो कछु आपनौ नहीं ।

कबीर–आज कालकी पांच दिन, जंगल होयगा बास ।
ऊपर ऊपर हल फिरै, ढोर चरैंगे घास ॥ ३२ ॥

कबीर–हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास ।
सब जग जलता देखिके, भया कबीर उदास॥३३॥

कबीर–मरोगे मरिजावोगे, कोई न लेगा नाम ।
उजड़जाय बसाओगे, छाड़ि बसंती गाम ॥ ३४ ॥

कबीर–हाड़ जलैं लकड़ी जलै, जलै, जलावनहार ।
कोतिक हारा भी जलै, कासों करूं पुकार ॥३५॥

कबीर–मौत बिसारी बावरी, अचरज किया कौन ।
तन माटीमें मिल गया, ज्यौं आटामें लौन ॥३६॥

कबीर–जनम मरन बिचारिके, कोरे काम निवारि ।
जिन पंथा तोहि चालना, सोई पंथ संभारि ॥३७॥

कबीर–कबिरा खेत किसानका, मिरगन खाया झार ।
खेत बिचारा क्या करै, धनी करै नहिं बार ॥३८॥

कबीर–बिन रखवारे बाहरी, चिड़िया खाया खेत ।
आधा परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत ॥ ३९ ॥

कबीर–कबिरा जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल ।
चेत सकै तो चेतियो, मीच परी है ख्याल ॥ ४० ॥

कबीर–कबिरा यह चिंतामनी, जनि संसारी जाय ।
जो पहली सुख भोगिया, तिनका गुड़लै खाय ॥४१॥

कबीर–जिन घट प्रीति न प्रेमरस, पुनि रसना नहिं राम ।
ते नर आये संसार में, उपज खपैं बेकाम ॥ ४२ ॥

कबीर--जिन हरिकी चोरी करी, गये राम गुन भूलि ।
ते बिधिना बागल रचे, रहे उरध मुख झूलि ॥४३॥

कबीर–राम नाम जाना नहीं, ता मुख आन धरम ।
कै मूसा कै कातरा, खाता गया जनम ॥ ४४ ॥

कबीर–राम नाम जाना नहीं, पाला सकल कुटुम्ब ।
धन्धाहो में पचि मरा, बार भई नहिं बुम्ब ॥४५॥

कबीर–राम नाम जाना नहीं, हुआ बहुत अकाज ।

बूडोगे रे बापुरो, बड़े बड़ोंकी लाज ॥ ४६ ॥

कबीर–राम नाम जाना नहीं, मेला मना बिसार ।
ते नर हाली बालदी, सदा पराये बार ॥ ४७ ॥

कबीर–इस औसरि चेता नहीं, पशु ज्यों पाली देह ।
राम नाम जाना नहीं, अन्तपरी मुख खेह ॥४८॥

कबीर–कबिरा या संसारमें, घने मनुष्य मति हीन ।
राम नाम जाना नहीं, आये टापा दीन ॥ ४९ ॥

कबीर–राम नाम जाना नहीं, बात बिनूठी मूल ।
हरिसा हीतु बिसारिया, अन्तपरी मुख धूल ॥५०॥

कबीर–राम नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोरि ।
काया हांडी काठकी, ना वह चढै बहोरि ॥ ५१ ॥

कबीर–राम नाम जाना नहीं, चूकयौ अबकी घात ।
माटी मिलन कुम्हार की, घनी सहैगी लात ॥५२॥

कबीर–माटी कहै कुम्हार को, क्या तू रूंदे मोहिं ।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं रुंधूगी तोहिं ॥ ५३ ॥

कबीर–कबिरा अन हूआ हुआ, बहु रीता है संसार ।
परा भुलावा गाफला, गया कुबुद्धी हार ॥ ५४ ॥

कबीर–कहा किया हम आयकै, कहा करैंगे जाय ।
इतके भए न उतके, चाले मूल गँवाय ॥ ५५ ॥

कबीर--कबिरा वा दिन, यादकर, पग ऊपरि तल सीस ।
मृतु मंडलमें आयके, बिसरि गया जगदीस ॥५६॥

कबीर--कबिरा हरिके नाम बिन, राजा रासभ होय ।
मांटी लदै कुंभारकै, घास न नीरै कोय ॥ ५७ ॥

कबीर--कबिरा हरिके नाम बिन, नारी कूकरि होय ।
गली गली भूँकति फिरै, टूक न डारै कोय ॥ ५८ ॥

कबीर--जग जहदामें राचिया, झूठे कुल की लाज ।
तन छीजैं कुल बिनशि है, रटै न राम जिहाज ॥५९॥

कबीर-कबिरा पानी हौजका, देखत गया बिलाय ।
ऐसे जिवरा जायगा, दिन दस ढोली लाय ॥६०॥

कबीर--यह तन काचा कुंभ है, लिया फिरै था साथ ।
ठपका लाग्या फुटि गया, कछू न आया हाथ ॥६१॥

कबीर--यह तन काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिशि खाय ।
एकहि हरिके नाम बिन, जदि तदि परलै जाय ॥६२॥

कबीर--यह तन काचा कुंभ है, मांहिं किया रहबास ।
कबिरा नैन निहारिया, नहीं पलककी आस ॥६३॥

कबीर--कबिरा यह तन जात है, सके तो ठौर लगाय ।
कै सेवा कर साधुकी, कै गोविन्द गुण गाय ॥६४॥

कबीर-कबिरा यह तन जात है, सकै तो लेहु बहोरि ।
खाली हाथे सो गये, जिनके लाख करोरि ॥६५॥

कबीर-कबिरा यह तन बन भया, कर्म जो भया कुहारि ।
आप आपको काटि है, कहै कबीर बिचारि ॥६६॥

कबीर–दुनियाँ भांडा दुःखका, भरा मुहाँमुह मुख ।
आदि अल्लाह रामकी, कुरलै कौंनी कुख ॥ ६७ ॥
कबीर–दुनियाँ के मैं कुछ नहीं, मेरे दुनियाँ कात ।
साहब दर देखे खड़ा, दुनियाँ दोजख जात ॥ ६८ ॥
कबीर–दुनियाँ सेती दोसती, होय भजनमें भंग ।
एका एकी राम सं, कै साधन के संग ॥ ६९ ॥
कबीर–दुनियाँके धोखे मुआ, चला कुटुम्बकी कानि ।
तब कुलका क्या लाज है, जब ले धरा मसानि ॥७०॥
कबीर–कुल खोया कुल ऊबरै, कुल राखै कुल जाय ।
राम निकुल कुल भेटिया, सब कुल रहा समाय ॥७१॥
कबीर–कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय ।
तब कुल काको लाज है, चारि पांवको होय ॥७२॥
कबीर–कुल करनी के कारने, ढिगहि रहिगया राम ।
तब कुल काको लाजि है, जब यम की धूमाधाम ॥७३॥
कबीर–कहत सुनत जग जात है, विषय न सूझै काल ।
कहै कबीर सुन प्रानिया, बानी ब्रह्म सम्हाल ॥७४॥
कबीर–कबिरा केवल राम की, तू मति छाड़े ओट ।
घन अहरनबिच लोह ज्यों, घनी सहै शिरचोट ॥७५॥
कबीर–कबिरा केवल राम कह, शुद्ध गरीबी लाज ।
कूर बडाई बूड़सी, भारी परसी काज ॥७६॥
कबीर–काया मंजन क्या करे, कपड़ा धोयम धोय ।

उज्वल हुआ न छूटिये, सुख निदरी नहिं सोय ॥७७॥

कबीर–उज्वल पहिरे कापड़ा, पान सुपारी खाय ।
एकहिं हरिके नाम बिन, बाँधा यमपुर जाय ॥७८॥

कबीर–मलमल खासा पहरते, खाते नागर पान ।
टेढा होकर चालते, करते बहुत गुमान ॥ ७९ ॥

कबीर–महलन मांहीं पौढते, परिमल अंग लगाय ।
ते सुपने दीसै नहीं, देखत गये विलाय ॥ ८० ॥

कबीर–महलन मांहीं पौढते, परिमल अंग लगाय ।
छत्र पती की छारमें, गदहा लोटे जाय ॥ ८१ ॥

कबीर--जंगल ढेरी राखकी, उपरि उपरि हरियाय ।
तेभी होते मानवी, करते रंग रलियाय ॥ ८२ ॥

कबीर–मेरा संगी कोई नहीं, सबै स्वारथी लोय ।
मन परतीति न ऊपजे, जीव विश्वास न होय ॥८३॥

कबीर–थली जो जरता मिरगला, बेधा एकज सौन ।
हम तो पंथी पंथ सिर, हरा चरैगा कौन ॥ ८४ ॥

कबीर--जिसको रहना उत घर, सो क्यों तोडै मित्त ।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥ ८५ ॥

कबीर--इत पर घर उत है घरा, बनिजन आये हाटि ।
कर्म करीना बेचिकै, उठि करि चालो बाट ॥८६॥

कबीर–ज्यों कोरी रेजा बुनै, नीरा आवै छोर ।
ऐसा लेखा मीचका, दौरि सकै तो दौर ॥ ८७ ॥

कबीर–कोठे ऊपर दौरना, सुख नींदरी न सोय।
पुण्ये पाया है देहरा, ओछी ठौर न खोय ॥ ८८ ॥
कबीर–मैं मेरी जिन करै, मेरी मूल बिनासि।
मेरी पगका पैखडा, मेरी गलकी फांसि ॥ ८९ ॥
कबीर––मैं मैं बडी बलाय हैं, सको तो निकसो भागि।
कबलग राखौ रामजी, रुई लपेटी आगि ॥ ९० ॥
कबीर–मोर तोर की जेवरी, बल बंधा संसार।
कायस कूटै बस्तु खल, दाझिन बारंबार ॥ ९१ ॥
कबीर–मोर तोर की जेवरी, गल बंधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधै, जाके राम अधार ॥ ९२ ॥
कबीर–जिहिं जेवरी जग बंधा, तू मति बंध कबीर।
जैसे आटा लून बिन, सूना हुआ शरीर ॥ ९३ ॥
कबीर–नान्हां करि तू चित्त दै, ज्यों महँगे मोल बिकाय।
गाहक राजा राम है, और न नीरा जाय ॥९४॥
कबीर–कबिरा नावन झांझरी, कूरा खेवनहार।
हलका हलका तरिगया, बूड़े जिन शिरभार ॥९५॥
कबीर–कबिरा नावन झांझरी, भरी बिराने भार।
खेवट सों परिचय नहीं, क्यों कर उतरै पार ॥९६॥
कबीर–कबिरा पूजा साहकी, तू जिन करे खुवार।
खरी बिगुरचिन होयगी, लेखा देती बार ॥ ९७ ॥
कबीर–कबिरा चित्त चमकिया, किया पयाना दूरि।

कायथ कागद काढ़िया, दरगह लेखा पूरि ॥९८॥

टीका—कायथ चित्रगुप्त।

कबीर–लेखा देना सोहरा, जो दिल सांचा होय।
साईंके दरबारमें, पला न पकरै कोय ॥ ९९ ॥

कबीर–कायथ कागद काढ़िया, लेखा वार न पार।
जब लगि स्वाँस शरीरमें, तब लगि राम सँभार ॥१००॥

कबीर–साई सेती चोरिया, चोरा सेती जुझ्झ।
तब जानेगा जीवरा, मार परैगी तुझ्झ ॥ १०१ ॥

कबीर–कबिरा रसरी पांवमें, कहँ सोवैं सुख चैन।
स्वास नकारा कूंचका, बाजत है दिन रैन ॥१०२॥

कबीर–तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय।
को काहू को है नहीं, सब देखा ठोकि बजाय ॥१०३॥

कबीर–राम कहेते खिज मरै, कुष्ठ होय गलि जाय।
शूकर ह्वै करि अवतरै, नाक बूंडता खाय ॥१०४॥

कबीर–पुर पट्टन काया पुरी, पांच चोर दश द्वार।
यम राजा गढ भेलसी, सुमिरि लेहु करतार ॥१०५॥

कबीर–पीपर रूना फूल बिन, फल बिन रूनी राय।
एकाएकी मानुषा, टप्पा दीया आय ॥ १०६ ॥

कबीर–राज द्वारा बंधिया, मूंडी धुनैं गयंद।
मनुषजन्म कब पायहूं, कब भजि हों गोविन्द ॥१०७॥

कबीर–मानुष जन्म दुर्लभ अहै, होय न बारंबार।

तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार ॥१०८॥

कबीर–आये हैं ते जायंगे, राजा रंक फकीर ।
एक सिंहासन चढ़ि चले, इक बांधे जात जंजीर ॥१०९॥

कबीर–या मन गहि जो थिर रहे, गहरी थूंनी गाड़ि ।
चलती बिरिया उठिचला, हस्ती घोड़ा छांड़ि ॥११०॥

कबीर–तू मति जानैं बावरे, मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रान सौं बँधि रहा, सो अपना नहिं होय॥१११॥

कबीर–ऐसा संगी कौन है जैसा जिवरा देह ।
चलती बिरियां रे नरा डारि चला करि खेह ॥११२॥

कबीर–धरती तो रोटी भई, कागा लिया जाय ।
पूछौ अपने गुरूको, कहाँ बैठिके खाय ॥ ११३ ॥

कबीर–धीरज तो रोटी भई, कुबुधि काग लैजाय ।
कहै कबीरा बैठिके, बाद वृक्ष पर खाय ॥११४॥

कबीर–शेष नागके सहस्र फन, फन फन जिह्वा दोय ।
नरके एकै जीभहै, ताही में रह सोय ॥ ११५ ॥

अथ मनको अंग ॥ ३१ ॥

कबीर–मनके मते न चालिये, छांड़ि जीवकी बानि ।
कतवारीके सूत ज्यों, उलटि अपूठा आनि ॥ १ ॥

कबीर–मनके मते न चालिये, मनका मता अनेक ।
जो मनपर असवार है, ते साधू कोइ एक ॥ २ ॥

कबीर–खैंचूं तौ आवै नहीं, जो छांड़ूं तो जाय ।

कबीर मनको पूछरे, प्रान टटीबा खाय ॥ ३ ॥

कबीर–चिंता चित्त बिसारिये, फिरि बूझियन आन ।
इंद्री पसारा मेटिये, सहज मिलैं भगवान ॥ ४ ॥

कबीर–कबिरा सेरी सांकरी, चंचल मनुवा चोर ।
गुन गावै लौलीनह्वै, कछूक मनमें और ॥ ५ ॥

कबीर–चंचल मनुवा चेत रे, सोवै कहा अजान ।
यम घर जब लेजायगा, पड़ा रहेगा म्यान ॥ ६ ॥

कबीर–मनको मारूं पटकि करि, टूक टूक हो जाय ।
बिषकी क्यारी बोय कर, लुणता क्यों पछिताय ॥७॥

कबीर–कर्त्ता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय ।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहां ते खाय ॥ ८ ॥

कबीर–मन को मारूँ पटकि करि, टूक टूक होजाय ।
टूटे पाछे फिर जरै, बीच गांठि परि जाय ॥ ९ ॥

सोरठा

कबीर–मनजानैं सब बात, जानि बूझि औगुन करै ।
काहे की कुसलात, लै दीपक कूयें परै ॥ १० ॥

साखी

कबीर–या मनको बिसमिल करूं दीठा करूं अदीठ ।
जो सिर राखूँ आपना, पर सिर जलौं अगीठ ॥ ११ ॥

कबीर–मन तो यह मिरगा भया, खेत बिराना खाय ।
सूला करि करि सेकसी, धनी पहूँचे आय ॥ १२ ॥

कबीर-मन तो मैंगल भया, यामें बहुत बिकार ।
या मन कैसे धोइये, संतो करो, बिचार ॥१३॥

कबीर-गुरु धोबी शिष्य कापडा, साबन सिरजनहार ।
सुरति शिला पर धोइये, निकसै रंग अपार ॥१४॥

कबीर-तन माहीं जो मन धरै, मन धरि उज्ज्वल होय ।
साहब सों सन्मुख रहे, तो अमरापुर जोय ॥१५॥

कबीर-मन गोरख गोविंद मन, मनही औषधि सोय ।
जो मन राखै यतन करि, आपै अरता होय ॥१६॥

कबीर-पै पानी की प्रीतिरी, परा जो कपटी लौन ।
खंड खंड करि रमिगया, ताहि मिलावे कौन ॥१७॥

कबीर-मन मोटा मन दूबला, मन पानी मनलाय ।
मनको जैसीही ऊपजै, तैसी ही ह्वै जाय ॥१८॥

कबीर-मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक ।
जो यह मन हरि सों मिलै, तो हरि भी मिलै निशंक ॥१९॥

कबीर-कबहुँक मन गगनहिं चढै, कबहूँ गिरै पताल ।
कबहुँक मन उन मन लगै, कबहूँ जावै चाल ॥२०॥

कबीर-मनके बहुते रंग हैं, छिन छिन मध्ये होय ।
एके रंगे जो रहे, ऐसा बिरला कोय ॥२१॥

कबीर-या मन बिकाराँ परा, गया स्वादके साथ ।
गटका खाया बरजताँ, अब क्यों आवे हाथ ॥२२॥

कबीर-कोटि करम करे पलकमें, या मन विषिया स्वाद ।

सतगुरु शब्द मानै नहीं, जनम गवाँवे बाद ॥२३॥

कबीर–मनुवा तौ फूला फिरैं, कहै जो करूँ धरम ।
कोटि कर्म सिर पर चढे, चेति न देखै मरम ॥२४॥

कबीर–मनुवा तो गाफिल भया, सुमिरन लागै नाहिं ।
घनी सहैगा शासना, यमकी दरगह माँहि ॥२५॥

कबीर–या मन फटकि पिछौरि लो, सब आपा मिटि जाय ।
पिंगला होय पिय पिय करै, ताको काल न खाय ॥२६॥

कबीर–मैं ममता मन मारिले, घटही मांहीं घेरि ।
जबहीं चालै पीठि दे, आंकश दै पै फेरि ॥२७॥

कबीर–कागद केरी नावरी, पानी केरी गंग ।
कहै कबीर कैसे तिरै, पांच कुसंगी संग ॥२८॥

कबीर–मन पाँचोके बसि परा, मनके बसि नहिं पाँच ।
जित देखों तित दौ लगी, जिन भागों तित आँच ॥२९॥

कबीर–निश्चिंत होय के हरि भजे, मनमें राखे साँच ।
इन पांचन को वशि करै, ताहि न आवे आँच ॥३०॥

कबीर–पांचों वैरी जीवके, दलै इनै इक चित्त ।
एक देखै एक ध्यावही, औगुन बहुत अमित्त ॥३१॥

कबीर–पांच सहाई जीवके, जो सतगुरु मेरा होय ।
कोइ ध्यान धरे सुमिरन करै, काजन बिगरे कोय ॥३२॥

कबीर–इन पाँचन सों बंधि करी, फिरि फिरि धरै शरीर ।
जो यह पांचौ बसि करै, सोही लागै तीर ॥३३॥

कबीर–कबिरा वैरी सबल है, एक जीव रिपु पांच ।
अपने अपने स्वादको, बहुत नचावै नाच ॥३४॥
कबीर–मन नहिं मारा मन करी, सका न पांच प्रहारि ।
शील सांच सरधा नहीं, अजहूँ इन्द्री उघारि ॥३५॥
कबीर–इन्द्री पोषत चाहसों, मनमें शंका नाहिं ।
भाव भक्ति कों यों कहै, निह करमाके मांहिं ॥३६॥
कबीर–कबिरा वह मन कित गया, जो मन होता काल ।
डूँगर बूड़ा मेह ज्यों, गया निवाना चाल ॥ ३७ ॥
कबीर–काटी कूटी माछली, छींके धरी चहोरि ।
कोइ यक औगुन मन बसा, दहमें परी बहोरि ॥३८॥
कबीर–मनुवा तो पंछी भया, उड़िकै चला अकास ।
ऊपरहीतें गिरि परा, मन मायाके पास ॥ ३९ ॥
कबीर–मन पंछी जब लग उड़े, विषय वासना माहिं ।
ज्ञान बाजकी झपट में, तब लग आया नाहिं ॥४०॥
कबीर–मनकी घाली हूँगई, मनकी घाली जांव ॥
संग जो परी कुसंगके, हाटे हाट बिकांव ॥ ४१ ॥
कबीर–काया कजरीवन अहै, मन कुंजर महंमत ।
अंकश ज्ञान रतन है, फेरें साधू संत ॥ ४२ ॥
कबीर–कबिरा मनहि गयंद है, आंकुस दै दै राखि ।
विष की बेली पर हरो, अमृत के फल चाखि ॥४३॥
कबीर–मन कुंजर महमंत था, फिरता गहर गंभीर ।

दोहरी तेहरी चौहरी, परिगई प्रेम जंजीर ॥४४॥

कबीर--कबिरा मन मरकट भया, कहूँ न नेक ठहराय ।
राम नाम बांधे बिना, जित भावे तित जाय ॥४५॥

कबीर-कबिरा मन तो एक है, भाव तहां लगाय ।
भावै हरिकी भक्ति कर, भावै विषै कमाय ॥४६॥

कबीर-मनके हारे हार है, मनके जीते जीत ।
कहै कबीर हरि पाइये, मनहीको परतीत ॥ ४७ ॥

कबीर-कबिरा मन मेवासी भया, बसि करि सकै न कोय ।
सनकादिक ऋषि सारिखे, तिनके गया बिगोय ॥४८॥

कबीर-मनके मारे बन गये, बन तजि बस्ती मांहिं ।
कहै कबीर क्या कीजिये, या मन ठहरै नाहिं ॥४९॥

कबीर-मन गया तो जानदे, दृढ करि राख शरीर ।
बिनु जो चढे कमानके, कैसे लागै तीर ॥ ५० ॥

कबीर-काया कसो कमान ज्यों, पांच तत्त्व कर बान ।
मारो तो मन मिरगला, नहीं तो मिथ्या जान ॥५१॥

कबीर-बिना सीसका मृग है, चहुँ दिशि चरने जाय ।
बांधि लाओ गुरु ज्ञानसूं, राखो तत्त्व लगाय ॥५२॥

कबीर-तीन लोक चोरी भई, सबका धन हरि लीन्ह ।
बिना सीसका चोरवा, परा न काहू चीन्ह ॥५३॥

कबीर-चोरवा भल हम चीन्हिया, चोरवा हमें न चीन्ह ।

कहै कबीर विचारिके, हमहीं दीक्षा दीन्ह ॥५४॥

कबीर–चोर भरोसे साहके, लाया वस्तु चोराय ।
पहिले बांधो साहुको, चोर आप बँधि जाय ॥५५॥

टीका–चोर मन । साह शरीर । वस्तु माया । पहली बांधो शरीर बंधै शरीरके गुण जीते ।

कबीर–चोर भरोसे साहुके, वस्तु पराई लेय ।
जब लग साह न बाँधिये, चोरबस्तु नहिं देय ॥५६॥

टीका–चोर मन । साह शरीर । भरोसे मन जानै शरीर--अमर होयगा- वस्तु माया । पराई परमेश्वरकी लै अपनावे मेरो धन मेरो धाम । जब लग साह शरीर-बांधिये नहीं तब लगि साह शरीरके गुन जीतै नहीं चोर मन, वस्तु माया तिस्का त्याग करे नहीं ।

कबीर–अपने अपने चोरको, सब कोइ डारै मार ।
मेरा चोर मुझको मिलै, सर्वस डारूं वार ॥ ५७ ।

कबीर–काया देवल मन ध्वजा, विषय लहरि फहराय ।
मन चलता देवल चलै, ताको सर्वस जाय ॥५८॥

कबीर–जो यह मन चलै तो, फिरि फिरि नाम लगाय ।
तन मन दोऊ हाथ करि, ताको कछू न जाय ॥५९॥

कबीर–मन चलता तन भी चलै, ताते मनको घेरि ।
तन मन दोऊ बसि करै, होय राईसूं मेरि ॥६०॥

कबीर–तन तुरंग असवार मन, कर्म पयादा साथि ।
तृष्णा चली शिकारको, बिषै बाज लिए हाथि ॥६१॥

कबीर–मना मनोरथ छांडिदे, तेरा किया न होय ।

पानी में घी नीकसैं, लूखा खाय न कोय ॥६२॥

कबीर–कबिरा यह मन लालची, समझे नहीं गँवार ।
राम भजन को आलसी, खावे को हुशियार ॥६३॥

कबीर–कबिरा यह मन मसखरा, कहूँ तो माने रोस ।
जा मारग साहब मिलै, तहाँ न चालै कोस ॥६४॥

कबीर–कबिरा मनका मांहिला, अबला बहै असोस ।
देखतही दहमें परै, देय कसीको दोस ॥६५॥

कबीर--मन निर्मल हरि नामसूं, कै साधनके भाय ।
कोइला दूनी कालमां, सौ मन साबुन लाय ॥६६॥

कबीर--कहत सुनत सब दिन गये, उरझि न सुरझा मन ।
कहै कबीर चेता नहीं, अजहूँ पहला दिन ॥६७॥

कबीर--यह मन साधू लै मिलो, नहिं तो लेगा जान ।
मन मुनूसिफ को पूछि लैं, नीकी होय तो मान ॥६८॥

कबीर--यह मन नीचा मूल है, नीचा करम सुहाय ।
अमृत छांड़े मानकरि, बिषहिं प्रीति करि खाय ॥६९॥

कबीर--मन नाहीं छांड़े बिषय, बिषय न मन को छाँड़ि ।
इनका यही स्वभाव है, पूरी लागी आड़ि ॥७०॥

कबीर–पण्डित मूल विनासिया, कह क्यों विगरह कीज ।
ज्यों जलमें प्रतिविम्ब है, त्यों सकल राम जानीज ॥७१॥

कबीर–हो मन सोनो सो बिषय, सो त्रिभुवनपति कहु कस ।
कहै कबीर वैदानरा ज्यों, जल पूरा सकल रस ॥७२॥

कबीर–मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद सोइ साध ।
जो मानै गुरु वचनको, ताका मता अगाध ॥७३॥

कबीर–सो सो सेरी हूँ तकों, जो जो मूंदी आव ।
नख सिख पाखरि मनहिके, करूं कहाँ जो घाव ॥७४॥

कबीर–अकथ कथा या मनहिकी, कहै कबीर समुझाय ।
जाको या समझा परै, ताको काल न खाय ॥७५॥

कबीर–जेती लहरी समुद्रकी, तेती मन की दौरि ।
सहजे हीरा ऊपजे, जो मन आवै ठौरि ॥ ७६ ॥

कबीर–समुद्र लहरि जो थोरिया, मन लहरे घनियाय ।
केती आय समाय है, केती जाय बिसराय ॥७७॥

कबीर–कबिरा लहरि समुद्रकी, केती आवै जाहिं ।
बलिहारी वा दास की, उलटि समावै माँहि ॥७८॥

कबीर–दौरत दौरत दौरिया, जहँ लगि मनकी दौर ।
दौर थकी मन थिर भया, बसा ठौर की ठौर ॥७९॥

कबीर–या तनमें मन कहँ बसे, निकसि जाय केहि ठौर ।
गुरु गम हो तो पेखिले, नहिं तो गुरु कर और ॥८०॥

कबीर–नैना माहीं मन बसै, निकसि जाय सब ठौर ।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन शिर मौर ॥८१॥

कबीर–दूध काढ़ि घृत कहा गयो, कासा फूटा नाद ।
तन छूटै मन कहाँ गया; जानै बिरला साध ॥८२॥

कबीर–दूध फाटि घृत दूधे मिला, नाद जो मिला अकास ।

तन छूटै मन तहां गया, जहां धरी मन आस ॥८३॥

कबीर–कबिरा यह गति अट पटी, चट पट लखी न जाय ।
जो मनकी खटपट मिटै, अघट भये ठहराय ॥८४॥

कबीर--अघट भया खटपट मिटै, रहै निरंतर होय ।
कहै कबीर तब जानिये, अंतर पट नहिं दोय ॥८५॥

अथ अमनको अंग ॥ ३२ ॥

कबीर–पहले यह मन काग था, जीवन करता घात ।
अब यह मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात ॥१॥

कबीर–यह मन तो पर्वत हता, अब मैं पाया जानि ।
टांकी लागी शब्दकी, निकसी कंचन खानि ॥ २॥

कबीर–जिहिं सर घड़ा न बूड़ता, मैंगल मलि मलि न्हाहिं ।
देवल बूडा कलससों, पक्षि पियासा जाहिं ॥ ३ ॥

टीका--सर शब्द । घडा घट । मैंगल मन । देवल देह । कलस कँमेला । पक्षी प्रकृति । दूजा सर साहब ।

कबीर–भँवरा बारी परहरी, मेवा विलम्ब जाय ।
बावन चन्दन घर किया, भूलि गया बनराय ॥४॥

टीका--भँवरा मन।बारी विषै।मेवा माधौ। बावन चंदन ब्रह्म । बनराय काया।

कबीर–मेरा मन मकरंद था, करता बहुत बिगार ।
सूधा होय मारग चला, हरि आगै हम लार ॥५॥

कबीर–एक जो दोस्त हमहूँ किया, जिहि गल लाल कबाय।
सबजग धोबी धोइ मरे, तो भी रंग न जाय ॥ ६ ॥

टीका–दोस्त कर्ता । लाल कबाय मनुष्यकी काया ।

कबीर–पानी हूते पातला, धूआंहूते झीन ।
पतनहु बेग उतावला, दोस्त कबीरा कीन्ह ॥ ७ ॥
कबीर–पुहुप बासते पातला, सूक्षम जाको रंग ।
कबिरा तासों मिलि रहा, कबहूँन छाडै संग ॥ ८ ॥
कबीर–मन सों मन मिलता नहीं, होता तनका भंग ।
अब मन भया जो कामरी, चढै न दूजा रंग ॥ ९ ॥
कबीर–मन दीये मन पाइये, मन बिन मान न होय ।
मन उनमन उस अंड ज्यों, अनल अकासा जोय॥१०॥
कबीर–मनुवा तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय ।
अमर लोक सुचिपाइया, कबहूँ न न्यारा होय॥११॥

अथ पवनको अंग ॥ ३३ ॥

कबीर–कौन पवन घर संचरै, कहाँ किया परकास ।
नाद बिंद जब ना हता, तब कहाँ किया निवास ॥१॥
कबीर–हुसल पवन घर संचरै, पंचम किया प्रकास ।
नाद बिंद जब ना हता, तत्त्वहि किया निवास ॥२॥
कबीर–सकल पसारा पवनका, सात द्वीप नव खण्ड ।
कहा नाम उस पवनका, जो गरजे ब्रह्मंड ॥ ३ ॥
कबीर–सकल पसारा पवनका, सात द्वीप नव खण्ड ।
सोहं नाम उस पवनका, जो गरजे ब्रह्मण्ड ॥ ४ ॥
कबीर–कौन पवन धरती बसे, कौन पवन आकाश ।
कौन पवन मध्ये बसे, कौन पवन परकाश ॥ ५ ॥

कबीर–धीर पवन धरती बसे, अकह पवन आकाश।
मधुर पवन मध्ये बसे, अग्र पवन परकाश ॥ ६ ॥
कबीर–कौन पवन लै आवही, कौन पवन लै जाय।
कौन पवन भरमत फिरै, सों मोहिं देहु बताय ॥७॥
कबीर–सहज पवन लै आवही, सुरति पवन लै जाय।
जीव पवन भरमत फिरैं, सतगुरु कहै समुझाय ॥८॥
कबीर–तनका मंजन नीर है, नीरहि मंजन पौन।
कहै कबीर सुन पण्डिता, पवनका मंजन कौन ॥९॥
कबीर–तनका इंद्री मैल है, मन पवना लै धोय।
ज्ञान गुरूतें पाइये, पवनका मंजन सोय ॥१०॥

अथ सूक्ष्म मारगको अंग ॥ ३४ ॥

कबीर–अब हम चले अमरापुरी, टारे टूरे टाट।
आवन होय सो आइयो, सूली ऊपर बाट ॥ १ ॥
कबीर–सूली ऊपर घर करे, विषका करे अहार।
तिनका कला कहा करै, जो आठ पहर हुशियार ॥२॥
कबीर–गागर ऊपर गागरी, चोली ऊपर हार।
सूली ऊपर साथरा, जहाँ बुलावै यार ॥ ३ ॥
कबीर–यार बुलावै भावसों, मोपै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सकों पाय ॥४॥
कबीर–जिस कारण मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं ते सनमुख भया, लागि कबीरा पाय ॥ ५ ॥

कबीर–जो आवै तो जाय नहिं, जाय तो कहाँ समाय ।
अकथ कहानी प्रेमकी, बूझे ही बूझी जाय ॥ ६ ॥
कबीर–कौन देश कहाँ आइया, जानै कोई नाँहिं ।
वह मारग पावै नहीं, भूलि परै इस माँहिं ॥ ७ ॥
कबीर–नाव न जानै गाँवका, विन जाने कितजावँ ।
चलता चलता युग भया, पाव कोसपर गाँव ॥८॥
कबीर–सतगुरु दीन दयाल हैं, दया करी मोहिं आय ।
कोटि जनम का पंथ था, पलमें पहुँचा जाय ॥९॥
कबीर–अगम पंथ मन स्थिर रहै, बुद्धि करै प्रवेश ।
तन मन धन सब छाँडिकै, तब पहुँचे वा देश ॥१०॥
कबीर–अगम हता सो सुगम किया, तस गुरु दिया बताय ।
कोटि कल्पका पंथ था, पलमें पहुँचा जाय ॥११॥
कबीर–उततें कोई न बहुरा, जाको बूझूं धाय ।
इतते सबही जात हैं, भार लदाय लदाय ॥ १२ ॥
कबीर–उततें सतगुरु आइया, जाकी बुद्धि है धीर ।
भवसागरके जीवको, खेइ लगावै तीर ॥ १३ ॥
कबीर–सबको पूछत मै फिरा, रहन कहै नाहिं कोय ।
प्रीति न जोरै रामसे, रहन कहाँसे होय ॥ १४ ॥
कबीर–चलन चलन सबको कहै, मोहिं अंदेशा और ।
साहिबसूँ परिचय नहीं, पहुँचेंगे किस ठौर ॥१५॥
कबीर–जानेको तो जगह नहीं, रहनेको नहिं ठौर ।

कहै कबीरा संत हो, अविगतिकी गति और ॥१६॥

कबीर--चलूँ चलूँ सब कोइ कहै, पहुँचै बिरला कोय ।
एक कनक अरु कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय ॥१७॥

कबीर-कबिरा मारग कठिन है, कोइ न सकई जाय ।
गये तो बहुरे नहीं, कुशल कहै को आय ॥ १८ ॥

कबीर-कबिरा का घर सिखर है, जहाँ सिलहिली गैल ।
पाव न टिकै पपीलिका, पंडित लादे बैल ॥ १९ ॥

कबीर-जहाँ कालकी गम नहीं, मुआ न सुनिये कोय ।
कहै कमाली विभसो, तहाँ होय तो होय ॥ २० ॥

कबीर-जहाँ न चीटी चढि सकै, राई ना ठहराय ।
मनुवा तहँ लै राखिया, तेही पहुँचे जाय ॥२१॥

कबीर-कबिरा मारग कठिन है, सब मुनि बैठे थाक ।
तहाँ कबीरा चढिगया, गहि सतगुरु की साक ॥२२॥

कबीर-सुर नर थाकै मुनि जना, तहाँ न कोई जाय ।
मोटा भाग कबीर का, तहां रहा घर छाय ॥२३॥

कबीर-सुर नर थाके मुनिजना, थाके विष्णु महेश ।
तहां कबीरा चढ़ि गया, सतगुरुके उपदेश ॥२४॥

कबीर-कबिरा हारि हथियार कर, कूरा गली निवारि ।
जो जो पंथा चालना, सो सो पंथ सँभारि ॥२५॥

कबीर-वह मारग कितकों गया, मारग पहुँचे साद ।
मैं तो दोऊ गहि रहा, लोभ बड़ाई बाद ॥ २६ ॥

कबीर–अगमहुतें अगम है, अपरम पार अपार ।
तहँ मन धीरज क्यों धरै, पंथ खरा निरधार ॥२७॥

कबीर–बिन पावनको राह है, बिन बस्ती का देश ।
विना पिण्डका पुरुष है, कहै कबीर संदेश ॥ २८ ॥

कबीर–जिहि पैडे पण्डित गया, तिसही गही बहीर ।
औघट घाटी नामकी, तहां चढि रहा कबीर ॥२९॥

कबीर–घाटहिं पानी सब भरै, औघट भरै न कोय ।
औघट घाट कबीरका, भरे सो निर्मल होय ॥३०॥

कबीर–जहाँ चतुरकी गम नहीं, तहां मूरख किमि जाय ।
वाह बिधाता नाथ है, काग कपूरहिं खाय ॥३१॥

कबीर–चलतां चलतां पग थकै, निपट करारी कोस ।
विना दयाल झलका परै, काको दीजै दोस ॥३२॥

कबीर–बाट बिचारी क्या करै, पंथि न चलै सुधारि ।
राह आपनी छांडिकै, चलै उजारि उजारि ॥३३॥

कबीर–कहाँते तुम जो आइया, कौन तुम्हारा ठाम ।
कौन तुम्हारी जाति है, कौन पुरुषको नाम ॥३४॥

कबीर–अमर लोकते आइया, सुखके सागर ठाँम ।
जाति हमारी अजाति है, अमर पुरुषको नाम ॥३५॥

कबीर–कौन तुम्हारी जाति है, कौन तुम्हारो नाम ।
कौन तुम्हारा इष्ट है, कौन तुम्हारा गाँव ॥ ३६ ॥

कबीर–जाति हमारी आतमा, प्रान हमारा नाम ।

अलख हमारा इष्ट है, गगन हमारा ग्राम ॥३७॥

कबीर-कहाँते जीवहिं आइया, कहवाँ जाय समाय।
कौन डोरि धरि संचरै, मोहिं कहो समुझाय ॥३८॥

कबीर-सरगुनते जीव आइया, निर्गुन जाय समाय।
सुरति डोरि धरि संचरै, सतगुरु कहै समुझाय॥३९॥

कबीर-कौन सुरति ले आवई, कौन सुरति ले जाय।
कौन सुरति है अस्थिरै, सो गुरु देहु बताय ॥४०॥

कबीर-वास सुरति धरि आवई, शब्द सुरति धरि जाय।
परिचय सुरति है अस्थिरै, सो गुरु दई बताय॥४१॥

कबीर-ना वहाँ आवागमन था, नहिं धरती अकास।
कबिरा जन कहवाँ हते, तब था कोइ न पास ॥४२॥

कबीर-नाहीं आवा गमन था, नहिं धरती आकास।
हतो कबीरा राम जन, साहब पास खवास ॥४३॥

कबीर-पहुँचेंगे तब कहेंगे, वेही देश की सीच।
अबहिं कहाँ तिगाड़िये, बेड़ी पायन बीच ॥ ४४ ॥

कबीर-करताकी गति अगम है, तू चल अपने उनमान
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचोगे परमान ॥ ४५ ॥

अथ सूक्ष्म जनमको अंग ॥ ३९ ॥

कबीर-सूक्ष्म सुरतिका मरम है, जीव न जानत जाल।
कहै कबीरा दूरि करि, आतम आदिही काल ॥१॥

कबीर–अंतःकरण मन मही, मनही मनोरथ माँहि ।
उपजत उपजत जानिये, बिनशत जानै नाँहि ॥ २ ॥

कबीर–प्राण पिंडको तजि चलै, मुवा कहै सब कोय ।
जीव छताँ जामें मरैं, सूक्षम लखै न सोय ॥ ३ ॥

कबीर–मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार ।
ऐसा मरना को मरै, दिनमें सौ सौ बार ॥ ४ ॥

अथ आशाको अंग ॥ ३६ ॥

कबीर–आशा एक जो रामकी, दूजी आश निरास ।
पानी माहीं घर करै, सो भी मरै पियास ॥ १ ॥

कबीर–आशा एक जो रामकी, दूजी आश निवारि ।
दूजी आशा मारसी, ज्यों चौपरकी सार ॥ २ ॥

कबीर–आशा जीवै जगमरै, लोग मरै मरिजाँहि ।
धन संचैं तेभी मरैं, उबरैं सो धन खाँहि ॥ ३ ॥

कबीर–आशा आश जग फंदियो, रहै उरध लपटाय ।
राम आश पूरन करै, सकल आस मिटि जाय ॥ ४ ॥

कबीर–आशा एकहि रामकी, युग युग पुरवै आस ।
ज्यों पंडल कोरो रहै, बसै जो चंदन पास ॥ ५ ॥

कबीर–आसा बेली कर्म बन, गरजै मनके साथ ।
तिसना फूल चमकना, फल करताके हाथ ॥ ६ ॥

कबीर–आसा तृष्णाही नदी, तहाँ न मन ठहराय ।

इन दोनोंको लंघि करि, चौड़े बैठे जाय ॥ ७ ॥

कबीर–चौड़े बैठे जायके, नाँव धरा रनजीति ।
साहब न्यारा देखियां, अंतर्गतिकी प्रीति ॥ ८ ॥

कबीर–आसा तर्क सवादियां नैनै गये सुजान ।
घने पखेरू मारिया, जाजरी जोरि कमान ॥ ९ ॥

कबीर–आशा कोई धन करूं, मनसा करूं भभूत ।
जोगी फिरि फेरी करूं, यों बनि आवै सूत ॥१०॥

कबीर–कबिरा जोगी जगत गुरु, तजै जगतकी आस ।
देखा चोहै जगतकौं, जगत गुरू को दास ॥११॥

कबीर–योगी होय जग जीतता, बहिरत है संसार ।
एक अंदेशा रहि गया, पीछे परा अहार ॥१२॥

कबीर–बहुत पसारा जनि करै, कर थोरेकी आस ।
बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास ॥१३॥

कबीर–जो तू चाहै मुझहिंको, मन कछु राखै आस ।
मुझहि सरीखा ह्वै रहो, सब कुछ तेरे पास ॥१४॥

कबीर–करी बांहुबल आपनी, छाँडि बिरानी आस ।
जाके आँगन नदी बहै, सो क्यों मरै पियास ॥१५॥

कबीर–आसन मारै कहा भयो, मरी न मनकी आस ।
तेली केरे बैल ज्यों, घरही कोस पचास ॥१६॥

कबीर–सब आसन आसा तने, निबरित कोई नाहिं ।

निवृतिको जानै नहीं, प्रवृति परपंच माँहिं ॥१७॥
कबीर-बाड़ चढंती बेलरी, ऊरझी आसा फंद ।
टूटे परै जुटै नहीं, भई जो वाचा बंद ॥ १८ ॥

साखी ॥ अथ मायाको अंग ॥ ३७ ॥

कबीर-जग हटवारा स्वाद ठग, माया वेश्या लाय ।
राम नाम गाढ़ा गहो, जनि जाहु जन्म ठगाय ॥१॥
कबीर-कबिरा माया पापिनी, फंद लै बैठी हाटि ।
सब जग तौ फंदे परा, गया कबीरा काटि ॥ २ ॥
कबीर-कबिरा माया पापिनी, लालै लाया लोग ।
पूरी किनहु न भोगिया, इसका यही वियोग ॥३॥
कबीर-कबिरा माया पापिनी, हरिसों करै हराम ।
मुखकडीवाली कुबुधि की, कहन न देई राम ॥ ४ ॥
कबीर-कबिरा माया पापिनी, माँगी मिलै न हाथ ।
मना उतारी झूंठ करि, तब लगि डाले साथ ॥५॥
कबीर-माया छाया एकसी, बिरला जानें कोय ।
भगताके पाछे फिरै, सनमुख भागे होय ॥ ६ ॥
कबीर-कबिरा माया बेसवा, दोनूं की एक जात ।
आवत कौं आदर करै, जात न बूझे बात ॥ ७ ॥
कबीर-मैं जानौं हरिसों मिलों, मोमन मोटी आस ।
हरि बिच डारै अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥८॥
कबीर-कबिरा माया मोहिनी, मोहै जान सुजान ।
भागे हू छूटै नहीं, भरि भरि मारै बान ॥ ९ ॥

कबीर–कबिरा माया मोहिनी, सब जग घालै घानि ।
कोइ एक साधू ऊबरा, तोरी कुलकी कानि ॥१०॥
कबीर–कबिरा माया मोहिनी, भई अँधियारी लोय ।
जो सूतै तो मुसलिये, रहैं वस्तु को रोय ॥ ११ ॥
कबीर–कबिरा माया मोहिनी, जैसे मीठी खांड ।
सतगुरु की किरपा भई, नातर करती भांड ॥१२॥
कबीर–माया मनकी मोहिनी, सुर नर रहै लुभाय ।
इन माया सब खाइया, माया कोइ न खाय ॥१३॥
कबीर–कबिरा माया डाकिनी, सब काहूको खाय ।
दाँत उपारूं पापिनी, जो संता नीडैं जाय ॥१४॥
कबीर–माया दासी साधुकी, ऊभी देइ असीस ।
बिलसि और लाते छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस ॥१५॥
कबीर–माया तो ठगनी भई, ठगती फिरे सब देश ।
जा ठगने माया ठगी, ता ठग को आदेश ॥१६॥
कबीर––माया मुई न मन मुआ, मरि मरि गया शरीर ।
आसा तृष्णा ना मुई, यों कथि कहे कबीर ॥१७॥
कबीर–माया मरि मन मारिया, राख्या अमर शरीर ।
आसा तृष्णा मारिके, स्थिर ह्वै रहा कबीर ॥१८॥
कबीर–मीठा सब कोइ खात है, बिष होय लागै धाय ।
नींब न कोई गटकई, सबै रोग मिटि जाँय ॥१९॥

टीका–मीठी माया खास सो ग्रहणकरे नीम नाम ताको लै सके नहीं राग चौरासी ।

कबीर–बगुली नीर बिटारिया, सायर चढा कलंक ।
और पंखेरू पीबिया, हंसन बोरै चञ्च ॥२०॥

टीका–बगुली कुबुद्धि नीर जल बूंदकी काया । सायर शरीर । पंखेरु प्रान । हंस साध ।

कबीर–जलमें अनजो ना चुरै, घृतमें पाक न होय ।
कहै कबीर या साखिकों, अर्थ करे सब कोय ॥२१॥

टीका–जल माया । अन्न आतमा । चुरै परिपक्व होय नहीं ।

कबीर–माया कालकी खानि है, धरै त्रिगुन बिपरीत ।
जहाँ जाय तहां सुख नहीं, या मायाकी रीति ॥२२॥

कबीर–तीन गुननको बादली, ज्यों तरुवर की छाँह ।
बाहर रहै सो ऊबरै, भीजै मन्दिर मांहि ॥२३॥

टीका–बादली माया । तरुवर छांह स्थिर नहीं । बाहर माया जलसूं ना भीजै सो ऊबरै महर माया तामें रहै सो भीजै ।

कबीर–माया तरुवर त्रिविधिका, साखा बिषै संताप ।
शीतलता सुपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥२४॥

कबीर–कबिरा जगकी कहा कहूं, जो भल बूडे दास ।
पारब्रह्म पति छांड़िके, करैं मनुष्यकी आस ॥२५॥

कबीर–मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय ।
पीर पैगंबर ओलिया, झीनी सबकों खाय ॥२६॥

कबीर–रामहि थोरा जानिकै, दुनिया आगे दीन ।
जीवनको राजा कहै, मायाके आधीन ॥२७॥

कबीर–शंकरहूतें सबल है, माया या संसार ।
अपने बल छूटै नहीं, छुड़ावै सिरजन हार ॥२८॥

कबीर-कबिरा माया यों कहै, तू मति देई पीठि ।
और हमारे बसि परा, रह्या कबीरा रूठि ॥२९॥

कबीर-माया आगे जीव सब, ठाढ़े रहै करजोरि ।
जिन सिरजे जल बुंद सों, तासों बैठा तोरि ॥३०॥

कबीर-या मायाके कारने, हरि सों बैठा तोरि ।
माया करक कदीम है, केता गया चंचोरि ॥३१॥

कबीर-माया करक कदीम है, या भवसागर माँहि ।
जंबुक रूपी जीव है, खैंचतही मरि जाहिं ॥३२॥

कबीर-पुत्र पियारा पिताको, गोहन लागा धाय ।
लोभ मिठाई हाथ दै, आपन गये भुलाय ॥३३॥

कबीर-दीनी खांड पटक्कि कर, मनमें रास उपाय ।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाय ॥३४॥

कबीर-माया झोली मारिया, नाभि न बैठे स्वाँस ।
जीवरा तौ संसै गला, राम कहनकी आस ॥३५॥

कबीर-मोती उपजै सीपमें, सीप समुन्दर जोय ।
रंचक संचर रहगया, ना कछु हुआ न होय ॥३६॥

कबीर-मायाके झक जग जलै, कनककामिनी लागि ।
कहो संतो किमि राखिई, रुई लपेटी आग ॥३७॥

कबीर-माया सेती मति मिलो, जो सोवरिया देहि ।
नारदसे मुनिवर गले, क्या भरोसा तेहि ॥३८॥

कबीर-कबिरा या संसार कों, लाग्यो माया मोह ।

जिहि घर जेता वधवनाँ, तिहिं घर तेता दोह ॥३९॥

कबीर–भूले थे संसार में, मायाके संग आय।
सतगुरु राह बताइया, फेरि मिले तिहिं जाय ॥४०॥

कबीर–कबिरा तू तो सबल है, हलकी अपनी चाल।
रंग कुरंगे रंगिया, किया और लगवार ॥ ४१ ॥

कबीर–रंग तो कुरंग हुआ, अंग न खाये बाँन।
केते मारे जाँहिगे, इस जाजरी कमान ॥ ४२ ॥

कबीर–जिनको साँई रंग दिया, कबहुँ न होय कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥४३॥

कबीर–सब रंग पानी ते भया, सब रंग पानी सोय।
जा रंग ते पानी भयो, सो रंग कैसो होय ॥ ४४ ॥

कबीर–सब रंग पानी ते भया, सब रंग पानी होय।
जा रंग ते पानी भया, सत्य शब्द है सोय ॥४५॥

कबीर–माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि माहिं परंत।
कोई एक गुरुज्ञानते, उबरै साधू संत ॥ ४६ ॥

कबीर–सौ पापन को मूल है, एक रुपैया रोक।
साधू जन संग्रह करैं, हारै हरि से थोक ॥ ४७ ॥

कबीर–साधू ऐसा चाहिये, आई देइ चलाय।
दोष न लागै तासु को, सिरकी टरै बलाय ॥४८॥

कबीर–कबिरा माया रूखडा, दो फलकी दातार।
खावत खर्चत मुक्ति गये, संचत नरक दुवार ॥४९॥

कबीर–खान खरच बहु अन्तरा, मनमें देखि बिचार।
एक खवाई साधुको, एक मिलाई छार ॥ ५० ॥

कबीर–माया दोय प्रकारकी, जो कोई जानै खाय।
एक मिलावै रामको, एक नरक लै जाय ॥ ५१ ॥

कबीर–कबिरा माया जात है, सुनो शब्द निज मोर।
सखियोंके घर संतजन, सूमाके घर चोर ॥ ५२ ॥

टीका--सखी उदार। सूमा कृपण।

कबीर–सन्तो खाई रहत है, चोरा लीन्हीं जाय।
कहै कबीर बिचारि के, दरगह मिलिहै आय ॥५३॥

कबीर–माया मेरे रामकी, मोदी सब संसार।
जाको चीठी ऊतरी, सोई खरचन हार ॥ ५४ ॥

कबीर–कबिरा माया सूमकी, देखनहीका लाड़।
जो वामें कौडी घटै, तो हरि तोड़ै हाड़ ॥ ५५ ॥

कबीर–माया संचै संग्रहै, वह दिन जानैं नाहिं।
सहस बरसकी सब करैं, मरैं मुहूरत माहिं ॥ ५६ ॥

कबीर–कबिरा सो धन सॉंचिये, जो आगेको होय।
मूड़ चढाया गॉंठरी, जात न देखा कोय ॥ ५७ ॥

कबीर–सुकृत लागै साधुकी, बादि बिमुखकी जाय।
केतो तल गाडी रहै, के कोइ औरे खाय ॥ ५८ ॥

कबीर–ऑंधी आई ज्ञानकी, ढही भरमकी भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लगो नामसों प्रीति ॥५९॥

कबीर–ऐसी ब्याई सो तुई, वेश्या सो रहि पेट ।
सगो स्वसुर पाँयन परचो, भई सतगुरुसों भेंट ॥६०॥

टीका--ऐसी आशंका । बाहर निकरी सो तुई । वेश्या सो विश्वास पेट रह्या सगा तो । स्वसुर संशय । पायन परचो निर्बल भयो ।

कबीर–तिलसमान तो गाय है, छौना नौ नौ हाथ ।
मटकी भरि भरि दुहिये, पूंछ अठारह हाथ ॥६१॥

टीका–गाय गायत्री । छौना नौ व्याकरन । मटकी मन । दूध दया । पूंछ अठारह हाथ अठारह पुराण ।

अथ मानको अंग ॥ ३८ ॥

कबीर–मान बड़ाई कूकरी, धरम राय दर्बार ।
दीन लकुटिया बाहिरे, सब जग खाया फार ॥१॥

कबीर–मान बड़ाई कूकरी, संतन पाई जानि ।
पाण्डव यज्ञ पावन भई, सुपच बिराजे आनि ॥२॥

कबीर–मान बडाई जगतमें, कूकर की पहिंचानि ।
प्यार किया मुख चाटई, बैर किये ते हानि ॥३॥

कबीर–मान बडाई ऊरमी, ये जगका व्यौहार ।
दीन गरीबी बंदगी, सत गुरुका उपकार ॥ ४ ॥

कबीर–माया तजी तो क्या भया, मानहिं तजा न जाय ।
मान बडी मुनिवर गले, मान सबनको खाय ॥५॥

कबीर–काला मुख कर मान का, आदर लावो आगि ।
मान बड़ाई छांडिके, रहो राम लौ लागि ॥ ६ ॥

कबीर–अहं अगनि हृदये दहे, गुरु सों चाहै मान ।
तिनको यम नेवता दिया, हो हमरे निजमान ॥७॥

कबीर–अहं भई जो स्त्री, माया हूआ मान।
यों बशि परे खटिकके, पकरी आनी कान ॥ ८ ॥

कबीर–खंभा एकहि गयन्द दो, क्यों करि बंधू बारि।
मान करूं तो पीव नहिं, पीव तौ मान निवारि ॥९॥

टीका--खंभ गयंद दो एक मान एक परमेश्वर।

कबीर–कबिरा अपने जीव ते, ये दोह बातौं धोय।
मान बड़ाई कारने, अछता मूल न खोय ॥ १० ॥

कबीर–बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जोरे बड़ मति नाहिं।
जैसे फूल उजारका, मिथ्याही झरि जाहिं ॥ ११ ॥

कबीर–बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसी पेड खजूर।
पंथी छाँह न बैठही, फल लागै तो दूरि ॥ १२ ॥

कबीर–बड़ी बड़ाई ऊंटकी, लदै जहां लगि स्वांस।
मोहकम सलीता लादिके, ऊपर चढै फिरास ॥१३॥

कबीर–प्रभुताको सब कोउ भजे, प्रभुको भजै न कोय।
कहै कबीर प्रभुको भजै, प्रभुता चेरी होय ॥१४॥

कबीर–भक्त भगवंत एक है, बूझत नहीं अजान।
सीस नँवावै संतको, बडा करै अभिमान ॥ १५ ॥

कबीर–हरिजनको ऊंचा नवै, ऊंट जन्मका होय।
तीन जगह टेढ़ा भया, ऊंचा ताके सोय ॥ १६ ॥

कबीर–कबिरा ऊंची नाकको, ऐंठत है संसार।
जातें हरि हाथी किया, नाक दिया गज चार ॥१७॥

कबीर–ऊंचे कुलकी कामिनी, भजै न शारंग पानि ।
कुलहि लजावन अवतरी,सूधी सांपनी जानि ॥१८॥

कबीर–ऊंचे कुल कहा जनमिया, देह धरी अस्थूल ।
पारब्रह्मको ना चढै, बास बिहूना फूल ॥ १९ ॥

कबीर–ऊंचा कुल नीचा मता, नाहीं हरि सो हेत ।
हीन गिनै हरि भक्तको, खासी खता अनेक ॥ २० ॥

कबीर–ऊंचा कुलके कारणे, भूला सब संसार ।
तब कुलको का लाज है, ये तन ह्वै है छार ॥२१॥

कबीर–हस्ती चढिके जो फिरे, ऊपर चँवर ढुराय ।
लोग कहैं सुख भोगवै, दीसै दोजख जाय ॥ २२ ॥

कबीर–कबिरा हरि जान्या नहीं, बहुत कुटुम्ब परिवार ।
गदहा ह्वै कै अवतरै, भाड़ा भरै कुंभार ॥ २३ ॥

कबीर–नर मूरखते खर भला, जिहिं मुख नाहीं राम ।
शकुन बतावै औरको, पंथ चलन्ता गाम ॥ २४ ॥

कबीर–जहां आप तहां आपदा, जहां संशय तहँ सोग ।
कहै कबीर यह क्या मिटै, चारों दीरघ रोग ॥२५॥

अथ दीनताको अंग ॥ ३९ ॥

कबीर–दीन गरीबी बंदगी, साधन सों आधीन ॥
ताके संग हरि यों रहै, ज्यों जल संगहि मीन ॥१॥

कबीर–दीन लखै मुख सबनको, दीनहिं लखै न कोय ।
भली बिचारी दीनता, नरहू देवता होय ॥ २ ॥

कबीर–जल थल जीव जितै तितै, रहे सकल भरपूर ॥
जो दिल आवे दीनता, तो सांई मिलै हजूर ॥३॥

कबीर–यक बानी जो दीनता, सब कछु हरि दरबार।
यही भेट जगदीशकी, संतन कियो बिचार ॥ ४ ॥

कबीर–दीन गरीबी दीनको, दुंदरको अभिमान।
दुंदर तो विषसो भरा, दीन गरीबी जान ॥ ५ ॥

कबीर–दीन गरीबी बंदगी, सब सों आदर भाव।
कहै कबीर तेही बड़ा, जामें बड़ा स्वभाव ॥ ६ ॥

कबीर–नहीं दीन नहिं दीनता, संत नहीं मिजवान।
ता घर जम डेरा किया, जीवत भया मसान ॥७॥

कबीर–ऊंचे पानी ना टिके, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सों भरि पिये, ऊंचा पियासा जाय॥८॥

कबीर–नीचे नीचे सब तिरै, जिहिं तिहिं बहुत अधीन।
चढ़ि वोहित अभिमानकी, बूड़े जात कुलीन ॥९॥

कबीर–लेनेको हरि नाम है, देनेको अनदान।
तरबेको आधीनता, बूड़नको अभिमान ॥ १० ॥

कबीर–दरसनको तो साधु हैं, सुमिरनको ब्रह्मज्ञान।
तरवे को आधीनता, बूड़नको अभिमान ॥ ११ ॥

अथ चानकको अंग ॥ ४० ॥

कबीर–कै खाना कै सोवना, और न कोई चित्त।
हरिसा प्रीतम बीसरा, बालापनका मित्त ॥ १ ॥

कबीर–इस उदरके कारने, जग जाँच्यो निशि याम।
स्वामीपनो शिरपर चढ्यो, सर्यो न एको काम ॥२॥
कबीर–स्वामी होना सोहरा, दोहरा होना दास।
गाडर आनी ऊनको, बांधी चरै कपास ॥ ३ ॥
कबीर–कबिरा तृष्णा टोकना, लीये डोलै साधु।
राम नाम जाना नहीं, जनम गवाँया बादि ॥ ४ ॥
कबीर–कलिका स्वामी लोभिया, मनसा रहै बँधाय।
देवे पैसा ब्याजको, लेखा करत दिन जाय ॥ ५ ॥
कबीर–कलिका स्वामी लोभिया, पीतल धरै खटाय।
राजद्वारे यों फिरै, ज्यों हरियाई गाय ॥ ६ ॥
कबीर–राजद्वारे रामजन, तीनि बस्तुको जाय।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥ ७ ॥
कबीर–कबिरा कलियुग कठिन है, साधु न मानैं कोय।
कामी क्रोधी मसखरा, तिनको आदर होय ॥ ८ ॥
कबीर–हरि सुमिरन सांची कथा, कोई सुनि है कानि।
कलियुग पूजा दम्भकी, बाजारी का मानि ॥ ९ ॥
कबीर–तारा मंडल बैठि कै, चांद बड़ाई खाय।
उदै भया जब सूर्यका तब तारा छिपिजाय ॥१०॥
कबीर–देखनेका सब कोइ भला, जैसे सीतका कोट।
देखतही ढहिजायगा, बांधि सकै नहिं पोट ॥११॥
कबीर–पद गावे मन हरषिके, साखी कहै अनन्द।

राम नाम नहिं जानिया, गलमें परिगा फन्द ॥१२॥

कबीर–करता दीसै कीरतन, ऊंचा करि करि दम्भ ।
जानै बूझै कछु नहीं, योंही आंधा रम्भ ॥१३॥

कबीर–नाचै गावै पद कहै, नाहीं हरि सों हेत ।
कहै कबीर क्यों नीपजै, बीज बिहूना खेत ॥१४॥

कबीर–शिष्य खामा संसार गति, सेवक प्रत्यक्ष काल ।
बैरागी छावै मढ़ी, ताको मूल न डाल ॥१५॥

कबीर–जाके हिरदय हरि नहीं, शिषि शाखा की भूख ।
सो नर ऊभा सूकसी, ज्यों वन दाधा रूख ॥१६॥

कबीर–शिष्य शाखा बहुतहि किया, साधो किया न मित्त ।
चाले थे हरि मिलन कों, बीचहि अटका चित्त ॥१७॥

कबीर–पंडित केरी पोथियाँ ज्यों तीतरका ज्ञान ।
औरन शकुन बतावहीं, अपना फंद न जान ॥१८॥

कबीर–चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं शब्द समाय ।
कोटिक गुन सुगना पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥१९॥

कबीर–पढ़ना गुनना चातुरी, ये तो बात सहेल ।
कामदहन मन बसिकरन, गगन चढ़त मुसिकेल ॥२०॥

कबीर–गगन दुवारे मन गया, करै अमृत रसपान ।
रूप सदा झलकत रहै, गगन मंडल गलतान ॥२१॥

कबीर–पंडित और मसालची, दोनू सूझै नाहिं ।
औरनको करै चांदना, आप अंधेरा माहिं ॥२२॥

कबीर–संस्कृतहि पण्डित कहं, बहुत करै अभिमान ।
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ अज्ञान ॥२३॥

कबीर–कबिरा संस्कृत संसारमें, पण्डित करै बखान ।
भाषा भक्त दृढावहीं, न्यारा पद निर्बान ॥ २४ ॥

कबीर–कबिरा संस्कृत कूप जल, भाषा बहता नीर ।
भाषा सतगुरु सत्य है, संतमत गहर गंभीर ॥२५॥

कबीर–पूरन बानी वेदकी, सोहत परम अनूप ।
आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रूप ॥२६॥

कबीर–बानी तो पानी भरै, चारू वेद मजूर ।
करनी तो गारा करै, साहबका घर दूर ॥ २७ ॥

कबीर–बानी तो पानी भरै, चारू वेद मजूर ।
चूक्यो सेवा बंदगी, किया चाकरी दूर ॥ २८ ॥

कबीर–वेद कहै मैं कछू न जानों, स्वाँसाका सँग आय ।
दर्शन कारन करुँ बंदगी, गुन अनेक मैं गाय ॥२९॥

कबीर–पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय ।
एकै अक्षर प्रेमका, पढ़ै सो पंडित होय ॥ ३० ॥

कबीर–पढि पढि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जो ईंट ।
कबिरा अन्तर प्रेमकी, लगी न एको छींट ॥ ३१ ॥

कबीर–पढि पढि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जो चौर ।
जिस पढते साहब मिले, सो पढना कछु और ॥३२॥

कबीर–पंडित पुस्तक बांधि के, दैं सिरहानें सोय ।

वह अक्षर इनमें नहीं, हँसि दे भावै रोय ॥३३॥

कबीर–पढै गुनै सीखै सुनै, मिटै न संशय शूल ।
कहैं कबीर कासों कहूँ, एही दुःखका मूल ॥३४॥

कबीर–मैं जानो पढना भला, पढने ते भल योग ।
रामनाम सो प्रीति करि, भावै निन्दो लोग ॥३५॥

कबीर–कबिरा पढना दूरि कर, आथि पढा संसार ।
पार न उपजें जीवकी, क्यों पावै करतार ॥३६॥

कबीर--कबिरा पढना दूर कर, पुस्तक देउ बहाय ।
बावन अक्षर सोधिकै, राम नाम लौ लाय ॥३७॥

कबीर--नहिं कागद नहिं लेखनी, नहिं अक्षर है सोय ।
बाँचहि पुस्तक छाड़िके, पंडित कहिये सोय ॥३८॥

कबीर–धरती अम्बर ना हतो, कौन था पंडित पास ।
कौन महूरत थापिया, चांद सूर आकास ॥३९॥

कबीर–पंडित तो बोरो पतरा, काजी छाडि कुरान ।
वह तारीख बताइ दे, हता न जमी असमान ॥४०॥

कबीर–ब्राह्मण गुरु है जगतका, करम भरम का खांहि ।
उरझि परझिके मरि गये, चारों वेदों मांहि ॥४१॥

कबीर–ब्राह्मण गदहा जगतका, तीरथ लादा जाय ।
यजमान कहै मैं पुनि किया, वह मिहनतका खाय४२॥

कबीर–ब्राह्मण ते गदहा भला, आन देवते कुत्ता ।
मुलनाते मुरगा भला, शहर जगावै सुत्ता ॥४३॥

कबीर–कबिरा ब्राह्मण की कथा, सो चारोंकी नाव ।
सब अंधा मिलि बैठहीं, भावै तहां ले जाव ॥४४॥

कबीर–कबिरा ब्राह्मण बूड़िया जनेऊ केरे जोरि ।
लख चौरासी मांगि लई, पारब्रह्म सो तोरि ॥४५॥

कबीर–कलिका ब्राह्मण मसखरा, ताहि न दीजै दान ।
कुटुँब सहित नरकै चला, साथ लिया यजमान ॥४६॥

कबीर–पढ़ै पढ़ाये कछु नहीं, ब्राह्मण भक्ति न जानि ।
व्याहे श्राद्ध कारणे, बैया सूंडा तानि ॥४७॥

कबीर–पारोसीसूं रूठना, तिल तिल सुखकी हानि ।
पण्डित भया सरावगी, पानी पीवै छानि ॥४८॥

टीका–पारोसी परमेश्वर । रूठना कर्ताकी नास्ति ।

कबीर–कबिरा या संसार को, समझायो कइ बार ।
पूँछ तो पकरै भेड़की, उतरा चाहै पार ॥४९॥

अथ कथनीको अंग ॥ ४१ ॥

कबीर–कथनी कथी तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय ।
कलाबूत का कोट ज्यों, देखत ही ढहजाय ॥ १ ॥

कबीर–कथनी कांची होगई, करनी करी न सार ।
श्रोता वक्ता मरि गया, मूरख अनंत अपार ॥ २ ॥

कबीर–कबिरा कमान सूरा भला, थोथा बांधै तीर ।
जिनको चोट है बिरहकी, तिनका बिकल शरीर ॥३॥

कबीर–कथनी मीठी खांड सी, करनी विषकी लोय ।

कथनी कथि करनी करै, विषसे अमृत होय ॥ ४ ॥

कबीर–कथनी बदनी छांड़िदे, करनी सूं चितलाय ।
नर कों नीर प्याये बिना, कबहूं प्यास न जाय ॥ ५ ॥

कबीर--कथनी कथि फूला फिरै, मेरे हृदय उचार ।
भाव भक्ति समुझे नहीं, अंधा मूढ गँवार ॥ ६ ॥

कबीर–कथनी थोथी जगतमें करनी उत्तम सार ।
कहै कबीर करनी भली, उतरे भवजल पार ॥ ७ ॥

कबीर--कूकस कूटै कन बिना, बिन करनी का ज्ञान ।
ज्यों बंदूक गोली बिना, भडक न मारे आन ॥ ८ ॥

कबीर--आपा राखि प्रमोधिये, ज्ञान सुने अकराथि ।
तुष कूटै कन बाहरी, कछू न आवै हाथि ॥ ९ ॥

कबीर--पद जोरै साखी कहैं, साधन परि गई रोस ।
काढा जल पीवै नहीं, काढ़ि पिवनकी होस ॥१०॥

कबीर--साखी लाय बनायकै, इत उत अक्षर काटि ।
कहै कबीर कबलग जिये, जूठी पातल चाटि ॥११॥

कबीर--पढ़ि २ औरन समुझावई खोजे न आपशरीर ।
रोटीका संशय परा, यों कहै दास कबीर ॥१२॥

कबीर--चतुराई चूल्हे परो, ज्ञानी नैजारा खाय ।
भाव भक्ति जाने बिना, ज्ञानपनो जरजाय ॥१३॥

कबीर--रहनी कारज मानही, कथनी मेरु समान ।
कथता बकता मरि गया, मूरख मूढ अजान ॥१४॥

कबीर--कथनी कूं धीजूं नहीं, करनी मेरा जीव ।
कथनी करनी दोऊ थकी, तब महल पधारे पीव ॥ १५॥

कबीर--कथते हैं करते नहीं, मुखके बडे लबार ।
मुहँडा काला होयगा, साहबके दरबार ॥ १६ ॥

कबीर--कथते हैं करते सही, सांच शरीतर होय ।
साहिबके दरबार में आठ पहर सुख सोय ॥१७॥

अथ करनीको अंग ॥ ४२ ॥

कबीर--कबिरा करनी आपनी, कबहुँ न निष्फल जाय ।
सात समुद्र आड़ा परै, मिलै अगाऊ आय ॥ १ ॥

कबीर--जो करनी अन्तर बसै, निकसै मुखकी बाट ।
बोलतही पहिचानिये, चोर साहु को घाट ॥ २ ॥

कबीर--चोर चुराई तूँबड़ा, गाडै पानी माँहि ।
वह गाडे ते ऊछलै, यों करनी छानी नाँहि ॥ ३ ॥

कबीर--करनी कारज मानही, कथनी कथै अपार ।
इन बातन क्यों पाइये, साहब का दीदार ॥ ४ ॥

कबीर--बिन करनी कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात ।
कूकर ज्यों भुँकता फिरै, सुनी सुनाई बात ॥ ५ ॥

कबीर--जैसी मुखते नीकसै, तैसी चालै नाहिं ।
मनुष नहीं वे स्वान गति बाँधे यमपुर जांहि ॥६॥

कबीर--जैसी मुखते नीकसै, तैसी चालै चाल ।
पारब्रह्म नियरा रहै, पलमें करै निहाल ॥ ७ ॥

कबीर--कबिरा करनी क्या करै, जो राम न करै सहाय।
जिहिं जिहिं डारी पग धरूं, सो सो नैनै जाय॥८॥

कबीर--करनी करनी सब कहैं, करनी माँहिं विवेक।
वा करनी बहि जान दे, जो नहिं परखै एक॥९॥

कबीर-कथनीको तो भानिकै, करनी देइ बहाय।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आय॥१०॥

अथ कामको अंग॥ ४३॥

कबीर-कामीका गुरु कामिनी, लोभीका गुरु दाम।
कबिरा का गुरु संत है, संतनका गुरु राम॥ १॥

कबीर-रंचक लावनके फिरै, आँधा होय भुवंग।
कबिरा तनकी कौन गति, नित नारीसों रंग॥२॥

कबीर--कामिनि काली नागिनी, तीन लोक मंझारि।
नाम सनेही ऊबरा, विषिया खाये झारि॥ ३॥

कबीर--इक नारी इक नागिनी, अपना जाया खाय।
कबहूँ सरपटि नीकसे, उपजै नाग बलाय॥ ४॥

कबीर--कामिनि मीठी खांड सी, जे छेरे तेहि खाय।
जो हरि चरनें राँचिया, तिनके निकट न जाय॥५॥

कबीर-सहकामी दीपक दशा, सोखैं तैल निवास।
कबिरा हीरा संत जन, सहजै सदा प्रकास॥ ६॥

कबीर-दीपक सुन्दरता देखि करि, जरि जरि मरै पतंग।
बढ़ी लहरि जो बिषयकी, जरत न मोरै अंग॥७॥

कबीर–परनारी पैनी छुरी, मति कोइ लावो अंग।
रावण के दश शिर गये, परनारीके संग ॥ ८ ॥

कबीर–परनारी राता रहै, चोरी बैठत खाय।
दिवस चारि सरसा रहै, अंत समूला जाय ॥ ९ ॥

कबीर–परनारी पैनी छूरी, बिरला बंचै कोय।
ना वह पेट संचारिये, जो सोनाकी होय ॥ १० ॥

कबीर–परनारीके राचने, सधो नरकै जाय।
यम तिनको छोडे नहीं, कोटिन करे उपाय ॥११॥

कबीर–परनारीका राचनां, ज्यौं लहसुन की खान।
कोने बैठिके खाईये, प्रगट होय नीदान ॥ १२ ॥

कबीर–नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखतहीते विष चढै, मन आवै कछु और ॥ १३ ॥

कबीर–जो कबहूंकै देखिये, वीर बहिनके भाय।
आठ पहर अलगा रहै, ताको काल न खाय॥१४॥

कबीर–देखत ही दहमें परै, कनक कामिनी भाय।
कहै कबीर कौतुक भया, मनको रहा समाय ॥१५॥

कबीर–सर्व सोनाकी सुन्दरी, आवै बास सुबास।
जो जननी है आपनी, तौहु न बैठे पास ॥ १६ ॥

कबीर--पर नारी पर सुंदरी, जैसे सूली साल।
नित कलेश भुगते सही, तोहु न छोडे खाल ॥१७॥

कबीर–नारी केरे राचनें, औगुन हैं गुन नाहिं ।
खार समुन्दर माछली, केती बहि बहि जाहिं ॥१८॥

कबीर–नारि रचंते पुरुष है, पुरुष रचंते नार ।
पुरुष पुरुषते राचते, ते बिरलै संसार ॥ १९ ॥

कबीर–नर नारी सब नर कहैं, जब लग देहि सकाम ।
कहै कबीर सो रामका, जो सुमिरै निष्काम ॥२०॥

कबीर–नारि पुरुष जो कौन है, सुनि सतगुरुकी साखि ।
विष फल फले अनेक हैं, मति कोइ देखो चाखि॥२१॥

कबीर–जिन खाया सोही मुआ, गण गंधरब बड़ भूप ।
सतगुरु कहै कबीर सों, जगमें युगति अनूप ॥२२॥

सोरठा

कबीर–नारी सेती नेह, बुद्धि विवेक सबहीं हरै ॥
वृथा गमावै देह, कारज कोई ना सरै ॥ २३ ॥

साखी

कबीर–नारि नसावै तीनि सुख, जेहि नर पासे होय ।
भक्ति मुक्ति अरु ज्ञानमें, पैठि न सकै कोय ॥२४॥

कबीर–नारी कहूँ कि नाहरी, नख सिख सों यह खाय ।
जल बूड़ा तो ऊबरै, भग बूड़ा बहि जाय ॥ २५ ॥

कबीर–कबिरा भगकी प्रीतरी, केते गये गडंत ।
केते औरो जांहिगे, नरकै हसत हसन्त ॥ २६ ॥

कबीर–भग भोगै भग ऊपजै, भगते बचै न कोय ।
कहै कबीर भगते बचै, भक्त कहावै सोय ॥ २८ ॥
कबीर–जगमें भक्त कहावई, चुटकी चून न देय ।
शिष्य जोरूका है रहा, नाम गुरुका लेय ॥ २९ ॥
कबीर–सेवक अपना करि लिया, आज्ञा मेटै नाहिं ।
भगहि मंत्र दै गुरु भई, शिष्य है सबै कमाहिं ॥ ३० ॥
कबीर–फाटे कानों बाघिनी, तीन लोककों खाय ।
जीवत खाय कलेजरा, मुये नरक लेजाय ॥ ३१ ॥
कबीर–नारी नाहीं नाहरी, करै नैनकी चोट ।
कोइ कोइ साधू ऊबरे, पार ब्रह्मकी ओट ॥ ३२ ॥
कबीर–नैनों काजल पायके, गाढ़ा बांधे केश ।
हाथों मेंहदी लायकै, बाघिनि खाया देश ॥ ३३ ॥
कबीर–गाय रोय हँसि खेलिकै, हरत सबनके प्रान ।
कहै कबीर या घातको, समुझै संत सुजान ॥ ३४ ॥
कबीर–जोरू जूंठनि जगतकी, भले बुरेके बीच ।
उत्तम सो अलगा रहै, मिलि खेलै सो नीच ॥ ३५ ॥
कबीर–नारी कूडी नरककी, बिरला थांमें बाग ।
कोई साधु जन ऊबरा, सब जग मूवा लागि ॥ ३६ ॥
कबीर–सुंदरितें सूली भली, बिरला बांचै कोय ।
लोह लुहालै अग्निमें, जलि बलि कोयला होय ॥ ३७ ॥
कबीर–नारी नाहीं यम अहै, तू मति रांच जाय ।

मंजारी ज्यौं बोलिके, काढि कलेजा खाय ॥३८॥

कबीर–नारी नदिया सारखी, वहै अपरबलपूर ।
साहबसे न्यारा रहै, अंत परै मुख धूर ॥ ३९ ॥

कबीर–नारी नदी अथाहजल, बूड़ि मुआ संसार ।
ऐसा साधू ना मिलै, जासों उतरे पार ॥ ४० ॥

कबीर–गाय भैंस घोडी गधी, नारी नाम है तास ।
जा मंदिर में ये बसें, तहाँ न कीजै बास ॥ ४१ ॥

कबीर–एक कनक और कामिनी, ये लंबी तरवारि ।
चाले थे हरि मिलनकों, बिचही लीन्हा मारि॥४२॥

कबीर–चलूँ चलूँ सबकोइ कहै, पहुँचै बिरला कोय ।
एक कनक अरु कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय ॥४३॥

कबीर–जो या घाटी लंघही, सो जन उतरे पार ।
या घाटीतैं आखडै, ताको वार न पार ॥ ४४ ॥

कबीर–एक कनक अरु कामिनी, दोऊ अग्निकी झाल ।
देखेहीतें परज्वलै, परसि करै पैमाल ॥ ४५ ॥

कबीर–एक कनक अरु कामिनी, विष फल किया उपाय ।
देखतहीतें विष चढै, चाखतही मरिजाय ॥ ४६ ॥

कबीर–एक कनक अरु कामिनी, तजिये भगिये दूर ।
हरि बिच पारै अंतरा, यम देसी मुख धूर ॥४७॥

कबीर–रज बीरजकी कोठरी, तापर साज्यो रूप ।
एक नाम बिन बूड़सी, कनक कामिनी कूप ॥४८॥

कबीर–कामीकूं तो तीस दिन, अंतर होय उदास ।
कामी नरको तो सदा, छव ऋतु बारह मास ॥४९॥
कबीर–जहाँ काम तहाँ राम नहिं, राम तहां नहीं काम ।
दोऊ कबहूँ ना रहै, काम राम एकठाम ॥ ५० ॥
कबीर–कामी तो निर्भय भया, करै न काहू शंक ।
इंद्री केरे बशि परा, भुगतै नरक निशंक ॥ ५१ ॥
कबीर–कबिरा कामी पुरुषको, संशय कबहुँ न जाय ।
साहिब सूँ अलगा रहै, वाके हृदये लाय ॥ ५२ ॥
कबीर–कामी कबहुँ न हरि भजै, मिटै न संशयशूल ।
और गुनह सब बखशिहै, कामी डाल न मूल॥५३॥
कबीर–कामी क्रोधी लालची, इनते भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूर मां, जाति बरन कुल खोय ॥५४॥
कबीर–भक्ति बिगारी कामियां, इंद्री केरे स्वाद ।
हीरा खोया हाथसों, जनम गवाँयो बाद ॥५५॥
कबीर--कामी लज्जा ना करै, मन मांहीं अह्लाद ।
नींद न माँगै थाहरा, भूख न माँगे स्वाद ॥ ५६ ॥
कबीर--कामी से कुत्ता भला, ऋतु शर खोले कांच ।
राम नाम जाना नहीं, बावी जाय न बांच ॥५७॥
कबीर–कामी अमृत न भावई, विषकूं लेवे सोधि ।
कुबुधि न भाजै जीवकी, भावै ज्यों परमोधि ॥५८॥
कबीर–कहता हूं कहजात हूं, समुझे नहीं गँवार ।

वैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥ ५९ ॥

कबीर--कामी कर्म की कांचली, पहिरि हुआ नर नाग ।
शिर फोरै सूझै नहीं, कोइ पूरबला भाग ॥ ६० ॥

कबीर--काम कहर असवार है, सब कोइ मारै ध्याय ।
कोइक हरिजन ऊबरा, जाके राम सहाय ॥६१॥

कबीर--काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्हे कोय ।
जेती मनकी कल्पना, काम कहावै सोय ॥ ६२ ॥

कबीर--नारि पराई आपनी, भुगतै नरकै जाय ।
आगि आगि सब एकसी, देते हाथ जरि जाय ॥६३॥

कबीर--जहर परायो आपना, खाय सही मरि जाय ।
अपनी इच्छा ना करे, कहै कबीर समुझाय ॥६४॥

कबीर--कूप पराया आपना, गिरै बूडि जो जाय ।
ऐसा भेद बिचारिकै, कुमतिहिं गोता खाय ॥६५॥

कबीर--छूरी पराई आपनी, मारे दरद जो होय ।
बहुविधि कहूँ पुकारिकै, कर छूओ मति कोय ॥६६॥

कबीर--जहाँ जराई सुंदरी, तू जनि जाय कबीर ।
ऊडि भस्म जो लागसी, सूना होय शरीर ॥६७॥

कबीर--बूंद खिरी नर नारिकी, जैसी आतम घात ।
अज्ञानी मानै नहीं, एही बात उतपात ॥ ६८ ॥

कबीर--केता बहाया बहि गया, केता बहि बहि जाय ।
ऐसा भेद विचारिकै, तू मति गोता खाय ॥ ६९ ॥

कबीर–नारी तौ हमभी करी, पाया नहीं बिचार ।
जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा बिकार ॥७०॥

कबीर–काम क्रोध मद लोभकी, जबलग घटमें खानि ।
कहा मूर्ख कहा पंडिता, दोनों एक समानि ॥७१॥

कबीर–काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय ।
ये सूतक संग देहके, कहो कैसे करि जाय ॥७२॥

कबीर–काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय ।
शील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥७३॥

कबीर–छोटी मोटी कामिनी, सबही विषकी बेल ।
बैरी मारै दाव दै, यह मारै हँसि खेल ॥७४॥

कबीर–नागिनके तो दोय फन, नारीके फन बीस ।
जाको डस्यो न फिरि जिये, मरि है बिस्वा बीस ॥७५॥

कबीर–नारीसे नजरि न जोरिये, अंश खीस ह्वै जाय ।
जाके चित नारी बसै, चारि अंश लै जाय ॥७६॥

कबीर–नारि नदिया सारखी, और जो प्रगटै काल ।
सब कालनते बाचि है, नारी यमका जाल ॥७७॥

कबीर–जगमें डोडी कामिनी, पीवै सब संसार ।
सोफी होयके सो पिये, ताडि उतारूं पार ॥७८॥

कबीर–दीपक झोला पवनका, नरको झोला नारि ।
साधू झोला शब्दका, बोलै नहीं बिचारि ॥७९॥

कबीर–नारि पुरुषकी स्त्री, पुरुष नारिका पूत ।

यही ज्ञान बिचारिकै, छांडि चला अवधूत ॥८०॥

कबीर—अविनाशी बिच धार तिन, कुल कंचन अरु नार ।
जो कोइ इनतें बचि चलै, सोई उतरै पार ॥८१॥

अथ शीलको अंग ॥ ४४ ॥

कबीर—शील क्षमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि जब होय ।
बिना शील पहुंचे नहीं, लाख कथै जो कोय ॥ १ ॥

कबीर—शीलवंत सबसों बड़ा, सब रतनोंकी खानि ।
तीन लोक की संपदा, रही शील में आनि ॥ २ ॥

कबीर—शील गहै कोइ सावधान, चैतन पहरै जागि ।
बासन बासन के खिसे, चोर न सकई लागि ॥ ३ ॥

कबीर—शील मिलावै रामकों, जो कोइ जानै राखि ।
कहै कबीर मैं क्या कहूं, शुकदेव बोलैं साखि ॥ ४ ॥

कबीर—शील राखि बिरक्त भये, हरिके मारग जांहि ।
साखी गोरख नाथ जो, अमर भये कलि मांहि ॥ ५ ॥

कबीर—घायल ऊपरि घावलै, टोटै त्यागी सोय ।
भर जोबन में शीलवंत, बिरला होय तो होय ॥ ६ ॥

कबीर—ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक ।
जपिया तपिया बहुत हैं, शीलवंत कोइ एक ॥ ७ ॥

कबीर—शीलवंत निर्मल दशा, पा परि है चहुँ खूंट ।
कहै कबीर ता दास की, करै आस वैकुंठ ॥ ८ ॥

कबीर–सूम सदाही उद्धरै, दाता जाय नरक्क ।
कहै कबीर ये साख सुनि, मति कोई जाव सरक्क ॥९॥

टीका--सूम तो साधु, वीर्य्य अपना देइ नहीं । दात कामी पुरुष ।

कबीर–दाता नरक सम वैकुंठ, मच्छर अजर जरै ।
कबीर साखी कठिन है, हृदय रसै तब अर्थ करै॥१०॥

टीका--दाता कामीनर । सूम साधु, वीर्य्य दे नहीं । मत्सरता अजर जरावै तब अर्थ करै हरि दरसै ।

कबीर–बैसन्दर जाड़ै मरै, पानी मरै पियास ।
भोजन तौ भूखा मरै, पाथर मरै हगास ॥ ११ ॥

टीका--बैसुन्दरकाम। जाडा शील । पवन पौन । भोजन भाव। पाथर हृदय ।

कबीर–विषय पियारी प्रीतिसों, तब अंतर हरि नाहिं ।
जब अंतर हरिजी बसै, विषियासों रुचि नाहिं॥१२॥

कबीर--सुखका सागर शील है, कोइ न पावै थाह ।
शब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं साह ॥१३॥

अथ लोभको अंग ॥ ४९ ॥

कबीर--जब मन लागै लोभसों, गया विषयमें भोय ।
कहै कबीर विचारिकै, केहि प्रकार धन होय ॥१॥

कबीर–भेष भभूत जटाधरी, ज्ञानी गुनी अपार ।
षट दर्शनकी कहा परै, एक लोभकी लार ॥ २ ॥

कबीर–आब गया आदर गया, गया नैनका नेह ।
ये तीनों जबहीं गये, तबहिं कहा कछु देह ॥ ३ ॥

कबीर–कबिरा ओंधी खोपरी, कबहूँ धापै नाँहिं ।

तीन लोककी संपदा, कब आवै घर माँहिं ॥ ४ ॥

कबीर–कबिरा तृष्णा पापिनी, तासों प्रीति न जोरि ।
पैंड पैंड पाछे परै, लागै मोटी खोरि ॥ ५ ॥

कबीर--तृष्णा सींची ना बुझै, दिन दिन बढती जाय ।
जवासा कासा रूख ज्यों, घन मेंहा कुम्हिलाय ॥६॥

कबीर--नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहु तन्न ।
जलही मांही जलि मुई, पूरब जन्म लखन्न ॥ ७ ॥

टीका–नलनी आत्मा । सायर शरीर दजा शब्द । दौं, लोभ । जल माया ।

अथ सन्तोषको अंग ॥ ४६ ॥

कबीर--गो धन गज धन बाजिधन, और रतन धन खानि ।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समानि ॥१॥

कबीर--साधु संतोषी सर्वदा, निर्मल जिनके बैन ।
तिनके दर्शन परसतें, जिय उपजै सुख चैन ॥ २ ॥

कबीर--निज आसन संतोषमें, सहज रहनि की ठौर ।
हरि भजने आज्ञा भई, ताते कछू न और ॥ ३ ॥

कबीर–संतोषहि सहिदान है, शब्द भेद बीचार ।
सतगुरुके परतापते, सहज शील मत सार ॥ ४ ॥

कबीर--चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बेपरवाह ।
तिनको कछू न चाहिये, सब साहब पति साह ॥५॥

अथ क्रोधको अंग ॥ ४७ ॥

कबीर–दसौं दिशासौं [illegible], उठी अपरबल आगि ।

शीतल संगति साधुकी, तहां उबरिये भागि ॥ १ ॥

कबीर--यह जग कोठी काठकी, चहुँ दिशि लागी आगि ।
भीतर रहै सो जरि मुये, साधू उबरे भागि ॥ २ ॥

कबीर-क्रोध अग्नि घर घर बढ़ी, जरै सकल संसार ।
दीन लीन निज भक्त है, तिनके निकट उबार ॥ ३ ॥

कबीर-बहुत यतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय ।
कबिरा संचै सूम धन, अंत चोर लै जाय ॥ ४ ॥

कबीर-कोटि कर्म लागे रहैं, एक क्रोधको लार ।
किया कराया सब गया, जब आया अहँकार ॥ ५ ॥

कबीर-जग माहीं धोखा घना, आहि कुबुधि अरु काल ।
पौरी पहुँचा मारिये, ऐसा यमका जाल ॥ ६ ॥

कबीर-गारि अँगारा क्रोध जल, निन्दा धूँआं होय ।
इन तीनहुँको बसि करै, साहब मिलाऊं तोय ॥७॥

अथ क्षमाको अंग ॥ ४८ ॥

कबीर-क्षमा क्रोध को क्षय करे, जो काहू पर होय ।
कहै कबीर ता दासकूं, गंजि न सकि है कोय ॥ १ ॥

कबीर-क्षमा बड़नको चाहिये, छोटनको उतपात ।
कहा विष्णुको घटि गयो जो भृगु मारी लात ॥ २ ॥

कबीर-भली भली सब कोउ कहै, रही क्षमा ठहराय ।
कहै कबीर शीतल भया, गई जो अग्नि बुझाय ॥३॥

कबीर–जहां दया तहँ धर्म है, जहां लोभ तहँ पाप ।
जहां क्रोध तहँ काल है, जहां क्षमा तहँ आप ॥४॥

अथ मोहको अंग ॥ ४९ ॥

कबीर–मोह फंद सब फंदिया, कोइ न सकै निरुवार ।
कोइ साधुजन पारखी, बिरला तत्व विचार ॥ १ ॥
कबीर–प्रथम फंदे सब देवता, सुख बिलसै स्वर्ग वास ।
मोह मगन सुख पाइया, मृत्युलोककी आस ॥ २ ॥
कबीर–दूजे ऋषि मुनिवर फन्दे, तासों रुचि उपजाय ।
स्वर्गलोक सुख मानही, (फिर) धरनि परत है आय ॥३॥
कबीर–मोह मगन संसार है, कन्या रही कुमार ।
काहु सुरति जो ना करी, ताते फिरि अवतार ॥ ४ ॥
कबीर–कुरु क्षेत्र सब मेदिनी, खेत करै करसान ।
मोह मृग सब चरिगया, आसन रहि खलिहान ॥५॥
कबीर–इन काहु युगति न जानिया, केहि विधि बचै सुखेत ।
नहिं बंदगी नहिं दीनता, नहिं साधु संगति हेत ॥६॥
कबीर–जब घर मोह समाइया, सर्व भया अँधियार ।
निर्मोही ज्ञान विचारिके, कोइ साधू उतरे पार ॥७॥
कबीर–जहां लग सब संसार है, मृग सबन को मोह ।
सुर नर नाग पताल सब, ऋषिमुनिवर सब जोह ॥८॥
कबीर–अष्ट सिद्धि नौ निद्धि लौं, तुम सों रहै निवार ।
बांधि मृगहि बिडारि हूं, कहैं कबीर विचार ॥९॥

कबीर–सलिल मोहकी धार में, बहिगये गहर गँभीर।
सुक्षम मछली सुरति है, चढ़िहै उलटे नीर ॥१०॥

अथ विवेकको अंग ॥ ५० ॥

कबीर–रंगहि ते रंग ऊपजै, सब रंग देखा एक।
कौन रंग है जीवका, ताका करै विवेक ॥ १ ॥
कबीर–प्रगटै प्रेम विवेक दल, अभय निशान बजाय।
उग्र ज्ञान उर आवताँ, यह सुनि मोह दुराय ॥२॥
कबीर–कर बंदगी विवेककी, भेष धरै सब कोय।
वा बंदगी बहिजानदे, जहँ शब्द विवेक न होय ॥३॥
कबीर–फूटी आँख विवेककी, लहै न संत असंत।
जाके लार दश बीस हैं, ताका नाम महन्त ॥ ४ ॥
कबीर–साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, वो माथेके मौर ॥ ५ ॥
कबीर–कहै कबीर पुकारिके, कोइ संत विवेकी होय।
जामें शब्द विवेक है, छत्र धनी है सोय ॥ ६ ॥
कबीर–जीव जन्तु जल हर बसै, गये विवेक जो भूल।
जलके जलचर यों कहैं, हम उड़गन समतूल ॥७॥
कबीर–प्रात कालके जालमें, आय गये तिहि माहिं।
जलके जलचर यों कहैं, उडगनपति आयो नाहिं ॥८॥
कबीर–जब लगि नाहिं विवेक मन, तब लग लगै न तोर।
भवसागर नाहीं तरै, सतगुरु कहैं कबीर ॥ ९ ॥

कबीर–हरिजन ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान विवेक ।
बाहर मिलतासों मिलै, अंतर सबसों एक ॥ १० ॥
कबीर–राम राम सब कोइ कहै, कहिबे माहिं विवेक ।
एक अनेकै फिरि मिलैं, एक समाना एक ॥ ११ ॥

अथ सहजको अंग ॥ ६१ ॥

कबीर–सहज सहज सब कोउ कहैं, सहज न चीन्हैं कोय ।
जा सहजै साहिब मिलै, सहज कहावै सोय ॥ १ ॥
कबीर–सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्हैं कोय ।
पांचों राखै पसरतां, सहज कहावै सोय ॥ २ ॥
कबीर–सहज सहज सबकोइ कहै, सहज न चीन्हैं कोय ।
जा सहजै बिषिया तजै, सहज कहावै सोय ॥ ३ ॥
कबीर–सहजै सहजै सब गया, मन इंद्रीका नास ।
निष्कामी सुमिरन मिला, कटी कर्मकी फाँस ॥४॥
कबीर–सहजै सहजै सब गया, सुत वित काम निकाम ।
एक मेक होय मिलि रहा, दास कबीरा राम ॥५॥
कबीर–काहेको कलपत फिरै, दुखी होत बेकाम ।
सहजै सहजै होयगा, जो कछु रचिया राम ॥ ६ ॥
कबीर–जो कछु आवै सहजमें, सोई मीठा जानि ।
कडुवा लागै नीमसा, जामैं ऐंचातानि ॥ ७ ॥
कबीर–सहज मिलै सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि ।
कहै कबीर वह रक्त सम, जामैं ऐंचातानि ॥ ८ ॥

अथ सांचको अंग ॥ ६२ ॥

कबीर–सांच बराबर तप नहीं, झूंठ बराबर पाप ।
जाके हृदये सांच है, ताके हृदये आप ॥ १ ॥
कबीर–साईं से साँचा रहै, साईं साँच सुहाय ।
भावे लम्बे केश रख, भावे घोट मुँडाय ॥ २ ॥
कबीर–झूँठ बात नहिं बोलिये, जब लगि पार बसाय ।
अहो कबीरा सांच गहु, आवागमन नसाय ॥३॥
कबीर–सांचै कोइ न पतीजई, झूँठे जग पतियाय ।
पांच टकाकी डावटी, सात टकै बिकजाय ॥ ४ ॥
कबीर–सांचै कोइ न पतीजई, झूंठे जग पतियाय ।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥५॥
कबीर--सांच कहै तौ मारि हैं, यह तुरकानी जोर ।
बात कहूं परलोक की, करिकै पकरै चोर ॥ ६ ॥
कबीर--सांच कहूं तो मारि हैं, झूंठे जग पतियाय ।
ये जग काली कूकरी, जो छेरे तो खाय ॥ ७ ॥
कबीर--सांच कहूं तो मारि हैं, यूं झूंठहि धरै अपार ।
हम शिर ढारैं ढीकुली, सींचे औरकी क्यार ॥ ८ ॥
कबीर--सांच न कोइ पतीजई, झूंठेके संग जाय ।
झूंठे झूंठे मिलि रहे, अहमक खेहा खाय ॥ ९ ॥
कबीर–झूंठाको झूंठा मिलै, अधिका बढै सनेह ।
झूंठे को सांचा मिलै, तबहीं टूटै नेह ॥ १० ॥

कबीर--कबिरा लज्जा लोककी, बोलै नाहीं सांच ।
जानिबूझि कंचन तजि, क्यों तु पकरै कांच ॥११॥
कबीर--जिन नर साँच पहँचानियां, कर्ता केवल सार ।
सो प्रानी काहे चलै, झूंठे कुलकी लार ॥ १२ ॥
कबीर–साधू ऐसा चाहिये, साँची कहै बजाय ।
की टूटै कि फिरि जुरै, कहे बिन भ्रम न जाय ॥१३॥
कबीर–सांचे शाप न लागई, सांचे काल न खाय ।
सांचेको सांचा मिलै, सांचे माहिं समाय ॥ १४ ॥
कबीर–तेरे अन्दर साँच जो, बाहर कछु न बनाव ।
जाननहारा जानि है, अंतर्गतिका भाव ॥ १५ ॥
कबीर–जाकी सांची सुरति है, ताका सांचा खेल ।
आठ पहर चौंसठ घरी, है सांई सों मेल ॥ १६ ॥
कबीर–प्रेम प्रीतिका चोलना, पहिरि कबीरा नांच ।
तन मन तापर वारहूं, जो कोइ बोलै सांच ॥१७॥
कबीर–सांच शब्द हृदये गहा, अलख पुरुष भरपूर ।
प्रेम प्रीतिका चोलना, पहिरे दास हजूर ॥ १८ ॥
कबीर–सांच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न सोय ।
पारसमें परदा रहै, कंचन किहि विधि होय ॥१९॥
कबीर–अब तो हम कञ्चन भये, तब हम होते कांच ।
सतगुरुकी किरपा भई, दिल अपनेका सांच ॥२०॥
कबीर–कञ्चन केवल हरि भजन, दूजा काथ कथीर ।

झूंठा आल जंजाल तजि, पकडा सांच कबीर ॥२१॥

कबीर–सांचै सौदा कीजिये, अपने जिवमें जानि ।
सांचे हीरा पाइये, झूंठे मूलहु हानि ॥ २२ ॥

कबीर–जो तू सांचा बानिया, सांची हाट लगाय ।
अन्दर झारू देइके, कूरा दूरि बहाय ॥ २३ ॥

कबीर–जाके बोली बंध नहीं, सांच नहीं मन माहिं ।
ताके संग न चालिये, छांडै पैड़ा माहिं ॥ २४ ॥

अथ भ्रमविध्वंसको अंग ॥ ९३ ॥

कबीर–पांहन केरो पूतरो, करि पूजे करतार ।
वाहि भरोसै मति रहो, बूडो काली धार ॥ १ ॥

कबीर–काजर केरी कोठरी, मसके किये कपाट ।
पाहन भूली पिरथवी, पण्डित पारी बाट ॥ २ ॥

कबीर–पाहनको क्या पूजिये, जो नहिं देइ जुवाब ।
अंधा नर आसा मुखी, योंही खावै आब ॥ ३ ॥

कबीर–हम भी पाहन पूजते, होते बनके रोज ।
सत्‌गुरुकी किरपा भई, डारा शिरका बोझ ॥ ४ ॥

कबीर--पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार ।
ताते यह चाकी भली, पीसि खाय संसार ॥ ५ ॥

कबीर--कबिरा जेता आतम, तेता शालिगराम ।
बोलनहारा पूजिये, नहिं पाहन सों काम ॥ ६ ॥

कबीर–घर गिरिवर कर्ता किया, सो क्यों रहै अपूजि ।

पाहन फोरि देवल रचा, परमेश्वर सो दूजि ॥७॥

कबीर–मूरति धरि धंधा रचा, पाहनका जगदीस ।
मोल लिया बोलै नहीं, खोटा विश्वाबीस ॥ ८ ॥

कबीर–पाथरहीका देहरा, पाथरहीका देव ।
पूजनहारा आंधरा, क्यों करि मानै सेव ॥ ९ ॥

कबीर–पाहन पानी पूजिके, सेवा जासी बाद ।
कि सेवा कर साधुकी, कि हरि सुमिरनकी याद॥१०॥

कबीर–पाथर पानी पूजिके, पचि पचि मुआ संसार ।
भेद अलहदा रहि गया, भेदवन्त सो पार ॥ ११ ॥

कबीर–कबिरा पूजै शालिग्रामको, मनकी भ्रांति न जाय ।
शीतलता सपने नहीं, दिन दिन अधिकी लाय॥१२॥

कबीर–कबिरा सेवै शालिग्रामको, माया सेती हेत ।
पहिरै काली कामली, नांव धरावे सेत ॥ १३ ॥

कबीर–कबिरा शालिग्रामका, मोहिं भरोसा नाहिं ।
काल कहर की चोट में, बिंनसि जाय छिन माहिं।१४॥

कबीर–पाथर लै देवल चुना, मोटी मूरति माहिं ।
पिण्ड फूटि परवश रहै, सोलै तारै काहिं ॥१५॥

कबीर–कबिरा पाहन पूजिके, होन कहै भव पार ।
भीज पानि बेधे नदी, बूडे जिन सिर भार ॥१६॥

कबीर–लोहा केरा नावरी, पाहन गरुवा भार ।
कहै कबीर विचारि कै, भव बूडा संसार ॥ १७ ॥

कबीर–कबिरा दुनिया देहरैं, सीस नवावै जाय।
हिरदा मांहीं हरि बसैं, तू ताही लौलाय ॥ १८ ॥

कबीर–मन मक्का दिल द्वारका, काया काशी जान।
दश द्वारका देहरा, तामें ज्योति पिछान ॥ १९ ॥

कबीर–कांकर पाथर जोरिकै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढि मुल्ला बांग दे,क्या बहिरा हुआ खुदाय२०॥

कबीर–मुल्ला चढि किलकारिया, अलख न बहरा होय।
जिस कारण तू बांग दै,सो दिलही अन्दरजोय॥२१॥

कबीर–तुरक मसीते देहरे हिन्दू, आप आपकों ध्याय।
अलख पुरुष घट भीतरै, ताका पार न पाय ॥२२॥

अथ भ्रमनको अंग ॥ ५४ ॥

कबीर–जप तप दीखै थोथरा, तीरथव्रत विश्वास।
सूआ सेंभल सेइया, यों जग चला निरास ॥ १ ॥

कबीर–तीरथ व्रत विष बेलरी, सब जग राखा छाय।
कबिरा मूल निकन्दिया, कौन हलाहल खाय ॥२॥

कबीर–तीरथ व्रत करि जग मुआ, जूड़े पानी न्हाय।
राम नाम जाने बिना, काल ग्रासा खाय ॥ ३ ॥

कबीर–तीरथ चाले दोजना, चित चंचल मन चोर।
पाप न एको उतारिया, मन दश लाये और ॥४॥

कबीर–न्हाये धोये कहँ भया, मनका मैल न जाय।
नीम न कडुआपन तजै, जलमें सदा रहाय ॥५॥

कबीर-मछरी तुरकै पकरिया, बसै गंगके तीर।
धोये कुलाधिन भाजहीं, राम न कहै शरीर ॥ ६ ॥
कबीर-तीरथ काँठे घर करै, पीवै निर्मल नीर।
मुक्ति नहीं हरि नाम बिनु, यों कथि कहै कबीर॥७॥
कबीर-निर्मल हरिके नाम सों, कै निर्मल साधू भाय।
कोइला होय न ऊजला, सौमन साबुन लाय ॥८॥
कबीर-मनहीमें फूला फिरै, करता हूं जो धर्म।
कोटि कर्म शिरपर चढ़ै, चेत न देखे मर्म ॥ ९ ॥
कबीर-और धरम सब करम हैं, भक्ति धरम निहकर्म।
नदी हत्यारीको कहै, कुआ बावरी भर्म ॥ १० ॥
कबीर-कर्म हमारे काटि हैं, कोइ हरिजन कलि माहिं।
कहै हमारी बासना,सो हरिजन कहिये नाहिं॥११॥
कबीर-अहिरन मारै काँखमें, करै सुईका दान।
ऊँचे चढिकै देखई, केतिक दूरि विमान ॥ १२ ॥
कबीर-मरती बिरियाँ दान दे, जीवन बड़ा कठोर।
कहैं कबीर क्यों पाइये, खाँडा कावै चोर ॥ १३ ॥
कबीर-बहुत दान जो देत है, करि करि बहुतै आस।
काहूके गज होयँगे, खइहैं सेर पचास ॥ १४ ॥
कबीर-मुफ्त दान जो देत हैं, मुफतहिं लेत असीस।
ऊंट काहुके होहिंगे, लादैंगे मन बीस ॥ १५ ॥
कबीर-सब बन तो तुलसी भई, सब परबत शालग्राम।

सब नदियाँ गंगा भई, जाना आतमराम ॥१६॥

कबीर–पाँच तत्त्वका पूतला, रज बीरजकी बूंद ।
एकै घाटी नीसरा, ब्राह्मण क्षत्री शूद्र ॥१७॥

कबीर–कबिरा या संसारको, समुझायो कइ बार ।
पूँछ जो पकड़े भेड़की, उतरा चाहे पार ॥१८॥

अथ भेषको अंग ॥ ९९ ॥

कबीर–तत्त्व तिलक तिहुँ लोकमें, राम नाम निजसार ।
जन कबीर मस्तक दिया, शोभा अमित अपार ॥ १ ॥

कबीर–तत्त्वहि फल मन तिलक है, अक्षै वृक्ष फल चार ।
अमर महातम जानिकै, करो तिलक ततसार ॥ २ ॥

कबीर–त्रिकुटीही निज मूल है, भृकुटी मध्य निशान ।
ब्रह्म दीप अस्थूल है, अगर तिलक निर्बान ॥ ३ ॥

कबीर–अगर तिलक शिर सोहई, वैसाखी उनिहारि ।
शोभा अविचल नामकी, देखो सुरति बिचारि ॥ ४ ॥

कबीर–जैमे तिलक उनहार है, तम शोभा अस्थार ।
खंभ ललाटे सोहई, तत्त्व तिलक गंभीर ॥ ५ ॥

कबीर–तत्त्व तिलकको खानि हे, महिमा है निज नाम ।
अक्षै नाम वा तिलकको, रहे अछय विश्राम ॥ ६ ॥

कबीर–मध्य गुफा जहँ सुरति है, उपारि तिलकका धाम ।
अमर समाधि लगावई, जहँ दीसै निर्गुन नाम ॥ ७ ॥

कबीर–द्वादश तिलक बनावहीं, अंग अंग अस्थान ।

कहै कबीर बिराजहीं, उज्ज्वल हंस अमान ॥ ८ ॥

कबीर-तत्त्व तिलक माथे दिया, सूरति श्रवनी कानि ।
करनी कंठी कंठमें, परसा पद निर्बान ॥ ९ ॥

कबीर-मन माला तन सुमिरनी, हरिजी तिलक दियाय ।
दुहाई राजा रामकी, दूजा दूरि कियाय ॥ १० ॥

कबीर-मन माला तन मेखला, भयकी करै भभूत ।
राम मिला सब देखतां, सो योगी अवधूत ॥११॥

कबीर-क्रिया करै अंगुली गिनै, मन धावे चहुँ ओर ।
जिहिं फेरे सांई मिले, सो भया काठ कठोर ॥१२॥

कबीर-माला फेरत युग गया, पाया न मनका फेर ।
करका मनका छाड़िकै, मनका मनिका फेर ॥१३॥

कबीर-माला फेरे मनमुखी, बहुतक फिरे अचेत ।
गांगी रोले बहि गया हरिसों किया न हेत ॥१४॥

कबीर-माला फेरे कछु नहीं, डारि मुआ गल भार ।
ऊपर ढोलाहीं गला, भीतर भरा भंगार ॥१५॥

कबीर-कबिरा माला काठकी, बहुत यतन का फेर ।
माला स्वाँस उस्वाँस की, तामें गाँठि न मेर ॥१६॥

कबीर-कबिरा माला काठकी, पहिरी मुगद डुलाय ।
सुमिरन की सुधि है नहीं, ज्यों डिंगर बांधो गाय १७॥

कबीर-कबिरा माला मनहि की, अरु संसारी भेख ।
माला फेरे हरि मिलै, हरहट के गल देख ॥१८॥

कबीर–शीतल जल पातालका, गाढि हाथ पर मेख ।
मालाके परतापते, ऊपर आया देख ॥ १९ ॥
कबीर–माला फेरे कहा भयो, गांठि न हृदय की खोय ।
हरि चरना चित राचिये, तो अमरा पुर जोय॥२०॥
कबीर–माला तिलक पहीरिकै, हूआ घोटम घोट ।
मनुवा क्यों ना मूँड़िये, जामें सारा खोट ॥ २१ ॥
कबीर–मूँड मुडाये हरि मिलै, सब कोइ लेहु मुँडाय ।
बार बार के मूँड़ने, भेड़ वैकुण्ठ न जाय ॥ २२ ॥
कबीर–दाढ़ी मूछ मुडाय के, हूआ घोटम घोट ।
मनुवा क्यों ना मूँडिये, जामें सारा खोट ॥२३॥
कबीर–माला फेरे कुछ नहीं, काती मन के हात ।
जब लगि हरि परसै नहीं,तब लगि थोथी बात॥२४॥
कबीर–केशे कहा बिगारिया, जो मूँडो सौ बार ।
मन को क्यों नहिं मूँडिये,जामें विषै विकार॥२५॥
कबीर–मन मेवासी मूँडिये, केशहिं मूँडे काहि ।
जो कछु किया सो मन किया,केशां किया कछु नांहि२६
कबीर–मूंड मुड़ावत दिन गया, अजहुं न मिलिया राम ।
राम नाम कहो क्या करै, मनके औरे काम ॥२७॥
कबीर–स्वांग पहिरि सोहदा भया, दुनिया खाई खूँदि ।
जा सेरी साधू गया, सो तो राखी मूँदि ॥ २८ ॥
कबीर–भूला भसम लगायके, मिटी न मनको चाहि ।

जब लग सिका न साँचका, तब लगि योगी नाँहि २९॥

कबीर–ऐसी ठाठाँ ठाठिये, बहुरि न यह तन होय।
ज्ञान गूदरी ओढिये, काढि न सकिहैं कोय ॥३०॥

कबीर–बाना पहरै सिंहका, चलै भेड़की लार।
बोली बोले श्यालकी, कुत्ता खाये फार ॥ ३१ ॥

कबीर–तनको योगी सब करै, मनको विरला कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन योगी होय ॥३२॥

कबीर--हम तो योगी मनहिके, तनके हैं ते और।
मन कों योग लगावतां, दशा भई कछु और॥३३॥

कबीर--भर्म न भागै जीवका, बहुतक धरिया भेख।
सतगुरु मिलिया बाहिरे, अंतर रहिगा लेख ॥३४॥

कबीर--कबिरा वह तो एक है, परदा दीया भेख।
भरम करम सब दूरि कर, सबही माहिं अलेख ॥३५॥

कबीर--पहले बूडी पृथ्वी, झूठे कुलकी लार।
अलख बिसारचौ भेषमे, बूडे काली धार ॥३६॥

कबीर--चतुराई हरि ना मिलै, ये बातोंको बात।
निष्प्रेही निरधारकों, गाहक दीनानाथ ॥ ३७ ॥

कबीर--नौसत साजै सुंदरी, तन मन रही सँजोय।
पियके मन मानैं नहीं, पटम किये क्या होय ॥३८॥

इति भेपका अंग ॥

अथ कुसंगतिको अंग ॥ ५६ ॥

कबीर-कबिरा कुसंग न कीजिये, जाका नावँ न ठांव ।
ते क्यों होसी बापरा, साधु नहीं जिहि गांव ॥ १ ॥
कबीर-कबिरा कुसंग न कीजिये, लोहा जल न तराव ।
कदली सीप भुवंग मुख, एकबुंद तिरभाव ॥ २ ॥
कबीर-उज्ज्वल बून्द अकाशकी, परिगई भूमि बिकार ।
मूल बिनटया मानई, बिन संगति भव छार ॥ ३ ॥
कबीर-हरिजन सेती रूठना, संसारी सों हेत ।
ते नर कदे न नीपजैं, ज्यों कालरका खेत ॥ ४ ॥
कबीर-गिरिये पर्वत शिखरतें, परिये धरनि मँझार ।
मूरख मित्र न कीजिये, बडो काली धार ॥ ५ ॥
कबीर-मूरखको समुझावता, ज्ञान गांठिका जाय ।
कोयला होय न ऊजला, सौमन साबुन लाय ॥ ६ ॥
कबीर-कोयलाभी होय ऊजला, जरिबरि होय जो श्वेत ।
मूरख होय न ऊजला, ज्यों कालरका खेत ॥ ७ ॥
कबीर-मारी मरे कुसंगकी, ज्यों केला ढिग बेर ।
वह हालै वह चीरई, साकट संग निबेर ॥ ८ ॥
कबीर-केला तबहिं न चेतिया, जब ढिग जागी बेरि ।
अबके चेते क्या भया, कांटों लीन्हा घेरि ॥ ९ ॥
कबीर-कबिरा कहते क्यों बनै, अन बनतीके संग ।
दीपकके भावे नहीं, जरि जरि मरै पतंग ॥१०॥

कबीर–मेरे निसानी मीचकी, कुसंगतिही है काल ।
कहै कबीर सुनु प्रानियां, बानी ब्रह्म सँभाल ॥११॥
कबीर–ऊचे कुल कहा जनमिया, जे करनी ऊँच न होय ।
कनक कलस मदसों भरा, साधुन निन्दा सोय ॥१२॥
कबीर–जानि बूझि सांची तजै, करै झूँठ सों नेह ।
ताकी संगति रामजी, सपनेहूँ मति देह ॥१३॥
कबीर–काचा सेती मति मिलै, पाका सेती बानि ।
काचा सेती मिलतही, होय भक्ति में हानि ॥१४॥
कबीर--तोहि पीर जो प्रेमकी, पाका सेती खेल ।
काचा सरसों पेरि कै, खली भया ना तेल ॥१५॥
कबीर–कुल टूटे काची परी, सरा न एको काम ।
चौरासी बासा भया, दूरि परा हरि नाम ॥१६॥
कबीर–दाग जु लागा नीलका, सौ मन साबुन धोय ।
कोटि जतन कर बोधिये, कागा हंस न होय ॥१७॥
कबीर–सतगुरु का यक देश है, जो बसि जाने कोय ।
कागा ते हंसा करै, जाति बरण कुल खाय ॥१८॥
कबीर–जगसो आपा राखिकै, ज्यों विषहरिसो अंग ।
करो दया जो खूब है, बुरा खलकका संग ॥१९॥

अथ संगतिको अंग ॥ ५७ ॥

कबीर–कबिरा संगति साधुकी, नित प्रति कीजै जाय ।
दुर्मति दूरि बहावसी, देसी सुमति बताय ॥ १ ॥

कबीर–संगति सों सुख ऊपजै, कुसंगति सो दुख जोय।
कहै कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय ॥२॥
कबीर–कबिरा संगति साधुकी, कबहुँ न निष्फल जाय।
जोपै धोवै भूनिकै, फूलै फलै अघाय ॥ ३ ॥
कबीर–कबिरा संगति साधुकी, हरै और की व्याधि।
संगति बुरी कुसाधुकी, आठों पहर उपाधि ॥ ४ ॥
कबीर–कबिरा संगति साधुकी, जौकी भुसी जो खाय ॥
खीर खाँड भोजन मिलै, साकट सभा न जाय ॥५॥
कबीर–कबिरा संगति साधुकी, कबहुँ न निष्फल जाय।
होसी चंदन बांवनां, नीम न कहसी काय ॥ ६ ॥
कबीर–संगति कीजै संतकी, जिनका पूरा मन।
अन ताल ही देत हैं, राम सरीखा धन ॥ ७ ॥
कबीर–कबिरा संगति साधुकी, ज्यों गांधीका पास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास ॥ ८ ॥
कबीर--एक घरी आधी घरी, आधी सों भी आध।
कबिरा सङ्गति साधुकी, कटै कोटि अपराध ॥ ९ ॥
कबीर--साधु संगति अन्तर परै, यह मति कबहूँ होय।
कहै कबीर तिहुँलोकमें, सुखी न देखा कोय ॥१०॥
कबीर–कलह काल औ कल्पना, सत संगति सों जाय।
दुखवासों भाजा फिरै, सुखमें रहै समाय ॥ ११ ॥
कबीर–मथुरा जाओ द्वारका, भावे जाओ जगन्नाथ।

साधु संग हरि भजन बिन, कछू न आवै हाथ॥१२॥

कबीर–मेरा संगी दो जना, इक वैष्णव इक राम।
वे दाता हैं मुक्ति के, वे सुमिरावैं नाम ॥ १३ ॥

कबीर–कबिरा वन वन में फिरा, कारण अपने राम।
राम सरीखा जन मिले, तिन सारे सब काम॥१४॥

कबीर–कबिरा सो दिन निर्मला, जा दिन संत मिलाय।
अंक भरे भरि भेटिये, पाप देहका जाय ॥ १५ ॥

कबीर--राम राम रटिबो करै, निसि दिन साधुन संग।
कहो जो कौन बिचार ते, नहिं नैना लागत रंग॥१६॥

कबीर--मन दीया कहुं औरही, तन साधुन के संग।
कहैं कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥ १७ ॥

कबीर–साखी शब्द बहुतै सुना, मिटा न मनका दाग।
संगति में सुधरा नहीं, ताका बड़ा अभाग ॥ १८ ॥

कबीर–कबिरा संगति साधुकी, जो कर जानैं कोय।
चंदनते बन चंदन भया, बाँस न चंदन होय ॥१९॥

कबीर–कबिरा चन्दन कै बिषे, बेधा आक पलास।
आप सरीखा करि लिया, जो होते उन पास ॥२०॥

कबीर–मलयागिरि के बास में, वृक्ष रहै सब गोय।
कहिबेकूँ चंदन भये, मलयागिरि नहिं होय ॥२१॥

कबीर–मलयागिरिकी बासमें, बेधा आक पलास।
बांस न कबहूं बेधिया, रहै युगोंयुग पास ॥२२॥

कबीर—मलयागिरिके पेडसौं, सरप रहे लपटाय।
रोम रोम विष भानिया, अमृत कहां समाय ॥२३॥

कबीर—चंदन जैसा सन्त है, सरप जैस संसार।
वाके अंग लपटा रहै, भागै नहीं विकार ॥ २४ ॥

कबीर—चन्दन डर लहसुन करै, मति रे बिगारै बास।
सुगुरा डरपै निगुरु सों, यों जगसे डरपै दास ॥२५॥

कबीर—कबिरा घड़ीकी आधी घड़ी, भाव भक्तिमें जाय।
सत संगति पलही भली, यमका धका न खाय ॥२६॥

कबीर—जा पल दर्शन साधुका, ता पलकी बलिहारि।
राम नाम रसना बसै, लीजै जन्म सुधारि ॥२७॥

कबीर—ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत।
प्रेम विना पशु जीवना, भक्ति विना भगवन्त ॥२८॥

कबीर—जा घर हरि की भक्ति नहिं, संत नहीं मिहमान।
ता घर यम डेरा दिया, जीवत भये मसान ॥२९॥

कबीर—ऋद्धि सिद्धि मांगूँ नहीं, हरि सो मांगूँ एह।
नित प्रति दर्शन साधुका, कहैं कबीर मोहिं देह॥३०॥

कबीर—मेरा मन हंसा रमै, हंसा गमनि रहाय।
बगुला मन मानै नहीं, घर आंगन फिरि जाय ॥३१॥

कबीर—कबिरा तासों संग कर, जो रे भजै हैं राम।
राजा राना छत्रपति, राम बिना बेकाम ॥ ३२ ॥

कबीर--राम बुलाया भेजिया, दिया कबीरै रोय।

जो सुख साधूसंग में, सो वैकुंठ न होय ॥ ३३ ॥

कबीर–कबिरा खाई कोटका, पानी पिये न कोय ।
जाय परै जब गंग में, सब गंगोदक होय ॥ ३४ ॥

कबीर–कबिरा मन पक्षी भया, मन माने तहँ जाय ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल खाय ॥३५॥

अथ असाधुको अंग ॥ ६८ ॥

कबीर–जेता मीठा बोलवा, तेता साधु न जान ।
पहले थाह दिखायके, आवडे देसी आन ॥ १ ॥

कबीर–उज्वल देखि न दीजिये, बग ज्यों मांडे ध्यान ।
धोरै बैठि चपेटिसी, याँ लै बूडे ज्ञान ॥ २ ॥

कबीर–कबिरा भेष अतीत का, करतूति करै अपराध ।
बाहर दीसै साधुगति, मांहीं बडा असाध ॥ ३ ॥

कबीर–बांबी कूटै बावरे, सर्प न मारा जाय ।
मूरख बांबी ना डसै, सरप जगत को खाय ॥ ४ ॥

कबीर–कबिरा सौ मन दूधका, टपक किया बिनाश ।
दूध फाटि कांजी भया, हुआ जो घृतका नाश ॥५॥

कबीर–रैनि पुरै वासर घटै, वन अँधियारा होय ।
लागि रहा फूला फला, पथ नहिं काटा कोय ॥६॥

टीका–रैन तरुन अवस्था । वासर वृद्ध अवस्था । वन वपु शरीर । अँधियारा अज्ञान । फूल वासना । फल बेटा बेटी । पंथ पंथ चौरासी ॥६॥

अथ साधुको अंग ॥ ५९ ॥

कबीर–निर्बैरी निष्कामता, सांई सेती नेह ।
विषयासूं न्यारा रहै, साधुन का मत एह ॥ १ ॥
कबीर–सब वन तो चन्दन नहीं, शूराके दल नाहिं ।
सब समुद्र मोती नहीं, यों साधू जग मांहिं ॥ २ ॥
कबीर–सिंहनके लेहँड़ा नहीं, हंसन की नहिं पाँति ।
लालनकी ओबरी नहीं, साधु न चलै जमाति ॥३॥
कबीर–स्वांगी सब संसार है, साधु समझि भये पार ।
अनलपक्ष कोइ एक है, पक्षी कोटि हजार ॥ ४ ॥
कबीर–संत न छाँडे संतई, कोटिक मिलैं असंत ।
मलया भुवंगहि बेधिया, शीतलता न तजंत ॥ ५ ॥
कबीर–साधू जन सबमें रमैं, दुःख न काहू देहि ।
अपने मत गाढ़ा रहैं, साधुन का मत एहि ॥ ६ ॥
कबीर–साधु ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नाँहिं ।
पान फूल छेरै नहीं, बसै बगीचा मांहिं ॥ ७ ॥
कबीर–साधु हजारी कापड़ा, तामें मला न समाय ।
साकट काली कामली, भावै तहां बिछाय ॥ ८ ॥
कबीर–हांसी खेल हराम है, जो जन राते राम ।
माया मन्दिर इस्तरी, नहीं साधुका काम ॥ ९ ॥
कबीर–साधू भौंरा जग कली, निस दिन फिरै उदास ।
टुक इक तहां विलंबिया, जहाँ शीतल शब्द निवास १०
कबीर–सिंह साधुका एक मत, जीवतही को खाय ।

भावहीन मृत्तक दशा, ताके निकट न जाय ॥११॥

कबीर–कमल पत्र हैं साधु जन, बसें जगतके मांहिं ।
बालक केरी धाय ज्यों, अपना जानत नांहिं ॥१२॥

कबीर–उडुगन मीन सुधाकरा, बसत नीरकी संध ।
यों साधू संसार में, कबिरा परत न फंद ॥ १३ ॥

कबीर–तीन लोक उनमान में, चौथो अगम अगाध ।
पंचम दिशा है अलख की, जानैगा कोइ साध॥१४॥

कबीर–साध सिद्ध बड़ अंतरा, जैसे आम बबूल ।
वाकी डारी अमी फल, वाकी डारी शूल ॥ १५ ॥

कबीर–रविको तेज घटै नहीं, जो घन जुरै घमंड ।
साधु वचन पलटै नहीं, जो उलटि जाय ब्रह्मण्ड१६॥

कबीर–साधु कहावन कठिन है, आगेकी सुधि नांहि ।
सूली ऊपर खेलना, गिरै तो ठोरहिं काहि ॥१७॥

कबीर–साधु कहावन कठिन है, ज्यों खाँडे की धार ।
डगमगाय तौ गिरि परै, निश्चल उतरै पार ॥१८॥

कबीर–साधु कहावन कठिन है, ज्यों लम्बी पेड़ खजूर ।
चढै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥१९॥

कबीर–जौंन भाव ऊपर रहै, भीतर बसावे सोय ।
भीतर और न बसावई, ऊपर और न होय ॥२०॥

कबीर–जौंन चाल संसारकी, तौन साधुकी नांहि ।
दम्भ चाल करनी करै, साधु कहो मति ताहि॥२१॥

कबीर–साधु चाल जो चालई, साधु कहावै सोय ।
बिन साधन तो सुधि नहीं, साधु कहाँ तें होय ॥२२॥
कबीर–साधू सोई जानिये, चलै साधु की चाल ।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल ॥ २३ ॥
कबीर–तन में शीतल शब्द है, बोलै बचन रसाल ।
कहै कबीर ता साधुकौ, गंजि सकै ना काल ॥२४॥
कबीर–गांठी दाम न बाधहा, नाहिं नारिसों नेह ।
कहै कबीर वा दासके, चरण कमलका खेह ॥२५॥
कबीर–साधु सती अरु शूरमाँ, इन पटतर कोइ नाहिं ।
अगम पंथको पग धरै, गिरै तो कहा समाहिं ॥२६॥
कबीर–अगम पंथको मन गया, सुरति भई अनुबानि ।
तहां कबीरा मँडि रहा, बेहदके मैदान ॥ २७ ॥
कबीर–बहता पानी निर्मला, बँधा गँधीला होय ।
साधू जन रमते भले, दाग न लागै कोय ॥ २८ ॥
कबीर–बंधा पानी निर्मला, जो टुक गहरा सोय ।
साधू जन बैठा भला, जो कछु साधन होय ॥२८॥
कबीर–कौन साधुका खेल है, कौन सुरतिका दाव ।
कौन अमृतका कूप है, कौन वज्रका घाव ॥३०॥
कबीर–क्षमा साधुका खेल है, सुमति सुरति का दाव ।
कर्ता अमृत कूप है, शब्द वज्रका घाव ॥ ३१ ॥
कबीर–धरती अम्बर जायँगे, बिनसैंगे कैलास ।
एक मेक हो जायगे, तब कहां रहैंगे दास ॥ ३२ ॥

कबीर–एकम एका होन दै, बिनसन दै कैलास ।
धरती अम्बर जान दै, मोमें मेरे दास ॥ ३३ ॥

अथ साक्षीभूतको अंग ॥ ६० ॥

कबीर–काजर केरी कोठरी, ऐसा यह संसार ।
बलिहारी वा दासकी, पैठिके निकसन हार ॥१॥
कबीर–काजल केरी कोठरी, काजलहीका कोट ।
बलिहारी वा दासकी, रहै रामकी ओट ॥ २ ॥
कबीर–कबिरा पांच बलधिया, ऊजर ऊजर जांहि ।
बलिहारी वा दासकी, पकरि जो राखे बांहि ॥ ३ ॥
कबीर–कबिरा हरिका भावता, झीना पिंजर तास ।
नैन न आवै नींदरी, देह न तनकी माँस ॥ ४ ॥
कबीर–कबिरा हरिका भावता, दूरहि ते दीसंत ।
तन छीना मन उनमना, जगते रूठा फिरंत ॥ ५ ॥
कबीर- अनरते सुख सोवना, रते नींद न आय ।
ज्यों जल टूटे माछरी, तलफत रैन बिहाय ॥ ६ ॥
कबीर–कबिरा जिन कछु जानिया, सुख नीदरी बिहाय ।
मेरे अबूझी बूझिया, परी परी बिललाय ॥ ७ ॥
कबीर–जान भक्त का नित मरन, अन जानेका राज ।
सर औसर समुझे नहीं, पेट भरन सों काज ॥ ८ ॥
कबीर–जा घट जान बिनान है, तिस घट अवट ना घना ।
बिन खांडे संग्राम है, नित उठि मन सो जूझना॥९॥

कबीर–राम बियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्हें कोय।
तम्बोलीका पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥१०॥

कबीर–पील कँदौरी साँइया, कबल कहै इस रोग।
छौने लंघन नित करूं, राम पियारे जोग ॥११॥

टीका–पाँचौं इन्द्री छट्ठा मन तिनको लंघन किया।

कबीर–फाटे दीदे मैं फिरूं, नजरि न आवै कोय।
जा घट मेरा सांइयां, सो क्यों छाना होय ॥१२॥

कबीर–जा घट में साईं बसै, सो क्यों छाना होय।
जतन जतन करि दाबिये, तौ उजियारा सोय ॥१३॥

कबीर–सब घट मेरा साइयां, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घाट की, जा घट परगट होय ॥१४॥

कबीर–पावक रूपी राम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, धूआं होय होय जाय ॥१५॥

कबीर–कबिरा खालिक जागिया, और न जागे कोय।
कै जागै बिषया भरा, दास बंदगी सोय ॥१६॥

कबीर–राता राता सब कहैं, अनराता कहै न कोय।
राता सोही जानिये, जा तन रक्त न होय ॥१७॥

कबीर–राता रक्त न नीकसे, जो तन चीरै कोय।
जो राता हरि नाम सों, ता तन रक्त न होय ॥१८॥

कबीर–जा घट में संशय बसै, ता घट राम न होय।
राम सनेही साधु बिच, तिना न संचर जोय ॥१९॥

कबीर-जो भाजौ तौ भय नहीं, सनमुख रहा न जाय ।
सूता सिंह न जगाइये, जो छेरै तेहि खाय ॥२०॥
कबीर-राम राम जिन उच्चरयौ, छन छन बारंबार ।
ते मुख भय जो ऊजला, कहै कबीर विचार ॥२१॥
कबीर-कबिरा पूछे रामसों, सकल भवन पतिराइ ।
सबही करि न्यारा रहै, सोई देहु बताइ ॥२२॥
कबीर-पारस रूपी राम है, लोहा रूपी जीव ।
जब जाय पारस भेटि है, तब जिव है है सीव ॥२३॥
कबीर-दया कौन पर कीजिये, कापर निरदइ होय ।
हम तो भये तमासगो, नाटक बाजी जोय ॥२४॥

अथ साधुमहातमको अंग ॥ ६१ ॥

कबीर-साधू आवत देखिकै, चरनूं लागो धाय ।
क्या जानौ इस भेषमें, हरि ही जो मिलि जाय ॥१॥
कबीर-साधू आवत देखिकै, हंसी हमारी देह ।
माथा का ग्रह ऊतरा, नैना बढ़ा सनेह ॥२॥
कबीर-साधू आवत देखिकै, मनमें करै मरोर ।
सो होवैगा चूहडा, बसै गाँवकी ओर ॥३॥
कबीर--आवत साधु न हरषिया, जात न दीया रोय ।
कहैं कबीर ता दासकी, मुक्ति न कबहूं होय ॥४॥
कबीर--साधू भूँखा भावका, धनका भूँखा नाहिं ।
धनका भूँखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं ॥ ५ ॥
कबीर--साधू आया पाहुना, माँगे चार रतन्न ।
धना पानी साथरा, शरधा सेती अन्न ॥ ६ ॥

कबीर--छाजन भोजन प्रीतिसों, दीजै साधु बुलाय।
जीवत यश होय जगत में, अंत परमपद पाय ॥ ७ ॥
कबीर--हौं साधुनके संग हौं, अंत कहूं नहिं जांव।
जो मोहिं अरपै प्रीतिसों, साधुन मुख होय खांव॥८॥
कबीर-साधु हमारी आतमा, हम साधुनके जीव।
साधुन मध्ये यों रहों, ज्यों पय मध्ये घीव ॥ ९ ॥
कबीर-ज्यों पय मध्ये घीव है, त्यों रमि रहा सब ठौर।
वक्ता श्रोता बहु मिले, मथि काढे ते और ॥१०॥
कबीर-साधु नदी जल प्रेम रस, तहां पर छालो अंग।
कहै कबीर निर्मल भया, हरि भक्तनके संग ॥११॥
कबीर-कबिरा सोई दिन भला, जादिन संत मिलाय।
अंक भरे भरि भेंटिये, पाप शरीरा जाय ॥ १२ ॥
कबीर-साधु मिले साहिब मिले, अंतर रही न रेख।
मनसा वाचा कर्मना, साधू आप अलेख ॥१३॥
कबीर-निराकार की आरसी, साधुनहीकी देह।
लखा जो चाहे अलखको, इनहीं मे लखि लेह ॥१४॥
कबीर-साधुन केरी दयातैं, उपजे बहुत अनंद।
कोटि विघ्न पलमें टरै, मिटै सकल दुख द्वंद ॥१५॥
कबीर-सुख देना दुख मेटना, दूर करन अपराध।
कहै कबीर वे कब मिलें, परम सनेही साध ॥१६॥
कबीर-हरि दरबारी साधु हैं, इनते सब कछु होय।
वेगि मिलावैं रामको, इन्हैं मिलै जो कोय ॥१७॥

कबीर-साधू खोजा रामके, धसें जो महलन माहिं ।
औरन को परदा लगै, इनको परदा नाहिं ॥१८॥
कबीर-गिरही सेवे साधुको, साधू सुमिरें राम ।
यामें धोखा कछु नहीं, सरै दोऊका काम ॥१९॥
कबीर-जा घर साधु न सेवही, पारब्रह्म पति नाहिं ।
ते घर मरघट सारिखा, भूत बसै ता माहिं ॥२०॥
कबीर-साधुनकी झुपरी भली, ना साकटको गांव ।
चंदनकी कुटकी भली, ना बबूल बन राव ॥२१॥
कबीर-पुर पट्टन सुबस बसै, आनँद ठांवै ठांव ।
राम सनेही बाहरा, ऊजर मेरे भाव ॥२२॥
कबीर-हैवर गैवर सघन घन, छत्र ध्वजा फहराय ।
ता सुखते भिक्षुक भला, हरि सुमिरत दिन जाय२३॥
कबीर-हैवर गैवर सघन घन, छत्रपतीकी नारि ।
तासु पटतरै ना तुलै, हरिजनकी पनिहारि ॥२४॥
कबीर-क्यों नृप नारी निंदिये, पनिहारीको मान ।
वा मांग सवारै पीवकूं, नित वह सुमिरे राम ॥२५॥
कबीर-साधुनकी कुतिया भली, बुरी साकटकी माय ।
वा बैठी हरि यश सुनै, वा निन्दा करने जाय ॥२६॥
कबीर-धन्य सो माता सुंदरी, जिन जाया वैष्णव पूत ।
राम सुमिरि निर्भय भया, अरु सब गया अऊत ॥२७॥
कबीर-कबिरा कुल सो ही भला, जा कुल उपजे दास ।
जा कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥२८॥

कबीर—भली भई जो भय मिटा, टूटी कुलकी लाज ।
बे परवाही है रहा, बैठा राम जहाज ॥२९॥
कबीर--कबिर भये हैं केतकी, भंवर भये सब दास ।
जहँ जहँ भक्ति कबीर की, तहँ तहँ मुक्तिनिवास॥३०॥
कबीर—साधु समुन्दर जानिये, मांही रत्न भराय ।
मंद भाग मूठी भरै, कर कंकर चढ़िजाय ॥३१॥
कबीर—साधू तो हीरा भया, ना फूटै घन खाय ।
ना वह बिनसै कुंभ ज्यों, ना वह आवै राय ॥३२॥
कबीर—साधु सीप साहिब समुद्र, निपजत मोती माहिं ।
वेही ठिकाने पाइये, नाल खालमें नाहिं ॥ ३३ ॥
कबीर—हरि दरिया सुभर भरा, साधुनका घट सीप ।
तामें मोती नीपजै, चढै दिसावर द्वीप ॥३४॥
कबीर—चंदनकी चुटकी भली, कहा बबूल बनराव ।
साधुनकी छपरी भली, बुरो असाधुको गाँव ॥३५॥
कबीर—जाति न पूछौ साधुकी, जो पूछौ तो ज्ञान ।
मोल करो तरवारका, परा रहन दो म्यान ॥३६॥
कबीर—कहा अकासका फेर है, कहा धरतीका तोल ।
कहा साधुकी जाति है, कहा पारसका मोल ॥३७॥
कबीर—साधु वृक्ष हरिनाम फल, शीतल शब्द बिचार ।
जगमें साधु होते नहीं, जलि मरता संसार ॥३८॥
कबीर—तीरथ न्हाये एक फल, साधु मिले फल चार ।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहैं कबीर बिचार॥३९॥

कबीर–साधु सिद्धका एक मत, साधु मता परचंड ।
सिद्ध तारै तन आपना, साधु तारे नवखंड ॥ ४० ॥
कबीर–यही बडाई संतकी, करनी देखो आय ।
रजहूंते झीना रहै, लौलिन है गुनगाय ॥ ४१ ॥
कबीर–हरि सेती हरिजन बड़े. समुझि देखु मन मांहि ।
कबिरा सब जग हरि विषै,सो हरि हरिजन मांहि ४२
कबीर–परमेश्वरते सँत बड़े, ताका कहा उनमान ।
हरि माया आगे धरै, संत रहै निर्बान ॥ ४३ ॥
कबीर–सन्त बड़े संसारमें, हरितें अधिकी सोय ।
बिन इच्छा पूरन करै, साधू साहिब होय ॥ ४४ ॥
कबीर–नीलकंठ कीडा भखै, मुख वाके है राम ।
औगुन वाके लगै नहीं, दर्शनहीसे काम ॥ ४५ ॥
कबीर–साधूको उठि भेंटिये, मुखते कहिये राम ।
नातो साधु स्वरूपको, करनी सो नहिं काम ॥४६॥
कबीर–काहूको नहिं निंदिये, सबको कहिये संत ।
करनी अपनी ते तरै, मिलि भजिये भगवंत ॥ ४७ ॥
कबीर–अवैष्णव कोई नहीं, सबै वैष्णव जानि ।
जेता हरिको ना भजै, तेता ताको हानि ॥ ४८ ॥
कबीर–आप साधु करि देखिये, असाधू देखु न कोय ।
जाके हिरदै हरि नहीं, हानि उसी को होय ॥४९॥
कबीर–कबिरा दर्शन साधुका, करत न कीजै कानि ।
ज्यों उद्यमते लक्ष्मी मिलै.आलसमें नित हानि॥५०॥

कबीर–कबिरा दर्शन साधुके, साहब आवै यादि ।
लेखामें सोही घरी, बाकीका दिन बादि ॥ ५१ ॥
कबीर–दर्शन कीजै साधुका, दिनमें कई एक बार ।
आसोजाका मेह ज्यों, बहुत करै उपकार ॥ ५२ ॥
कबीर–कई बार नहिं करि सकै, दोय वक्त करि लेय ।
कबिरा साधू दरस सों, काल दगा नहिं देय ॥५३॥
कबीर–दोय बखत नहिं करि सकै, दिनमें कर इक बार ।
कबिरा साधु दरसतैं, उतरै भवजल पार ॥ ५४ ॥
कबीर–एक दिना नहिं करि सकै, दूजे दिन करि लेय ।
कबिरा साधू दरसतैं, पावै उत्तम देह ॥ ५५ ॥
कबीर–दूजे दिन नहिं करि सकै, चौथे दिन कर जाय ।
कबिरा साधू दरसते, मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥५६॥
कबीर–चौथे दिन नहिं करि सकै, बार बार कर जाय ।
यामें बिलम्ब न कीजिये, कहै कबीर समुझाय॥५७॥
कबीर–बार बार नहिं करि सकै, पक्ष पक्ष करे सोय ।
कहै कबीर ता दासको, जनम सुफलही होय ॥५८॥
कबीर–पक्ष पक्ष नहिं करि सकै, मास मास कर धाय ।
यामें भेद न कीजिये, कहै कबीर समुझाय ॥५९॥
कबीर–मास मास नहिं करि सकै, छठै मास अलबत्ति ।
यामैं ढील न कीजिये, कहै कबीर अविगत्ति॥६०॥
कबीर–छठे माँस नहिं करिसकै बरस दिना करि लेय ।
कहै कबीर सो संतजन, यमैं चुनौती देय ॥ ६१ ॥

कबीर–बरस बरस नहिं करि सकै, ताको लागै दोष।
कहै कबीर वा जीव सों, कबहुँ न पावै मोष ॥ ६२ ॥

कबीर–मात पिता सुत इस्तरी, आलस बंधू कानि।
साधु दरसको जब चलै, ये अटकावैं आनि ॥६३॥

कबीर–इनका अटकाथा ना रहै, साधु दरस को जाय।
कबिरा सोई संतजन, मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥६४॥

कबीर--साधु चलत रोय दीजिये, कीजै अति सनमान।
कहै कबीर भेंट धरु, अपने वित्त अनुमान ॥ ६५ ॥

कबीर–खाली साधु न विदा करु, सुन लीजो सब कोय।
सुनो कबीरा भेंट धरु, जो तेरे गृह होय ॥ ६६ ॥

कबीर–मोहर रुपैया पईसा, छाजन भोजन देय।
कहै कबीर सो जगतमें, जनम सफल करि लेय॥६७॥

कबीर–बेटा बेटी इस्तिरी, साधु चाहे सो देय।
सिर साधुके अर्पही, जन्म सफल करि लेय ॥ ६८ ॥

कबीर–हाथी घोड़ा गाय भैंस, अरथ रु गाडी भवन्।
कबीर दीजै साधुकौं, कीया चाहै गवन ॥ ६९ ॥

कबीर–कबिरा दरशन साधुके, खाली हाथ न जाय।
यही सीख बुद्धि लीजिये, कहै कबीर समुझाय॥७०॥

कबीर–सुनिये पार जे पाइया, छाजन भोजन आनि।
कहै कबीरा साधु को, देत न कीजै कानि ॥७१॥

कबीर–कबिरा लौंग इलायची, दातुन माटी पान।

कहै कबीरा साधुकों, देत न कीजै कान ॥ ७२ ॥

कबीर–टूका माहिं टूक दै, चीर मांहिं सों चीर ।
साधू देत न सकुचिये, यों कहै दास कबीर ॥७३॥

कबीर–कंचन दीया करणने, द्रोपदी दीया चीर ।
जो दीया सो पाइया, ऐसे कहैं कबीर ॥ ७४ ॥

कबीर–निराकार निज रूपहै, प्रेम प्रीति सों सेव ।
जो चाहै आकारको, साधु प्रत्यक्षहि देव ॥ ७५ ॥

कबीर–जा सुखको मुनिवर रटैं, सुमिरन करैं बिलाप ।
सो सुख सहजे पाइया, संतो संगति आप ॥ ७६ ॥

कबीर–मेरा मन पक्षी भया, उड़िकै चढा अकास ।
बैकुंठहि खाली परा, साहब संता पास ॥ ७७ ॥

कबीर–पर्बत पर्बत मैं फिरा, कारन अपने राम ।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काम ॥७८॥

कबीर–कबिरा शीतल जल नहीं, हेम न शीतल होय ।
कबीर शीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥ ७९ ॥

कबीर–भली भई हरिजन मिले, कहने आयो राम ।
सुरति दशौं दिशि जाय थी, अपने अपने काम॥८०॥

कबीर--संत मिला जनि बीछरो, विछरो यह मम प्रान ॥
राम सनेही ना मिलै, प्रान देह मति आन ॥८१॥

कबीर--कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि कर धाम ।
जब लगि सन्त न सेवई, सरे न एकहु काम ॥८२॥

कबीर--आसा वासा संतका, ब्रह्मा लखै न बेद ।
षट दरशन खटपट करैं, बिरला पावैं भेद ॥ ८३ ॥

कबीर–ऊँडा चित्त रु सम दशा, साधू गण गंभीर ।
जो धोखा बिरचै नहीं, सोही संत सधीर ॥ ८४ ॥

अथ देखादेखीको अंग ॥ ६२ ॥

कबीर–देखा देखी भक्तिका, कबहुँ न लागै रंग ।
बिपति परै यों छांड़सो, जिमि कांचली भुवंग ॥१॥

कबीर–ज्ञान संपूरन ना बिंधा, हिरदा नहीं छुदाय ।
देखा देखी पकरिया, रंग नहीं ठहराय ॥ २ ॥

कबीर–देखा देखी पकरिया, गई छिनक में छूटि ।
कोइ बिरला जन ठाहरै, जाकी ठाकोरी पूठि ॥३॥

कबीर–देखा देखी सब कहै, भोर भये तें राम ।
आधरात कोइ जन कहैं, खानाजाद गुलाम ॥ ४ ॥

कबीर--यह मन ताको दीजिये, जो साचा सेवक होय ।
शिर ऊपर आरा सहै, तौहु न दूजा सोय ॥ ५ ॥

कबीर–करिये तो करि जानिये, जो सरीखा सेती संग ।
झिर झिर जिमि लोई भई, तऊ न छांडै रंग ॥६॥

अथ मध्यको अंग ॥ ६३ ॥

कबीर–मध्य अंग लागा रहै, तरत न लागै वार ।
दो दो अंग सों लागतां, यों बूड्यो संसार ॥ १ ॥

कबीर–कबिरा दुविधा दूरि करि, एक अंग होय लागि ।

वा शीतल वा तपति है, दोऊ कहिये आगि ॥ २ ॥
कबीर–साखी आंखी ज्ञानकी, समझि देखु मन मांहिं ।
बिन साखी संसारका, झगरा चूकै नाहिं ॥ ३ ॥
कबीर–जो मन समुझे ज्ञान में, ज्ञानहि होय सहाय ।
सो फिर ताही ना रुचै, ताते कहा बसाय ॥ ४ ॥
कबीर–समुझेका घर और है, अन समझेका और ।
जा घटमें साहिब बसै, सो बिरला जानै ठौर ॥५॥
कबीर–समझेका मत और है, अन समुझेका और ।
समुझै पीछे जानिये, राम बसै सब ठौर ॥ ६ ॥
कबीर–मोमें तोमें सरब में, जहँ देखूं तहँ राम ।
राम बिना क्षण एकही, सरे न एको काम ॥ ७ ॥
कबीर–अनल अकाशे घर किया, मध्य निरंतर बास ।
बसुधा बास बिरकत रहै, बिना ठौर बिशवास॥८॥
कबीर–अनल पंख आवै नहीं, सुत अपनेको लैन ।
वह अलीन यह लीन है, उलटि मिलेते चैन ॥ ९ ॥
कबीर–अनलपक्ष कै चीतवै, गिरते किया विचार ।
सुरति बांधि चेतन भयो, जाय मिला परिवार॥१०॥
कबीर–जाय मिला परिवारमें, सुखसागरके तीर ।
बरन पलटि हंसा किया, सतगुरु शब्द कबीर ॥११॥
कबीर–वासर गम नहिं रैन गम, नहिं सपुनेतर गाम ।
तहाँ कबीर बिलंबिया, जहां छांह नहिं घाम ॥१२॥

कबीर--नरक स्वर्ग ते मैं रहा, सतगुरुके परसादि ।
चरण कमलकी मौजमें, रहसी अंतर आदि ॥१३॥
कबीर--काबा फिर काशी भया, राम जो भया रहीम ।
मोटा चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥१४॥

टीका--काबह सो काशी।काशी सो काबह एक करि देखा । मोट नीच मैदा उच्च बरन सम देखा दूजा मन मोटा नान्हां हुआ ।

कबीर--दास कबीर काढी भली, दोऊ राह बिच राह ।
अंधे लोग अचरज करैं, सारे करैं सराह ॥१५॥

टीका--दोय राह हिंदू मुसलमान । राह हद । अंधे लोग संसारी सारे मत ।

कबीर--धरती और अकाशमें, दो तूंबरी अबद्ध ।
षट दर्शन धोखे परे, और चौरासी सिद्ध ॥ १६ ॥

टीका--दो तूंबरी सोई साधु । अबध किसी सौं मोहकरि बंधे नहीं । षट दर्शन धोखा अपनी पक्ष में परे ।

कबीर--सुरति निरति दोउ तूंबरी, आवा गमन अबद्ध ।
अनसमझा धोखे परा, समझा सोई सिद्ध ॥ १७ ॥
कबीर--प्रगट गुप्तकी संधि में, जो यह अस्थिर होय ।
ज्यों देवल का दीवला, अंदर बाहर सोय ॥१८॥
कबीर--पाया कहैं ते बावरे, खोया कहैं ते कूर ।
पाया खोया कछु नहीं, ज्यों का त्यों भरपूर ॥१९॥
कबीर--भजूं तो कोहै भजन को, तजूं तो कोहै आन ।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन मान ॥२०॥
कबीर--लेऊ तो महा प्रतिग्रह, देऊँ तो भोगंत ।
लेन देन के मध्यमें, सो कबीर निज संत ॥२१॥

कबीर--दुआ देऊँ तो दोजख जाऊँ, बह दुआ भी नाँहि ।
दुआ बद्दुआ किसको देऊँ, साहब है सब माँहि ॥२२॥

कबीर-मँडि रहना मैदानमें, सन्मुख सहना तीर ।
जमरा और जगदीशके, मध्यमें बसै कबीर ॥२३॥

कबीर-गुरु नहीं चेला नहीं, मूरीदहु नहिं पीर ।
एक नहीं दूजा नहीं, बिलम्बे दास कबीर ॥२४॥

कबीर-हिंदू ध्यावै देहरा, मुसल्मानहू मसीत ।
दास कबीर तहां ध्यावहीं, जहां दोनोंकी परतीत२५॥

कबीर-हिंदू तुरक के बीचमें, मेरा नाम कबीर ।
जीव मुक्तावन कारनै, अविगति धरा शरीर ॥२६॥

कबीर-हिन्दू तुरकके बीचमें, शब्द कहूँ निर्बान ।
बंधन काटूँ जगतको, मैं रहता रहमान ॥२७॥

कबीर-हिन्दू मूआ राम कहि, मूसलमान खुदाय ।
कहै कबीर सो जीवता, दोउके संग न जाय ॥२८॥

कबीर-हिंदू कहूँ तौ मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं ।
पाँच तत्वका पूतला, गैबी खेले माहिं ॥२९॥

कबीर-गैबी आया गैबते, इहां लगाया ऐब ।
उलटि समाना गैब में, तब कहां रहैगा ऐब ॥३०॥

कबीर-गैबी तो गलिया फिरै, अजगैबी कोइ एक ।
अजगैबी हू जो लखे, जाके हृदय विवेक ॥३१॥

कबीर--आगै खोजी पचि मुआ, पीछै रहा भुलाय ।

मध्य माहिं बासा करै, ताको काल न खाय ॥३२॥

कबीर–सांच कोई न मानई, झूठ कहा नहिं जाय।
साँच झूँठके मध्यमें, रहा कबीर समाय ॥३३॥

कबीर–अतिका भला न बोलना, अतिकी भली न चूप।
अतिका भला न बरसना, अतिकी भली न धूप३४॥

अथ समझावटको अंग ॥ ६४ ॥

कबीर–समझे को सेरी घनी, अन समझे को नाहिं।
द्वार न पावे शब्द का, फिरि फिरि गोता खाहिं ॥१॥

कबीर–समझा समझा एक है, अन समझे सब एक।
समझा सोई जानिये, जाके हृदय विवेक ॥ २ ॥

कबीर–कोटि सयाने पचि मुये, कथै बिचारे लोय।
समझा घट तब जानिये, रहित बिकार जो होय ॥३॥

कबीर–समुझा समुझा एक है, अन समुझे सो मौन।
बातैं बहुत मिलावई, तासों झीखै कौन ॥ ४ ॥

कबीर–समुझा सोही जानिये, समुझि समानी माहिं।
जब लग कछू न आवही, तब लग समुझा नाहिं ॥५॥

कबीर–साखी आंखी ज्ञानकी, समुझि देखु मन माहिं।
बिन साखी संसारको, झगरा चूकै नाहिं ॥ ६ ॥

अथ विचारको अंग ॥ ६५ ॥

कबीर–राम राम सब कोइ कहे, कहने माहिं बिचार।
सोइ राम जो सती कहै, सोई कोतिक हार ॥ १ ॥

कबीर–आगि कहै दाझै नहीं, पांव न दीजै मांहिं ।
जोपै भेद न जानई, राम कहा तौ काहि ॥ २ ॥
कबीर–कबिरा सोचि बिचारिया, दूजा कोई नाहिं ।
आपा पर जब चीन्हिया, उलटि समाना माहिं ॥ ३ ॥
कबीर–पानी केरा पूतला, राखा पवन संचार ।
नाना बानी बोलतां, ज्योति धरी करतार ॥ ४ ॥
कबीर–आधी साखी शिर कटै, जोरे बिचारी जाय ।
मनहिं प्रतीत न ऊपजे, राति दिवस भरि गाय ॥ ५ ॥
कबीर–राम भजो मन बसि करो, येही बडा अरथ ।
काहे को पढि पढि मरो, कोटिक ज्ञानहि ग्रँथ ॥ ६ ॥
कबीर–एक शब्द में सब कहा, सबही अर्थ विचार ।
भजिये निर्गुन नामकों, तजिये विषै बिकार ॥ ७ ॥
कबीर–कबिरा भूला दगामें, लोग कहैं यह भूल ।
कर्महि बाट बतावहीं, कै भूलत भूला भूल ॥ ८ ॥
कबीर–नौ मन सूत अरुझिया, कबिरा घर घर बारि ।
तिन सुलझाया बापरै, जानी भुक्ति मुरारि ॥ ९ ॥
कबीर–बोल तो अनमोल है, जो कोई जानै बोल ।
हिये तराजू तोलिके, तब मुख बाहर खोल ॥ १० ॥
कबीर–ज्यों आवै त्योंहीं कहै, बोलै नहीं बिचारि ।
हते पराई आतमा, जीभ लेइ तरवारि ॥ ११ ॥
कबीर–बोलै बोल बिचारिकै, बैठै ठौर सँभारि ।

कहै कबीर वा दासकी, कबहुँ न आवै हारि ॥१२॥

कबीर-बोली हमारी पलटिया, या तन याही देश ।
खारी सो मीठी करी, सतगुरुके उपदेश ॥१३॥

कबीर-बोली हमारी पूरबी, बोली लखै न कोय ।
हमरी बोली जो लखै, सो धुर पूरबका होय ॥१४॥

कबीर-कबिरा हम सबकी कहैं, हमरी कही न जाय ।
पूरबकी बातां कहैं, पश्चिम जाय समाय ॥१५॥

अर्थ-पूरब परमेश्वर । पश्चिम पक्ष ।

कबीर-अपनी अपनी सब कहैं, हमरी कहै न कोय ।
हम अपनी आपहि कहैं, करता करै सो होय ॥१६॥

कबीर-आजाको घर अमर है, बेटाके शिर भार ।
तीन लोक नाती ठगा, पण्डित करौ विचार ॥१७॥

टीका-आजा आदि पुरुष । बेटा ईश्वर । भार संसार की उपजन खपति । नाती तीनु गुन । ठगे डहकावै ।

कबीर-चारि चोर चोरी गये, पग पाहनी उतार ।
चारू दर थूनी हनी, पण्डित करौ बिचार ॥१८॥

टीका-चार चोर चतुष्टय अंतःकरण इंद्री पग पाहनी । प्रीति चारूंई थूंनी आंखि कान नाक मुख थूनी । स्थिरता ।

कबीर-गुरु पशु कुल पशु नारि पशु, वेद पशू संसार ।
मानुष सोई जानिये, जाके हृदय विचार ॥ १९ ॥

कबीर-उलटा ज्ञान विचारिके, देखो अपना देश ।
हरदी चून मिलायके, रहै न दूजी लेश ॥२०॥

टीका-उलटा ज्ञान ब्रह्म वारता विचार करना । हरदी आत्मा । चून चिंतावनि

कबीर–कबीरा उलटा ज्ञान का, कैसे करूं बिचार।
अस्थिर बैठा पँथ कटै, चला चली नहिं पार ॥२१॥

टीका–उलटा ज्ञान ब्रह्म वाट। स्थिर बैठना संसारसे हारना। पंथ चौरासी।

कबीर–सोइ अक्षर सोई भनै, सोई जन जीवंत।
अकिलमन्द कोइक मिलै, अमिमहारसहिं पिवंत२२॥

कबीर–हाथ पाँव मुख शीश धरि, बेगर बेगर नाम।
कहै कबीर बिचारिकै, तोर नाम कहाँ ठाम ॥२३॥

कबीर–हाथ पाँव मुख शीश धरि, बेगर बेगर नाम।
कहै कबीर बिचारिकै, मोर नाम सब ठाम ॥२४॥

अथ असारग्राहीको अंग ॥ ६६ ॥

कबीर–कबिरा कीट सुगंधि तजि, नरक गहै दिन रात।
असारग्राही मानवा, गहै असार जो बात ॥ १ ॥

कबीर–बूटी बाटी पान करि, कहै दुःख जो जाय।
कहै कबीर सुख ना गहै, यही असार सुभाय ॥ २ ॥

कबीर–मच्छी मलकूं गहत है, निर्मल बस्तु जो छाँडि।
कहै कबीर असार मत, माँडि रहा मन माँडि ॥३॥

कबीर–आटा तजि भूसा गहै, चलनी देखु निहारि।
कबीर सार जो छांड़िके, गहै असार असार ॥ ४ ॥

कबीर–पापी पुण्य न भावई, पापहिं बहुत सुहाय।
माखी सुगंध परहरै, जहां दुर्गंधि तहां जाय ॥ ५ ॥

कबीर–रस छांड़ि छोही गहै, कोलू परगट देख ।
गहै असार असार को, हृदये नाहिं विवेक ॥ ६ ॥

कबीर–दूध त्यागि रक्त गहै, लगी पयोधर जोक ।
कहै कबीर असार मत, लक्ष न राखै कोक ॥ ७ ॥

कबीर--निर्मल छाड़ै मल गहै, जनम असारी खोय ।
कहै कबीरा सार तजि, आपुन गये बिगोय ॥ ८ ॥

अथ सारग्राहीको अंग ॥ ६७ ॥

कबीर–साधू ऐसा चाहिय, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहे, थोथा देइ बहाय ॥ १ ॥

कबीर--सत संगतिं है सूप ज्यों, त्यागै-फटकि असार ।
कहै कबीर हरि नाम लै, परसै नाहिं बिकार ॥ २ ॥

कबीर–पहलै फटकै छाजकै, थोथा सब उड़िजाय ।
उत्तम भांडै पाइये, फटकंता ठहराय ॥ ३ ॥

कबीर–वसुधा वन बहु भांति है, फूलै फूल अगाध ।
मिष्ट सुवास कबिरा गहै, विषम गहे कोइ साध ॥ ४ ॥

कबीर–औगुन को तो ना गहै, गुनहींको ले बीन ।
घट घट महकै मधुप ज्यों, परमातम लै चीन ॥ ५ ॥

कबीर–कबिरा सब घट आतमा, सिरजी सिरजन हार ।
राम कहै सो राम सम, रहता ब्रह्म बिचार ॥ ६ ॥

कबीर–क्षीर रूप हरि नाम है, नीर रूप व्यवहार ।

हंस रूप कोइ साधु है, तत्त्वका छानन हार ॥ ७ ॥
कबीर--चुंबक काढ़ै सार कूं, जोरे मिला है रेत ।
साधू काढे जीवको, उर अंतर के हेत ॥ ८ ॥
कबीर–पारा कंचन काढ़िलै, जोरि मिलावै आन ।
कहै कबीरा सार मत, परगट किया बखान ॥ ९ ॥
कबीर–रक्त छाँड़ि पै क्यों गहै, जोंरे गऊका बच्छ ।
औगुन छांड़ि गुनही गहै, सारगराही लच्छ ॥१०॥

अथ पीवपिछानको अंग ॥ ६८ ॥

कबीर–अविगति पीसै पीसना, गौसा बिनै खुदाय ।
निरंजन तो रोटी करै, गैबी बैठा खाय ॥ १ ॥
कबीर–अक्षै पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार ।
त्रिदेवा शाखा भये, पात भया संसार ॥ २ ॥
कबीर--तीन देवको सब कोइ ध्यावै, चौथा देवका मरम न पावै
चौथा छांडि पँचम धावै, कहै कबीर सो हमरे आवै ३
कबीर–तीन गुनन की भक्ति में, भूलि परचौ संसार ।
कहै कबीर निज नाम बिन, कैसे उतरै पार ॥४॥
कबीर–जो ओंकार निश्चय किया, यह कर्त्ता मति जानि ।
सांचा शब्द कबीर का, परदा माहिं पहिंचानि ॥५॥
कबीर–हरा होय सूखै सही, यों त्रिगुन बिस्तार ।
प्रथमहिं ताकों सुमिरिये, जाको सकल पसार ॥६॥
कबीर–अलख अलख सब कोउ कहै, अलख लखै नहिं कोय।

अलख लखा जिन सब लखा, लखा अलख नहिं होय ७

कबीर-लखने हारे लखलिया, जाको है गुरुज्ञान ।
शब्द सुरति के अन्तरे, अलख पुरुष निर्बान ॥८॥

कबीर-हम तो लखा तिहुँ लोकमें, तुम क्यों कहो अलेख ।
सार शब्द जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख ॥ ९ ॥

कबीर-कथत कथत युग थाकिया, थाकी सबै खलक ।
देखत नजर न आइया, हरिके कहा अलक ॥१०॥

कबीर-बेचूने जग राँचिया, साहब नूर निनार ।
आखिर केरे वक्त को, किसका करै दीदार ॥११॥

कबीर-तीन लोक सब राम जपत है, जान मुक्ति को धाम ।
रामचन्द्र वसिष्ठ गुरु किया, तिन कहि सुनायो नाम १२

कबीर-जगमें चारों राम हैं, तीन राम व्यवहार ।
चौथा राम निज सार है, ताका करो विचार ॥१३॥

कबीर-एक राम दशरथ घर डोलै ।
एक राम घट घट में बोलै ॥

कबीर-एक रामका सकल पसारा ।
एक राम त्रिभुवन ते न्यारा ॥ १४ ॥

कबीर-कौन राम दशरथ घर डोलै ।
कौन राम घट घटमें बोलै ॥

कबीर-कौन राम का सकल पसारा ।
कौन राम त्रिभुवन ते न्यारा ॥१५॥

कबीर–आकार दशरथ घर डोलै ।
निराकार घट घटमें बोलै ॥
कबीर–बिंदु रामका सकल पसारा ।
निरालम्ब सबहीतें न्यारा ॥१६॥
कबीर–राम कृष्ण अवतार हैं, इनको नाहीं मांड ।
जिन साहब संसार किया, सो किनहु न जनम्यां रांड १७
कबीर–जाकी थामी मांड है, ताकी करहू सेव ।
जो थापा है मांडका, सो नहीं हमारा देव ॥१८॥
कबीर–रहै निराला मांडते, सकल मांड तिहिं मांहिं ।
सेव कबीरा तासुकूं, दूजा सेवै नाहिं ॥ १९ ॥
कबीर–संपुट माहिं समाइया, सो साहब नहिं होय ।
सकल मांड में रमि रहा, मेरा साहब सोय ॥२०॥
कबीर–साहिब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय ।
दूजा साहब जो कहूँ, साहब खरा रिसाय ॥ २१ ॥
कबीर–जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप ।
पुहुप बास तैं पातला, ऐसा तत्त्व अनूप ॥ २२ ॥
कबीर–चार भुजाके भजनमें, भूलि परे सब संत ।
कबिरा सुमिरै तासु को, जाके भुजा अनंत ॥२३॥
कबीर–निबल सबल जो जानिकै, नाम धरा जगदीश ।
कहै कबीर जन्मे मरै, ताहि धरूं नहिं सीस ॥२४॥
कबीर–जन्म मरनसे रहित है, मेरा साहब सोय ।

बलिहारी उस पीवकी, जिन सिरजा सब कोय॥२५॥

कबीर–समुद्र पाटि लंका गये, सीता को भरतार।
ताहि अगस्त मुनि अचै गयो, इनमें को करतार॥२६॥

कबीर–गिरवर धारयो कृष्णजी, द्रोणागिरि हनुमंत।
शेष नाग सब सृष्टि सहारी, इनमेंको भगवंत॥२७॥

कबीर–काटे बंधन विपति में, कठिन किया संग्राम।
चीन्हों रे नर प्राणियां, गरुड बडो की राम॥२८॥

कबीर–कह कबीर चित चेतहू, शब्द करौ निरुवार।
रामहि कर्ता कहत हैं, भूलि परयो संसार॥२९॥

कबीर–राम कृष्णको जिन किया, सो तो करता न्यार।
अंधा ज्ञान न बूझई, कहै कबीर बिचार॥३०॥

कबीर–जाहि रोग उत्पन्न भया, औषधि देइ जो ताहि।
वैद्य ब्रह्म बाहर रहा, भीतर धसा जो नांहि॥३१॥

कबीर–असर रोग उत्पति भया, अवतार औषधि दीन्ह।
कहै कबीर या साखि को, अर्थ जो लीजौ चीन्ह ३२

कबीर–कबिरा कारज भक्ति के, भुक्तिहि दीन्ह पठाय।
कहै कबीर बिचारिके, ब्रह्म न आवे जाय॥३३॥

अथ विश्वासको अंग॥ ६९॥

कबीर–भूँखा भूँखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भाड़ा गढ़िया मुख दिया, सोही पूरन योग॥ १॥

कबीर–रचन हार को चीन्ह कै, खावे को क्या रोय।

दिल मंदिर में पैसि कै, तानि पछौरा सोय ॥२॥

कबीर–सिरजन हारे सिरजिया, आटा पानी लौन ।
देनेहारा देत है, मेटन हारा कौन ॥ ३ ॥

कबीर–जो कलपै तो दूरि है, अन कलपै है सोय ।
सतगुरु मेटी कल्पना, सहजै होय सो होय ॥ ४ ॥

कबीर–साईं इतना दीजिये, जितना कुटुंब समाय ।
तो मैं भूँखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥ ५ ॥

कबीर–राम नाम करि बहु डरो, बाहौ बीज अघाय ।
खंड ब्रह्मण्ड सूखा परै, तऊ न निष्फल जाय ॥६॥

कबीर–चिंतामनि चितमें बसै सोई चितमें आनि ।
बिना प्रेम चिन्ता करै, यह मूरख की बानि ॥७॥

कबीर–कबिरा क्या मैं चिन्तहूं, मम चिंता क्या होय ।
आपनि चिन्ता हरि करै, चिन्ता मोहिं न कोय॥८॥

कबीर–कर्म करीमाँ लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय ।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो शिर पटकै कोय ॥ ९ ॥

कबीर–चिंता न करु अचिन्त रहु, देनहार समरत्थ ।
पसू पखेरू जंतु जिव, तिनकी गाँठि न गरत्थ॥१०॥

कबीर–कर्म करीमाँ लिखि रहा, नर शिर भाग अभाग ।
जो कबहूँ चिंता करै, तोउ न आगै आग ॥११॥

कबीर–हरिजन गांठि न बांधहीं, उदर समाना लेय ।
आगे पीछे हरि खड़ा, जब माँगै तब देय ॥ १२ ॥

कबीर–अंडा पालै काछबी, बिन थन राखै पोक।
यों कर्ता सबकी करै, पालै तीनहु लोक ॥ १३ ॥
कबीर–पौ फाटी पगरा हुआ, जागे जीवा जून।
सब काहूको देत है, चोंच समाना चून ॥ १४ ॥
कबीर–राम नाम सों दिल मिला, यमसों परा दुराय।
मोहिं भरोसा इष्टका, बंदा नरक न जाय ॥ १५ ॥
कबीर–जाके मन विश्वास है, सदा गुरू है संग।
कोटि काल झकझोलही, तऊ न होय चितभंग ॥१६॥
कबीर–खोज पकरि विश्वास गहु, धनी मिलैंगे आहि।
अजया गज मस्तक चढ़ी, निरभय कोंपल खाय ॥१७॥
कबीर–पंडल पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास।
एक नाम सींचा अमी, फल लागा विश्वास ॥ १८ ॥
कबीर–पद गावै लौलीन है, कटै न संशय पास।
सब पिछोरै थोथरा, एक बिना विश्वास ॥ १९ ॥
कबीर–गाया जिन पाया नहीं, अन गाये ते दूरि।
जिन गाया विश्वास गहि, तासों राम हजूरि ॥२०॥
कबीर–गावनहीमें रोवना, रोवनहीमें राग।
इक बनहीमें घर करै, इक घरही बैराग ॥ २१ ॥
कबीर–घटमें ज्योति अनूप है, रिज्क मौत जिव साथ।
कहा सार है मनुषका, कलम धनीके हाथ ॥२२॥
कबीर–सांई दीया सहजमें, सोई रिज्क हलाल।

हैवाँ सबै हराम है, तजि संशय जिय साल ॥२३॥

कबीर–सबते भली मधुकरी, भांति भांतिका नाज ।
दावा किसहूका नहीं, बिना बिलायत राज ॥२४॥

कबीर--जाके दिलमें हरि बसै, सो जन कलपै काहि ।
एक लहरि समुद्रकी, दुख दरिद्र बहि जाहि ॥२५॥

कबीर--आगे पीछे हरि खडा, आप सहारै भार ।
जनको दुःखी क्यों करै, समरथ सिरजनहार ॥२६॥

कबीर–भक्त भरोसे रामके, निधरक ऊंची दीठ ।
तिनकों करम न लागई, राम ठकोरी पीठ ॥२७॥

कबीर--सौदा कीजै राम सों, भरिये गून हलाय ।
जा कबहूँ टांड़ा लुटैं, पूजो बिलय न जाय ॥२८॥

कबीर–राखनहारा राम हैं, जाय जंगल में बैठि ।
हरि कोपे नहिं ऊबरै, सात पताले पैठि ॥२९॥

कबीर--डोरी लागी भय मिटा, मन पाया विश्राम ।
चित चहूंटा राम सों, याही केवल धाम ॥३०॥

कबीर–विश्वासी होय हरि भजै, लोहा कंचन होय ।
राम भजैं अनुरागतैं, हरष शोक नहिं दोय ॥३१॥

अथ धीरजको अंग ॥ ७० ॥

कबीर–धीरा ह्वै धमका सहै, ज्यों अहरन शिर घाव ।
मेवा पर्वत होय रहै, इत उत कहूँ न जाव ॥ १ ॥

कबीर–धीरै धीरै रे मना, धीरै सब कछु होय ।

माली सींचै केवरा ऋतु आये फल होय ॥ २ ॥
कबीर–कबिरा धीरजके धरे, हस्ती सवामन खाय ।
टूक एकके कारनें, श्वान घरै घर जाय ॥ ३ ॥
कबीर–कबिरा भेरैं बैठिके, भैचक्र मना न जोय ।
बड़नका भय छांड़ि दे, करता करै सो होय ॥ ४ ॥

अथ विरक्ताईको अंग ॥ ७१ ॥

कबीर–कपास विनूठा कापडा, कदे सुरंग न होय ।
कबिरा त्यागो ज्ञान करि, कनक कामिनी दोय ॥१॥
कबीर–चित्त चैतनमें गरक रह्यो जागि न देख्यो मित्त।
कहां कहां सल पारिहो, गल बल शहर अनित्त ॥२॥
कबीर–कबीर वाजनदे वैजन्त्री, जग जंत्री ना छेर ।
तुझे विरानी क्या परी, आपनि आप निबेर ॥ ३ ॥
कबीर–कबिरा हमरा कोइ नहीं, हम काहू के नाहिं ।
पारे पहुंची नाव ज्यों, मिलिके बिछुरी जाहिं ॥ ४ ॥
कबीर–आज कालके लोग हैं, मिलिकै बिछुरी जाहि ।
लाहा कारण आपने, सोगंद रामको खांहि ॥ ५ ॥
कबीर--कबिरा सब जग हेरिया, मेलेउ कंध चढाय ।
हरि बिन अपना कोइ नहीं, सब देखा ठोकि बजाय६॥
कबीर–नीर पिलावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि ।
तृषावंत जो होयगा, पीवैगा झखमारि ॥ ७ ॥
कबीर–खलक मिला खाली रहा, बहुत किया बकवाद ।

बांझ झुलावै पालना, तामें कौन सवाद ॥ ८ ॥

कबीर–निसरा पै बिसरा नहीं, तौ निसरा ना काहिं ।
पहली खाय उखालिया, सो फिरि खाना नाहिं ॥९॥

कबीर--जो विभूति साधुन तजी, ताहि विभूति लपटाय ।
ज्यों बवन करि डारिया, श्वान स्वाद करि खाय१०॥

कबीर--राम बिना बेकाम है, छप्पन भोग बिलास ।
कहाँ इंद्रको बैठनो, कहाँ बैकुंठ को बास ॥ ११ ॥

कबीर--मन फाटे चित ऊचटे, नैना नाहिं समाय ।
पलकाँकी टाटी दई, टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥१२॥

कबीर–बड़ा बड़ाई ना तजै, छोटा बहुत इतराय ।
ज्यों प्यादा फरजी भया टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥१३॥

कबीर–मन मानिक जब ऊचटे, नेक नहीं ठहराय ।
जो कंचनकी भूमि है, तो हरियल धरै न पांय ॥१४॥

कबीर–धरती फाटै मथ मिलै, कपड़ा फाटै और ।
तन फाटै को औषधी, मन फाटै नहिं ठौर ॥१५॥

कबीर–मेरे मनमें परि गई, ऐसी एक दरार ।
फाटा फटिक पषान ज्यों, मिलै न दूजी बार॥१६॥

कबीर–मन फाटै बायक बुरै, मिटै सगाई साक ।
जैसे दूध तिवासको, उलटि हुआ जो आक ॥१७॥

कबीर–चंदन भाँगा गुन करै, जैसे चोली पान ।
दोय जो भाँगा ना मिलै, इक मोती इक मान॥१८॥

कबीर–मोती भाग्यो बेधतां, मन भाग्यो कूबोल ।
बहुत सयाना पचि गया, परिगई गांठी गोल ॥१९॥
कबीर–बैरागी बिरकत भला, गिरा परा फल खाय ।
सरिता को पानी पिये, गृही द्वार ना जाय ॥२०॥
कबीर–गृहस्थ द्वारें जायके, उदर समाना लेइ ।
पीछे लागे हरि फिरै, जब चाहै तब देइ ॥२१॥

अथ सामर्थाईको अंग ॥ ७२ ॥

कबीर–साहब सों सब होत है, बंदे तें कछु नाहिं ।
राई ते पर्वत करै, पर्वत राई माहिं ॥ १ ॥
कबीर–बहन बहता स्थिर करै, थिरता करै बहैन ।
साहब हाथ बडाइया, जिस भावै जिस दैन ॥ २ ॥
कबीर–हरिसा समरथ कोइ नहीं, गरुआ गहर गँभीर ।
औगुन छांडे गुन गहै, पनक उतारै तीर ॥३॥
कबीर–धनि धनि सांई तू बड़ा, तेरी अनूपम रीति ।
सकल भवनपति सांइयां, ह्वै कै रहै अतीति ॥४॥
कबीर–सांई मैं तुझ बाहरा, कौडीहू नहिं पाँव ।
जो सिर ऊपर तुम धनो, महँगे मोल बिकाँव ॥ ५ ॥
कबीर–बाटरिया दूभर भई, मत कोइ काइर होय ।
जिन यह भार उठाइया, निरबाहैगा सोय ॥ ६ ॥
कबीर–हाथी अटक्यो कीचमें, काढै को समरत्थ ।
की बल निकलै आपने, कि सांई पसारै हत्थ ॥ ७ ॥

कबीर—ना कछु किया न करि सका, ना करने जोग शरीर ।
जो कछु किया सो हरि किया, ताते भया कबीर॥ ८ ॥
कबीर—ना कछु किया न करि सका, ना कछु करना योग ।
मैं मेरी जो ठानिकै, दूजी थापे लोग ॥ ९ ॥
कबीर—जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं ।
कहूँ कहो जो मैं किया, तुमहीं थे मुझ मांहिं ॥१०॥
कबीर—कीया कछू न होत है, अन कीया ही होय ।
कीया जो कछु होय तो, कर्ता औरे कोय ॥११॥
कबीर—जिस नाहिं कोई तिसहि तू, जिस तू तिस सब होय ।
दरगह तेरी सांईया, मेटि सकै नाहिं कोय ॥ १२ ॥
कबीर--एक खड़ा हो ना लहै, इक ऊभाही बिललाय ।
समरथ मेरा सांईया, सूता देइ जगाय ॥ १३ ॥
कबीर--औगुनहारा गुन नहीं, गनका बड़ा कठोर ।
ऐसा समरथ सांईया, ताहि लँघावो ठौर ॥ १४ ॥
कबीर—तुम तौ समरथ सांइया, दृढ़ करि पकरो बांहि ।
धूरिहीलै पहुँचाइहो, जनि छाँडो मग मांहि ॥१५॥
कबीर—समरथ धोरी कंध दै, रथको दै पहुँचाय ।
मारग मांहि न छांडिये, पिय बिन बिरद लजाय१६॥
कबीर—इत कूआ उत बावडी, इतउत थाह अथाह ।
दुहुँ दिशि सो फनाफन करै, समरथ पार निवाह१७
कबीर—घट समुद्र लखि ना परै, उठै जो लहरि अपार ।

दिल दरिया समरथ विना, कौन उतारै पार ॥१८॥

कबीर-बुरा जो देखनमैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजों आपना, तो मुझसा बुरा न जोय१९

कबीर--कबिरा सबते हम बुरे, हमते भला सब कोय ।
जिन ऐसा करि बूझिया, मित्र हमारा सोय ॥ २० ॥

कबीर-धरती सब कागद करूं, लेखक सब बनराय ।
सात समुन्दर मसि करूं, हरि गुन लिखा न जाय २१

कबीर-अबरनकों क्या बरनिये, मोपै बरनि न जाय ।
अबरन बरने बाहरी, करि करि थका उपाय ॥२२॥

कबीर-मुझमें इतनी शक्ति क्या, गाऊं गला पसार ।
बंदेको इतनी घनी, परा रहौं दरबार ॥ २३ ॥

कबीर-जबका माई जनमिया, किते न पाया सुक्ख ।
डारी डारी मैं फिरों, पात पात में दुःख ॥ २४ ॥

कबीर-कबिरा मैं तौ तबहि डरौं, जो मुझही में होय ।
मीच बुढापा आपदा, सब काहूको जोय ॥ २५ ॥

कबीर-सात द्वीप नवखंडमें, तीन लोक ब्रह्मंड ।
कहै कबीर सबको लगे, देह धरेको दंड ॥ २६ ॥

कबीर-देह धरेको दंड है, सब काहूको होय ।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगते रोय ॥२७॥

कबीर-भूप दुखी अवधूत दुखि, दुखी रंक बिपरीत ।
कह कबीर ये सब दुखी, सुखी संत मन जीत ॥२८॥

कबीर-झलवां वैझल दाहने, झलहींमें व्यवहार ।
आगे पीछे झल जलै, राखै सिरजन हार ॥ २९ ॥

कबीर-सांई मेरा बनियां, सहज करै व्यवहार ।
विन डांडी विन पालड़े, तौलै सब संसार ॥ ३० ॥

कबीर-वारी हरिके नाम पर, कीया राई लौन ।
जिसे चलावै पंथ तू, तिसे भुलावै कौन ॥ ३१ ॥

अथ कुशब्दको अंग ॥ ७३ ॥

कबीर-कुबुधि कमाना चढि रहै, कुटिल वचनका तीर ।
भरि भरि मारै कानमें, सालै सकल शरीर ॥ १ ॥

कबीर-कुटिल वचन सबतें बुरा, जारि करै सब छार ।
साधु वचन जल रूप है, बरसै अमृत धार ॥ २ ॥

कबीर-करगडण दुर्जन बचन, रहै संत जन टारि ।
बिजुली परै समुद्रमें, कहा सकैगी जारि ॥ ३ ॥

कबीर-शीतलता तब जानिये, समता रहै समाय ।
बिष छांडै निर्विष रहै, सब दिन दूखा जाय ॥ ४ ॥

कबीर-कबिरा शीतलता भई, उपज्यो तब ब्रह्मज्ञान ।
जिहिं वैसंदर जग जलै, सो मेरै उदक समान ॥५॥

कबीर-कबिरा कुशब्द न बोलिये, सज्जन बिरचै चीन ।
गंगा जल शीतल भया, पवत फोरा तीन ॥ ६ ॥

कबीर-जिह्वामें अमृत बसै, जो कोइ जानै बोलि ।
विष वासिकका ऊतरै, जिह्वा तनै हिलोलि ॥ ७ ॥

कबीर-जिह्वा शक्कर दूध जिभ, जिह्वा प्यारी जागि ।
जिह्वा साजन रलि मिलै, जिह्वा लावै आगि ॥८॥

कबीर-सहज तराजू आनिकै, सब रस देखा तौलि ।
सब रस मांही जीभरस, कोई जानै बोलि ॥ ९ ॥

कबीर-बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोलि ।
हिये तराजू तौलिकै, तब मुख बाहर खोलि ॥१०॥

अथ सुशब्दको अंग ॥ ७९ ॥

कबीर-कबिरा शब्द शरीरसे, बिन गुन बाजै तांति ।
बाहर भीतर रमिरहा, ताते छूटी भ्रांति ॥ १ ॥

कबीर-संत संतोषी सर्वदा, शब्दहिं भेद विचार ।
सतगुरु के परतापसे, सहज शील मत सार ॥ २ ॥

कबीर-सरस सरजन बेधिया, सरबिन गम कछु नाहिं ।
लागी चोट जो शब्दकी, करक करेजे मांहिं ॥३॥

कबीर-सारा बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और ।
लागी चोट जो शब्दकी, रहा कबीरा ठौर ॥ ४ ॥

कबीर-लागी लागी क्या कहै,लागी नाहीं एक ।
लागी तबहीं जानिये, परै करेजे छेक ॥ ५ ॥

कबीर-लागी लागी क्या करै, लागत रही लगार ।
लागी तबही जानिये, निकसी जाय दुसार ॥ ६ ॥

कबीर-लागी लागी क्या करै, लागत रही लगाहि ।
लागी तबै सराहिये, उठै कराहिं कराहि ॥ ७ ॥

कबीर—विन शर और कमान बिन, मारा है जो कसीस ।
बाहर घाव न दीसई, बेधा नख सिख सीस ॥ ८ ॥
कबीर—ऐसा मारा शब्दका, मुआ न दीसै कोय ।
कहै कबीर सो ऊबरे, धड़ पर सीस न होय ॥ ९ ॥
कबीर—सायर माहीं शर गया, मच्छी खाया सोय ।
सो मच्छी तरुवर चढी, बूझै बिरला कोय ॥ १० ॥

टीका—सायर शरीर । शर शब्द । मच्छो सुरति । तरुवर कर्ता ।

कबीर—शब्दे मारा मरि गया, शब्दे छांडा राज़ ।
जिन २ शब्द विचारिया सरिया तिनका काज ॥११॥
कबीर—बीजक बित्त बताय दै, जो धन गुप्ता होय ।
शब्द बतावै ब्रह्मको, चीन्हे बिरला कोय ॥ १२ ॥
कबीर—शब्द बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोलि ।
हीरा तौ दामों मिलै, शब्दहिं मोल न तोल ॥१३॥
कबीर—शब्द कहै सो कीजिये, बहुते गुरू लबार ।
अपने अपने लोभको, ठौर ठौर बटवार ॥ १४ ॥
कबीर—शब्द न करै मुलाहिजा, शब्द फिरै चहुँधार ।
आपा पर जब चीन्हिया, तब गुरु शिष व्यवहार ॥१५॥
कबीर—शब्द हमारा एक है, जब तब कीजो यादि ।
अंत फलैगी मांहिली, ऊपरकी सब बादि ॥ १६ ॥
कबीर—शब्द हमार हम शब्दके, शब्द ब्रह्मका कूप ।
जो चाहै दीदारको, तो परख शब्दका रूप ॥१७॥
कबीर—शब्द हमार हम शब्दके, शब्दहिं लेहु परखि ।

जो तू चाहै मुक्तिको, अब मति जाहु सरक्कि ॥१८॥

कबीर–शब्द दुराया ना दुरै, कहूं जो ढोल बजाय ।
जो जन होयगा जौहरी, लैहे शीश चढ़ाय ॥१९॥

कबीर–शब्द बिना सुरति आँधरी, ना जानूँ कित जाय ।
द्वार न पावै शब्द का, फिरि फिरि भटका खाय ॥२०॥

कबीर–शब्द पाय सुरति राखै, सो पहुँचै दरबार ।
कहै कबीर तहाँ देखई, जहाँ बैठे पुरुष हमार ॥२१॥

कबीर–औरै दारू सब करी, पै स्वभाव की नाँहि ।
सो दारू सतगुरु करी, रहै शब्दके माँहि ॥ २२ ॥

कबीर–एक शब्द गुरुदेवका, जाका अनंत बिचार ।
पण्डित थाके मुनिजना, वेद न पावै पार ॥ २३ ॥

कबीर–मैं कलिका कुतवाल हौं, लेहू शब्द हमार ।
जो या शब्दहिं मानिहैं, सो उतरै भौ पार ॥२४॥

कबीर–शब्दोपदेश जो मैं कहूँ, जो कोई मानै संत ।
कहैं कबीर विचारिके, ताहि मिलाऊं कंत ॥२५॥

कबीर–मता हमारा मंत है, हमसा होय सो लेय ।
शब्द हमारा कल्प धन, जो चाहै सो देय ॥२६॥

कबीर–रैन समाना भानुमें, भानु अकाशे माहिं ।
अकाश समाना शब्द में, शब्द परे कछु नाहिं॥२७॥

कबीर–शब्द कहांते उठत है, कहांको जाय समाय ।
हाथ पांव वाके नहीं, कैसे पकरे जाय ॥ २८ ॥

कबीर–नाभि कमलते उठत है, शून्यहि जाय समाय ।
हाथ पांव वाके नहीं, सुरति ते पकरा जाय ॥२९॥

कबीर–शब्द कहांते आइया, कहां शब्दका भाव ।
कहां शब्दका शीश है, कहां शब्दका पांव ॥३०॥

कबीर–शब्द ब्रह्माण्डते आइया, मध्य शब्दका भाव ।
ज्ञान शब्दका शीश है, अज्ञान शब्दका पांव ॥३१॥

कबीर–नाद नहीं था बिंदु नहीं था, कर्म नहीं था काय ।
अलख पुरुषके जीभ नहीं थी,शब्द कहां तें आय३२॥

कबीर–नाद नहीं था, बिंदु नहीं था, कर्म नहीं था काय ।
अलख पुरुषके जीभ नहीं थी,शब्द शून्यतें आय३३॥

कबीर–कौन शब्दकी नावरी, कौन शब्द असवार ।
कौन शब्दकी डोर है, कौन उतारै पार ? ॥३४॥

कबीर–सत्य शब्दकी नावरीं, अकह शब्द असवार ।
सुरति शब्दकी डोर है, तुझे उतारै पार ॥ ३५ ॥

कबीर–शब्द शब्द सब कोइ कहै, शब्दके हाथ न पांव।
एक शब्द औषधि करै, एक शब्द करै घाव ॥३६॥

कबीर–शब्द शब्द सब कोइ कहै शब्दके हाथ न पांव ।
सार शब्द औषधि करै, और शब्द करै घाव ॥३७॥

कबीर–शब्द शब्द बहु अंतरा, शब्द सारकों सीर ।
शब्द शब्दका खोजना, शब्द शब्दका पीर ॥३८॥

कबीर--शब्द शब्द बहु अंतरा, सार शब्द चित देय ।

जा शब्द साहब मिलै, सोइ शब्द गहि लेय ॥३९॥

कबीर–शब्द शब्द सब कोइ कहै, शब्दका करौ बिचार ।
एक शब्द शीतल करै, एक शब्द दे जार ॥ ४० ॥

कबीर–एक शब्द सुख खानि है, एक शब्द दुख रासि ।
एक शब्द बन्धन कटै, एक शब्द गल फांसि ॥४१॥

कबीर–सबको सुख दै शब्दका, अपनी अपनी ठौर ।
जा घटमें साहिब बसै, ताहि न चीन्हें और ॥४२॥

कबीर–शीतल शब्द उचारिये, अहं आनिये नाहिं ।
तेरा प्रीतम तुझहिमें, दुशमनभी तुझ माहिं ॥४३॥

कबीर–कोई आवै भाव लै, कोई आवै अभाव ।
साध दोऊको पोखि दे, भाव न गिनैं अभाव ॥४४॥

कबीर–हरिजन सोई जानिये, जिह्वा कहै न मार ।
अष्ट प्रहर चितवत रहै, गुरुका ज्ञान बिचार ॥४५॥

कबीर–शब्द भेद तब जानिये, रहै शब्दके माहिं ।
शब्दैं शब्द प्रगट भया, दूजा दीखै नाहिं ॥ ४६ ॥

कबीर–खोजी हूआ शब्दका, धन्य संत है सोय ।
कहै कबीरा शब्दगाहि, कबहुँ न जाय बिगोय ॥४७॥

कबीर–साराहि शब्दहिं बिचारिये, सोई शब्द सुख देय ।
अन समझा शब्द कहै, कछू न लाहा लेय ॥४८॥

कबीर–टीला टीली ढाहिकै, फोरि करै मैदान ।
समझ सफा करता चलै, सोई शब्द निर्बान ॥४९॥

कबीर–शब्दका गुरु शब्द है, कायाका गुरु काय ।
भक्ति करौ निष्कर्म है, सतगुरु यों समुझाय ॥५०॥
कबीर–सोई शब्द निजसार है, जो गुरु दिया बताय ।
बलिहारी वा गुरूकी, शिष्य विगोय न जाय ॥५१॥
कबीर–सार शब्दकी यही बड़ाई, जैसे चुंबन भाय ।
बिना शब्द नहिं ऊबरै, केता करौ उपाय ॥ ५२ ॥

अथ दुबिधाको अंग ॥ ७८ ॥

कबीर–दुबिधा जाके दिल बसै, दयावंत जिव नाहिं ।
कबिरा त्यागू ताहिकों, भूलि देउ जनि बाहिं ॥१॥
कबीर–राम नाम कडुआ लगै, मीठा लागै दाम ।
दुबिधामें दोऊ गया, माया मिली न राम ॥ २ ॥
कबीर–हृदयेमें है आरसी, मुख देखा नहिं जाय ।
मुख तौ तबहीं देखई, दुबिधा देइ बहाय ॥ ३ ॥
कबीर–चींटी चावल लै चली, बिचमें मिलि गई दारि ।
कहै कबीर दोउ ना मिलै, एकले दूजी डारि ॥ ४ ॥
कबीर–कै तू लोरै मुकदमी, कै तू साहिब लोर ।
दो दो घोरा मति चढ़ै, तेरा घर है चोर ॥ ५ ॥
कबीर–आगा पांछा दिल करै, सहजा मिलै न आय ।
सो बासी यमलोकका, बांधा यमपुर जाय ॥ ६ ॥
कबीर–तकत तकावत रहि गया, सका न बेझी मार ।
सबै तीर खाली परा, चला कमाना डार ॥ ७ ॥

कबीर–बेझा मारै स्थिर रहै, खरा महीना खाय ।
साहबके दरबारते, भागि न कबहूँ जाय ॥ ८ ॥

अथ ऐक्यताको अंग ॥ ७६ ॥

कबीर–अलख इलाही एक है, नाम धराया दोय ।
कहै कबीर दो नाम सुनि, भरम परो मति कोय॥ १॥
कबीर–राम रहीमा एक है, नाम धराया दोय ।
कहै कबीर दो नाम सुनि,भर्मि परौ मति कोय ॥२॥
कबीर–कृष्ण करीमा एक है, नाम धराया दोय ।
कहै कबीर दो नाम सुनि, भर्मि परौ मति कोय॥३॥
कबीर–काशी काबा एक है, एकै राम रहीम ।
मैदा इक पकवान बहु, बैठि कबीरा जीम ॥ ४ ॥
कबीर–एक वस्तुके नाम बहु, लीजै वस्तु पहिचान ।
नाम पक्ष नहिं कीजिये, सार तत्त्व ले जान ॥ ५ ॥
कबीर–नाम अनन्त जो ब्रह्मका, तिनका वार न पार ।
मन मानै सो लीजिये, कहै कबीर बिचार ॥ ६ ॥
कबीर–सब काहूका लीजिये, सांचा शब्द निहार ।
पक्षपात ना कीजिये, कहै कबीर बिचार ॥ ७ ॥
कबीर–राम कबीरा एक है, दूजा कबहु न होय ।
अंतर टाटी कपटकी, ताते दीखे दोय ॥ ८ ॥
कबीर–राम कबीरा एक है, कहन सुननको दोय ।
दो करि सोई जानई, सतगुरु मिला न होय ॥ ९ ॥

कबीर--हरिका बना स्वरूप सब, जेता यह आकार ।
अक्षर अर्थ यों भाषिये, कहै कबीर बिचार ॥१०॥

कबीर--देखनही की बात है, कहनेको कछु नाहिं ।
आदि अंतको मिलि रहा, हरिजन हरिही माहिं॥११॥

कबीर--नगर चैन तब जानिये, जब एकै राजा होय ।
याहि दुराजी राजमें, सुखी न देखा कोय ॥१२॥

कबीर--सबै हमारे एकहैं, जो सुमिरै हरि नाम ।
वस्तु लहो पहिचानिकै, बासन सों क्या काम॥१३॥

अथ पछतावाको अंग ॥ ७७ ॥

कबीर--अच्छा दिन पाछे गया, हरिसों किया न हेत ।
अब पछिताये होत क्या, चिरिया खाया खेत ॥१॥

कबीर--जब रंग था तब ना रंगा, हरि रंग मन मजीठ ।
अब पछिताये क्या हुआ, जब रंग दीन्हीं पीठ॥२॥

कबीर--सुमिरन का संशय रहा, पछितावा मन माहिं ।
कहै कबीरा राम रस, सगरा पीया नाहिं ॥ ३ ॥

कबीर--कबिरा दरदीवान जो, क्योंकर पावै दाद ।
पहली बुरा कमायकै, पीछै करै फरियाद ॥ ४ ॥

अथ कालको अंग ॥ ७८ ॥

कबीर--झूँठा सुखको सुख कही, मानत है मन मोद ।
जगत चबेना कालका, कुछ मूठी कुछ गोद ॥ १ ॥

कबीर--आज कालि पल छिनकमें, मारग मेला हित्त ।

काल चिचाना नर चिड़ा, औजड़ औ चित्त ॥ २ ॥
कबीर–काल चिचाना है खड़ा, तू जाग पियारे मित्त ।
नाम सनेही बाहरा, क्यों तू सोवै निचिंत ॥ ३ ॥
कबीर--सब जग सूता नींद भरि, मोहिं न आवै नींद ।
काल खड़ा है बारनै, ज्यौं तोरन आया बींद ॥४॥
कबीर--आज कहै हरि काल भजु, कालि कहे फिरि कालि।
आज काल्हि करता रहे, औसर जासी चालि ॥५॥
कबीर–ढालै ढूलै दिन गया, ब्याज बढंता जाय ।
ना हरि भजा न खत कटा, काल पहुँचा जाय ॥६॥
कबीर–काल्हि करै सो आज कर, सब सौंज तेरे साथ।
काल्हि काल्हि तू क्या करे, काल्हि कालके हाथ॥७॥
कबीर–काल करै सो आज करु, आज करे सो अब्ब ।
पलमें परलै होयगी, बहुरि करेगा कब्ब ॥ ८ ॥
कबीर–पाव पलककी सुधि नहीं, करै कालका साज ।
काल अचानक मारिहै, ज्यों तीतरको बाज ॥९॥
कबीर–पाव पलक जो दूरहै, मोपै कहो न जाय ।
क्या जानूँ क्या होयगा, पलके चौथे भाय ॥१०॥
कबीर–कबिरा टुग टुग चोघतां, पल पल गई विहाय ।
जीव जंजालो परि रहा, दिया दमामा आय ॥११॥
कबीर–मैं अकेला वह दोजनां, सेरी नाहीं कोय ।
जो यम आगै ऊबरौ, तो जरा बैरी होय ॥ १२ ॥

कबीर–जरा आय जोरा किया, पिय अपना पहिंचानि ।
अंत कछू पछे परै, ऊठत रे खलिहानि ॥ १३ ॥
कबीर–जरा आय जोरा किया, नेनन दीन्ही पीठि ।
आंखों ऊपरि आंगुली, बीख भरै पचिनीठि ॥१४॥
कबीर–जोबन सिकदारी तजी, चला निसान बजाय ।
सिरपर सेत सिरायचा, दिया बुढापै आय ॥१५॥
कबीर–कान लगी सुनहां कहे, कालै मानी हारि ।
राज बिराजा होत है, सकै, तो राम सँभारि ॥१६॥
कबीर–राम कहा जिन कहि लिया, जरा पहूँची आय ।
मंदर लागी द्वार सौं, अब कछु कही न जाय॥१७॥
कबीर–बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये और ।
बिगरा काज सँवारि ले,करि छूटन नाहिं ठौर॥१८॥
कबीर–बिरिया बीती बलघटा, औरौ बुरा कमाय ।
हरिजन छांडा हाथतें, दिन नीराही आय ॥१९॥
कबीर–जरा कुत्ता जोबन शसा, काल अहेरी नित्त ।
दो बैरी बिचि झोंपरा,कुशल कहां सो मित्त॥२०॥
कबीर–कुशलहि कुशल जो पूछतां, जग में रहा न कोय ।
जरा मुई ना भय हुआ, कुशल कहांते होय ॥२१॥
कबीर–घरी जो बाजै राजदर, सुनता है सब कोय ।
आयु घटै जोबन खिसै, कुशल कहांते होय ॥२२॥
कबीर–कै कुशल अन जानके, अथवा नाम जपंत ।

जनम मरन होता नहीं, तो बूझो कुशलंत ॥ २३ ॥

कबीर–कुशल जो पूछै असलकी, आशा लागी लोय ।
नाम बिहूना जग मुआ, कुशल कहांते होय॥२४॥

कबीर––बारी बारी आपनी, चलै पियारे मिंत्त ।
तेरो बारी जीवरा, नियरे आवै नित ॥ २५ ॥

कबीर–माली आवत देखिकै, कलियां करे पुकार ।
फूलो फूली चुनि लई, काल्हि हमारी बार ॥२६॥

कबीर–बढई आवत पेखिके, तरुवर रुदन कराय ।
मैं अपंग संशय नहीं, पक्षी बसते आय ॥ २७ ॥

कबीर–फागन आवत देखिके, बन रोता मन माहिं ।
ऊंची डारी पात था, पीरा ह्वै ह्वै जाहिं ॥ २८ ॥

कबीर–पात जो तरुवरसौं कहै, बिलम्ब न मानैं मोर ।
आई ऋतु जो बसंत की,जहां जावो तहां तोर॥२९॥

कबीर–तरुवर पातसों यौं कहै, सुनो पात एक बात ।
यह घर याही रीति है, इक आवत इक जात॥३०॥

कबीर––पात झरंता यों कहै, सुनु तरुवर बन राय ।
अबके बिछुरे ना मिलैं, दूर परेंगे जाय॥ ३१ ॥

कबीर–कहै पात वा झारसौं, कहा परी अब तोहि ।
ज्यों वा तरुवरही तज्यों,चलौं जान दै मोहि॥३२॥

कबीर–पीपल पान झरंतिया, हँसी आईकौं घेरि ।
याहीं बसिवा होयगा, अपनी अपनी बेरि ॥ ३३ ॥

कबीर–धौंकी दाधी लाकरी, ठाढीकरै पुकार ।
मति बसिपरों लुहारके, जारै दूजीबार ॥३४॥

अर्थ–धौं कर्म । लकरी काया । लुहार काल ।

कबीर–मेराबीर लुहारिया, तू मति जारै मोहि ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहि ॥३५॥

कबीर–जारन हारा भी मुआ, मुआ जलावनहार ।
है है करते भी मुये, कासौं करौं पुकार ॥३६॥

कबीर–जो ऊगे सो अंथवै, फूलै सो कुम्हिलाय ।
जो चुनिये सो ढहिपरै, जामें सो मरिजाय ॥३७॥

कबीर–जो पहरा सो फाटिया, जो खाया सो जाय ।
कबिरा रामानंदका, दीया ही रहिजाय ॥३८॥

कबीर–निधड़क बैठा राम बिन, चेत न करो पुकार ।
यह तन जलका बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥३९॥

कबीर–पानी केरा बुदबुदा, अस मानुषकी जाति ।
देखत ही छिपि जायगा, ज्यों तारा परभाति ॥४०॥

कबीर–कबिरा पांच पखेरुआ, राखा पोख लगाय ।
एक जो आयो पारधी, लेगयो सबै उड़ाय ॥४१॥

कबीर–मंदिर माहीं झमकती, दीपककीसी जोति ।
हंस बटाऊ चलि गया, काढ़ौ घरकी छोति ॥४२॥

कबीर–कबिरा जीवन कछु नहीं, खिन खारा खिन मीठ ।
काल्हि अल्हजा मारिया, आज मसाना दीठ ॥४३॥

कबीर–कबिरा मंदिर आपने, निति उठि करता आलि ।

मरहट देखी डरपता, चौड़े दीया जालि ॥ ४४ ॥

कबीर–परदा रहती पद्मिनी, करती कुलकी कांन ।
छड़ी जो पहुँची कालकी, डेरा हुआ मैदान ॥४५॥

कबीर–मछली दह छूटै नहीं, झीवर मेरा काल ।
जेहि जेहि डाबर घर करों, तहँ तहँ मेले जाल॥४६॥

कबीर–पानी महँकी माछली, क्यों तैं पकरयो तीर ।
कडी खड़की जालकी, आप पहूंचा कीर ॥४७॥

कबीर–हे मतिहीनी माछली, क्यों सूती घन घोरि ।
तेरे कारन कीरकै, लंबी बांटी डोरि ॥४८॥

कबीर–हे मतिहीनी माछली, झीवर मीत कियाय ।
करि समुद्रसों रूठना, छीलर चित्त दियाय ॥४९॥

कबीर–हे मतिहीनी माछली, तैं छीलर माँड़ी आलि ।
डाबरियां छूटै नहीं, सकै तो समुद्र संभालि ॥५०॥

कबीर–मछली फिरि फिरि बाहुरी, ताकि समुदरतीर ।
दरिया भीतर घरकिया, कहा करैगा कीर ॥५१॥

कबीर–आँखडिया रतनालिया, चेजा करै पताल ।
मैं तोहि बूझों माछली, तू क्यों बंधी जाल ॥५२॥

कबीर–तीन लोक पिंजरा भया, पाप पुन्य दोउ जाल ।
सकल जीव सावज भये, एक अहेरी काल ॥ ५३ ॥

कबीर–सूखन लागे केवरा, टूटन लागी डार ।
पानीकी कल जानतो, चला सो सींचन हार ॥५४॥

कबीर–कबिरा जंत्र न बाजई, टूटि गया सबतार ।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावन हार ॥५५॥
कबीर–धूनी धवती रहगई, तब बुझिया अंगार ।
अहरनिका ठमका रहा, जब उठि चला लुहार॥५६॥
अथ–धूनी स्वासा । अँगार इंद्री । अहिरन जिभ्या । लुहार प्रान ।
कबीर–कबिरा हरिनी दूबली, ये हरियाली ताल ।
लाख अहेरी एकजिव, केतिक टारै भाल ॥ ५७ ॥
कबीर–पंथी ऊभा पंथ सिर, बुगचा बांधा पूँठ ।
मरना मुँह आगे खड़ा, जीवनका सब झूँठ ॥ ५८ ॥
कबीर–यह जिव आया दूरतें, जाना है बहु दूरि ।
बिचके बासै बसि गया, काल रहा शिर पूरि॥५९॥
कबीर–कबिरा पगरा दूरि है, बीचि परी है राति ।
ना जानौं क्या होयगा, ऊगंता परभाति ॥ ६० ॥
कबीर–कबिरा गाफिल क्या फिरै, आया काल नजीक ।
कान पकरिकै ले चला, ज्यों अजाको खटीक॥६१॥
कबीर–कबिरा हरिसों हेत कर, कोरे चित्त न लाय ।
बांध्यो बारि खटीकके, ता पशु केतिक आय ॥६२॥
कबीर–साँझपरी दिन अंथिया, बाघन घेरी गाय ।
गाय बिचारी ना मरै, बाघ न भूखा जाय ॥६३॥
टीका–साँझ तो अंत अवस्था । दिन देह। अंथिया अंत हुआ । बाघ काल।
गाय आत्मा । ना मरैं जीव मृतक होय नहीं और बाघ काल हमेशा ग्रासै ॥
कबीर–काल जीवको ग्रासई, बहुत कह्यो समुझाय ।
कहै कबीर मैं क्या कहूँ, देखत नहीं पतियाय ॥६४॥

कबीर–काची काया मन अथिर, थिर थिर करम करंत ।
ज्यों ज्यों नर निधडक फिरै,त्यौं त्यौं काल हसंत ६५

कबीर–विषके बनमें घर किया, सरप रहा लपटाय ।
तिनका डर जीव गहि रहा,जागत रैन बिहाय॥६६॥

कबीर–कबिरा सब सुख राम है, औरहिं दुखकी रासि ।
सुर नर मुनि असुर सुर, परे कालकी फाँसि॥६७॥

कबीर–काल हमारे संग रहै, कस जीवनकी आस ।
दिन दस राम सँभारि लै,जब लगि पिंजरा स्वांस६८॥

कबीर–आठ पहर योंही गया, माया मोहकी आल ।
राम नाम हृदये नहीं, जीति लिया यमजाल ॥६९॥

कबीर–हम जाने थे खाहिंगे, बहुत जमीं बहुमाल ।
ज्योंका था त्योंही रहा, पकरि लैगया काल ॥७०॥

कबीर–चहुँदिशि पाका कोट था, मंदिर नगर मँझार ।
खिरकी खिरकी पाहरू, गज बंधा दरबार ॥७१॥

कबीर–चहुँदिशि तो योद्धा खडे, हाथ लिए हथियार ।
सबही यह तन देखता, काल ले गया मार ॥७२॥

कबीर–आस पास योद्धा खडे, सबै बजावैं गाल ।
मंझ महलतें लै चला, ऐसा परबल काल ॥ ७३ ॥

कबीर–धरती करते एक पग, करते समुन्दर फाल ।
हाथों परबत तोलते, तेभी, खाये काल ॥ ७४ ॥

कबीर–हाथों परबत फाडते, समुदर घूंट भराय ।

ते मुनिवर धरती गले, कह कोई गर्व कराय ॥७५॥

कबीर--ताजी छूटा सहरतें, कसबे परी पुकार ।
दर्वाजा जडाही रहा, निकसि गया असवार ॥७६॥

कबीर--बेटा जाये क्या हूआ, कहा बजावे थाल ।
आवन जावन ह्वै रहा, ज्यौं कीरीका नाल ॥७७॥

कबीर--जाया जाया सब कहै, आया कहै, न कोय ।
जाया नाम जनमका, रहन कहां ते होय ॥ ७८ ॥

कबीर--हम जाये तेभी मुआ, हम भी चलने हार ।
हमरे पीछे पूगरा, तिन भी बांधा भार ॥ ७९ ॥

कबीर--बालपनो भोलै गयो, और जवानी महमंत ।
वृद्धपने आलस भयो, चला जरंते अंत ॥ ८० ॥

कबीर--साथी हमरे चलि गये, हम भी चालन हार ।
कागद में बाकी रही, तातें लागी बार ॥ ८१ ॥

कबीर--काया काठी काल घुन, जतन जतन घन खाय ।
काया मांहीं काल है, काहू मरम न पाय ॥ ८२ ॥

कबीर-संशय काल शरीरमें, विषम काल है दूरि-
जाको कोइ जानै नहीं, जारि करै सब धूरि ॥८३॥

कबीर--जारि बारि मिस्सा करै, मिसि करि करि है छार ।
कहै कबीर कोइला करे, फिरि देहै अवतार ॥८४॥

कबीर--ऐसे सांच न मानई, तो तिलही देखो जोय ।
जारि बारि कोइला करै जमता देखा सोय ॥८५॥

कबीर–संशय खाया सकल जग, संशा किनहु न बद्ध ।
जो बेधा गुरु अक्षरा, तिन संसा चुनि चुनि खद्ध॥८६॥
कबीर–कौन सरोवर पानि बिन, कौन मीच बिनकाल ।
कौन सो परिमल बासबिन, कौन वृक्ष बिन डाल८७॥
कबीर–मान सरोवर पानि बिन, नींद मींच बिन काल ।
ज्ञानसो परिमल बास बिन, सुरति वृक्ष बिन डाल ८८॥
कबीर–घाट जगाती धरमराय, सबका झारा लेय ।
सत्य नाम जापे बिना, उलटि नरकमें देय ॥८९॥
कबीर–जिनके हाथ निशान है, तिन्हे अटकावै कौन ।
पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवागौन॥९०॥
कबीर–घाट जगाती धरमराय, गुरुमुख ले पहिचानि ।
छाप बिना सतनामके, सांकट रहा निदान ॥९१॥
कबीर–गुरु जहाज हम पावनां, गुरुमुख पारि परै ।
गुरु जहाज जाने बिना, रोवै घाट खरै ॥ ९२ ॥
कबीर–खुलि खेलो संसारमें बांधि न सक्के कोय ।
घाट जगाती क्या करै, शिर पर पाट न होय॥९३॥
कबीर–जम न जाय पुकारिया, डंडा दिया डारि ।
संत मवासी ह्वैरहा, फांसि न परै हमारि ॥९४॥
कबीर–जाता है जिस जान दै, तेरी दशी न जाय ।
खेवटियाका नाव ज्यों, घना चढैगा आय ॥९५॥
कबीर–चलती चाकी देखिकै, दिया कबीरा रोय ।

दो पाटन बिच आयकै, साबत गया न कोय ॥९६॥

कबीर–आसै पासै जो फिरै, निपट पिसावै सोय ।
कीला सौं लागा रहै, ताको बिघ्न न होय ॥९७॥

कबीर–चाकी चली गुपाल की, सब जग पीसा झारि ।
रूढा शब्द कबीर का, डारा पाट उखारि ॥९८॥

कबीर–कौन कसै कौन कसावै, कौन जो लेइ छुडाय ।
यह संशय जिव होरही, साधु कहो समुझाय ॥९९॥

कबीर–काल कसै कर्म कसावै, सतगुरु लेइ छुडाय ।
कहै कबीर बिचारिकै, सुनौ संत चित लाय ॥१००॥

कबीर–माटी में माटी मिली, मिलो पौन सों पौन ।
मैं तोहिं बूझौं पंडिता दोमें मूआ कौन ॥१०१॥

कबीर–कुमति हतो सो मिटि गई, मिट्यो वाद अहंकार ।
दोनूंका भेला मुवा, कहै कबीर बिचार ॥ १०२ ॥

अथ सजीवनको अंग ॥ ७९ ॥

कबीर–जरा मीच व्यापै नहीं, मुआ न सुनिये कोय ।
चलौ कबीर वा देशरै, जहां वैद्य रमैया होय ॥१॥

कबीर–भवसागरतें यों रहो, ज्यौं जल कमल निराल ।
मनवा जहाँ ले राखिया, तहाँ नहीं यमकाल ॥२॥

कबीर–कबिरा योगी बन बसा, खनि खाया कंद मूल ।
ना जानों किस जरी सों, अमर भया अस्थूल ॥३॥

टीका–जोगी जीव। वन वपु। कंद मूलकामदेव जडी योग। स्थूल शरीर॥

कबीर-कबिरा तो हरिपै चला, माया मोह सो तोरि।
गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुखमोरि॥४॥

कबीर-कबिरा मन तीखा किया लाइ बिरह खुरसान।
चित चरनों से चिपटिया, नहीं कालका बात ॥५॥

कबीर-काची कारी मति करौ, दिन दिन बधै बियाधि।
राम कबीर रुचि भई, याही औषधि साधि ॥ ६ ॥

कबीर-रामनाम निजु औषधी, कोटिक कटे बिकार।
बिषबारी बिरकत रहै, काया कंचन सार ॥७॥

कबीर-रामनाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय अरु पथ्य रहै, ताकी बेदन जाय ॥८॥

कबीर-यह औषधि अंगहि लगी, अनेक उधरी देह।
कोऊ फेर कुपथ्य करै, नहिं तो औषधि येह ॥९॥

कबीर-कबिरा बैद बुलाइया, जो भावै सो लेय।
जिहि जिहि औषधि हरि मिलै, सो सो औषधि देय१०

कबीर-कबिरा बैद बुलाइया, पकडि दिखाई बांहि।
बैद न बेदन जानई करक कलेजा मांहिं ॥११॥

कबीर-बैद जाहु घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निरमई, भला करैगा सोय ॥१२॥

कबीर-बैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
हाहा करता सब मुआ, कासों करौ पुकार ॥१३॥

कबीर-मनवा भया दिसंतरो, बोलै शब्द रसाल।

बात दिसावतकी कहै, तहां नहीं यमकाल ॥१४॥
कबीर–ऐसी तीखी सुरति है, फोरि गई ब्रह्मंड ।
राम निराला देखिया, सप्त द्वीप नव खण्ड ॥१५॥
कबीर–राम रमत अस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन ।
सुरति शब्द एकै भया, जलही ह्वैगा मीन ॥ १६ ॥
कबीर–राम मरै तो हम मरै, ना तर मरै बलाय ।
अबिनासीका चीटवा, मरै न मारा जाय ॥१७॥
कबीर–कबिरा संशय जीवमें, कोइ न कहै समुझाय ।
बिधि बिधि बानी बोलता, सो कित गया बिलाय १८॥
कबीर–कबिरा संशय दूर करु, जनम मरन अरु भरम ।
पांच तत्त्व ततां मिला, सून्य समाना मरम ॥१९॥
कबीर–यम जोरा तौ है नहीं, सबै रामका रूप ।
संशय खाई जो पृथ्वी, रहा कबीरा कूक ॥ २० ॥
कबीर–सब जग डरपै कालसों, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सुर नर मुनि औ लोक सब, सप्त रसातल शेश॥२१॥
कबीर–चंद्र सूर्य घर पवनलौं, खण्ड ब्रह्मण्ड प्रवेश ।
यम डरे काल कबीर सों, जैजे तू आदेश ॥ २२ ॥
कबीर–तरुवर तासु विलंबिया, जो बारह मास फलंत ।
शीतल छाया सघन फल, पक्षी केलि करंत ॥२३॥
कबीर–जाको राखै साँइया, मारि न सकिहै कोय ।
बाल न बंका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥ २४ ॥

अथ चित कपटीको अंग ॥ ८० ॥

कबीर–कबिरा तहाँ न जाइये, जहां कपट का हेत।
जानो कली अनारकी, तन राता मन स्वेत ॥ १ ॥
कबीर–कबिरा तहाँ न जाइये, जहाँ जो नाना भाव।
लागेही फल ढह परै, बाजे कोइ कुबाव ॥ २ ॥
कबीर–कबिरा तहां न जाइये, जहाँ न चोखा चित्त।
परपूठा अवगुन घना, मुहँडे ऊपर मित्त ॥ ३ ॥
कबीर–कबिरा तहाँ न जाइये, जहाँ कपटको हेत।
नव मन बीज जो बाहिके, खाली रहिगा खेत ॥४॥
कबीर–हेत प्रीति सों जो मिलै, ताकों मिलिये धाय।
अतर राखै जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥ ५ ॥
कबीर–दिल पर दिल जो मिलैं, तो दिल दगा नहिं होय।
सो दिल कबहुँ न बीसरे, कोटि करे जो कोय ॥६॥
कबीर–टीकलीका नमनां कहा, यह ना बहुरे बीर।
पहले चरनों लागिके, पीछे सोखै नीर ॥ ७ ॥
कबीर–कपटीका गुरु चातुरी, हरिगुन क्षण क्षण जाय।
औगुन केरी काँकरो, रही कलेजे छाय ॥ ८ ॥
कबीर–बहुत दिन ऐसे गया, अन रुचतीका नेह।
ऊसर बीज न जामई, अति घन बरसै मेह ॥ ९ ॥
कबीर–संसारी साकट भला, कन्या क्वारी भाय।
वैष्णव दुराचारी बुरा, हरिजन तहाँ न जाय ॥१०॥

कबीर–वैष्णव भया सो क्या भया, माला पहिरी चार ।
ऊपर कली लपेटिकै, भीतारि भरी भंगार ॥ ११ ॥
कबीर–नमनि नवा तो क्या हुआ, सूधा चित्त न ताहि ।
पारधिया दूना नवैं, मृगही टूकै जाहि ॥ १२ ॥
कबीर–कबिरा नमन बहु अंतरा, नमनत बहुत निनान ।
ये तीनों बहुतै नवैं, चीता चोर कमान ॥ १३ ॥
कबीर–केसूभँवर न बैठई, जो अति फूलै फूल ।
खार कपट हृदये बसै, मधुकर तजै समूल ॥ १४ ॥
कबीर–कहा बतावै बाहिरे, भीतरिया सो काम ।
छानै छिपिकै तू करै, सारा जानै राम ॥ १५ ॥
कबीर–चित कपटी सब सों मिलै, माँही कुटिल कठोर ।
इक दुरजन इक आरसी, आगै पीछै ओर ॥ १६ ॥
कबीर–आगे दरपन ऊजला, पीछै बिषम बिकार ।
आगै पीछै आरसी, क्यों न परै मुखछार ॥ १७ ॥

अथ समदृष्टीको अंग ॥ ८१ ॥

कबीर–समदृष्टी सतगुरु किया, भरम किया सब दूर ।
भया उजियारा ज्ञानका, ऊगा निर्मल सूर ॥ १ ॥
कबीर–समदृष्टी सतगुरु किया, भरम किया सब दूर ।
दूजा कोइ दाखै नहीं, राम रहा भरपूर ॥ २ ॥
कबीर–समदृष्टी सतगुरु किया, दीया अविचल ज्ञान ।
जहँ देखो तहँ एकहो, दूजा नाहीं आन ॥ ३ ॥

कबीर–समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम बिकार ।
जहां देखों तहां एकही, साहबका दीदार ॥ ४ ॥
कबीर–समदृष्टी सतगुरु किया, पाया मन विश्राम ।
जो हमको दिन घालता, सो गयो ब्रह्मके धाम ॥५॥
कबीर–समदृष्टी तब जानिये, शीतल समता होय ।
सब जीवनको आतमा, लखै एकसी सोय ॥ ६ ॥

अथ हेतप्रीतिको अंग ॥ ८२ ॥

कबीर–अधिक सनेही माछरी, दूजा अलप सनेह ।
जबही जलते बीछुरैं, तबहीं त्यागै देह ॥ १ ॥
कबीर–हरि सो तू जनि हेत कर, कर हरि जनसो हेत ।
माल मुल्क हरि देत है, हरिजन हरिही देत ॥ २ ॥
कबीर–जैसी प्रीति कुटुम्ब सों, तैसी हरि सों होय ।
दास कबीरा यों कहै, काज न बिगरे कोय ॥३॥
कबीर–कबिरा तासों प्रीति करु, जो निरवाहै ओर ।
बनै तौ बिविधि न रांचिये, देखत लागै खोर ॥४॥
कबीर–गुरुवंता अरु द्रव्यको, प्रीति करै सब कोय ।
कबिरा प्रीति सो जानिये, इनते न्यारी होय ॥५॥
कबीर–प्रीति बहुत संसार में, नानाविधि को जोय ।
उतर प्रीति सो जानिये, हरिजन हरि सो होय ॥६॥
कबीर–हेत मांहि परदो नहीं, शब्द मांहि नहिं राय ।
हेत प्रीति तब जानिये, बोलै एकहिं भाय ॥ ७ ॥

कबीर-हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवत नाहिं।
सुमिरन मनकी प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं॥८॥

कबीर--मेरा मन जो तुझहिसों, तेरा मन कहिं और।
कहै कबीर कैसे बनै एक जीव द्वै ठौर॥ ९ ॥

कबीर-ज्यो मेरा मन तुझ सों, यों तेरा जो होय।
अहिरन ताता लाह ज्यों, संधि लखै ना कोय॥१०॥

कबीर-दिलमाहीं जो दिल रहै, तौ दिल दूरि न जाय।
जो दिल दिल सों बाहरा, सो दिल कहां समाय॥११॥

कबीर-सोऊँ तो सपुने मिलै, जागौं तो मन माहिं।
लाइन राता शुभ घरी, बिछुरत कबहूं नाहिं॥१२॥

कबीर-कहा भयो तन बीछुरै, दूरि बसे जे बास।
नैनाही अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास॥ १३ ॥

कबीर--सौ कोसौ साजन बसे, जानो हृदय मँझारि।
कुसनेही घर आंगना, जान समुद्रां पारि॥ १४ ॥

कबीर-जो है जाका भावता, जब तब मिलिहै आय।
तन मन ताकौं सौंपिये, जो कबहु छांडि ना जाय १५

कबीर-जलमें बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकाश।
जो है जाका भावता, सो ताहीके पास॥ १६ ॥

कबीर-तन दिखलावे आपना, कछू न राखै गोय।
जैसी प्रीति कमादिनी, ऐसी प्रीति जो होय॥१७॥

कबीर-प्रीतम वाके दोजनां, इक मधुकर इक भान।

रैन जबैं ह्वै संपुटे, बिगसत होय बिहान ॥ १८ ॥

कबीर–सही हत है तासका, जाके, सतगुरु टेक ।
टेक निबाहै देह भरि, रहे शब्द मिलि एक ॥१९॥

कबीर–गही टेक छांड़े नहीं, जीभ चोंच जरि जाय ।
मीठो कहा अंगार जो ताहि चकोर चुगाय ॥२०॥

कबीर–चकोर भरोसे चंदके, ताता गिलै अंगार ।
कहै कबीर छाडै नहीं, ऐसी बस्तु लँगार ॥ २१ ॥

अथ कायरको अंग ॥ ८३ ॥

कबीर–कायर हुआ न छुटि हैं, कूचि सूरातन मांहि ।
भर्म भलाका दूरि करि, सुमिरन सेल सनाहि ॥१॥

कबीर–कायरको कौतुक भला, काहे कैसे सनाह ।
भीर परे भगि जायगा, जीवनका है लाह ॥ २ ॥

कबीर–कायर भागा पीठि दे, सूर रहा रन माँहि ।
पटा लिखाया रामके, खरा खजीना खाँहि ॥ ३ ॥

कबीर–कायरका घर फूसका, भभकी चहूँ पछीत ।
शूराके कछु डर नहीं, गजगीरीकी भीत ॥ ४ ॥

कबीर–कायर बहुत पमावई, बढ़िक न बोलै शूर ।
सार खलक के जानिये, केहिके मुहडे नूर ॥ ५ ॥

कबीर–कायर सेरी ताकवै, शूरा माँडे पाँव ।
सीस जीव दोऊ दिया, पीठ न आया घाव ॥ ६ ॥

कबीर–भागंता सो जूझिया, पीठ जो लागो घाव ।

जागीरी सब ऊतरी, धनी न कहसी आव ॥ ७ ॥

कबीर--राग बाग टोपी कसी, रनही चढे बजाय ।
फिरि फिरि भवन जो चित धरै, तो बाना बृद्ध लजाय ८॥

कबीर-सती जो डरपै अगिनतें, शूरा शरहिं डराय ।
हरिजन भागै भक्ति सों, देश दुनीतें जाय ॥ ९ ॥

अथ शूरातनको अंग ॥ ८४ ॥

कबीर-कौने परा न छूटि है, सुनु रे जीव अबूझ ।
कबीर माँड मैदानमें, करि इंद्रिन सों जूझ ॥ १ ॥

कबीर--कबिरा सोई शूरमां, मनसों माँडे जूझ ।
पाँचो इंद्री पकरिके, दूरि करै सब दूझ ॥ २ ॥

कबीर-कबिरा सोई शूरमां, जिन पांचों राखी चूरि ।
जिनके पांचूं मोकली, तिनसूं साहब दूर ॥ ३ ॥

कबीर-कबिरा सोई शूरमां, जाके पांचूं हाथ ।
जाके पांचूं वश नहीं, तो हरि संग न साथ ॥ ४ ॥

कबीर-शूरा जूझें गिरद सों, इक दिश शूर न होय ।
यों जूझे बिन बाहरा, भला न कहसी कोय ॥ ५ ॥

कबीर-कबिरा रनमें पैठिके, पीछा रहै न शूर ।
सांई सूं सनमुख भया, रहसी सदा हजूर ॥ ६ ॥

कबीर-गगन दमामा बाजिया, परा निशाने घाव ।
खेत बुहारै शूरमां, अब लडनेका दाँव ॥ ७ ॥

कबीर-गगन दमामा बाजिया, पडै निशानो चोट ।

कायर भागै कछु नहीं, शूरा भागै खोट ॥ ८ ॥
कबीर--गगन दमामा बाजिया, हनहनियाके कान ।
शूरां घरां बधावना, कायर तजिहैं प्रान ॥ ९ ॥
कबीर-मेरे संशय कोइ नहीं, हरिसों लागा हेत ।
काम क्रोध सों जूझना, चौडे मांडा खेत ॥१०॥
कबीर-शूरे सार सँवाहिया, पहरा सहज सँयोग ।
ज्ञान गयंदहि चढि चला, अब खेत परनका योग११॥
कबीर-शूरा सोइ सराहिये, लडै धनीके हेत ।
पुरजा पुरजा ह्वै पडै, तऊ न छांडै खेत ॥१२॥
कबीर-खेत न छांडै शूरमां, जूझै द्वै दल माहिं ।
आशा जीवन मरन की, मनमें राखै नाहिं ॥१३॥
कबीर-अब तो जूझां ही बनै, मुरिचाले घर दूर ।
शिर साहिब को सौंपता, सोच न कीजै शूर ॥१४॥
कबीर-जाय पूछौ उस घायलां, दिवस पीर निशि जागि ।
बाहनहारा जानि है, कै जानै जिस लागि ॥ १५ ॥
कबीर-घायल तौ घूमत फिरै, राखा रहै न ओट ।
यतन किया उबरै नहीं, लगी मरमकी चोट ॥ १६ ॥
कबीर-घायलकी गति औरहै, औरनकी गति और ।
लागा मान जो प्रेमका, रहा कबीरा ठौर ॥ १७ ॥
कबीर-ऊँचा तरुवर गगनफल, पक्षी मुआ बिसूर ।
अनेक सयाना पचि गया, फल निर्मल पर दूर ॥१८॥

कबीर–छूर भया तो क्या भया, शिर दै निथरा होय ।
जब लग शिर सौंपे नहीं, कारज सिद्ध न कोय ॥१९॥
कबीर–शूरै शीश उतारिया, छांडी तनकी आस ।
आगै सौं हरि हरषिया, आवत देखा दास ॥२०॥
कबीर–कबिरा घोडा प्रेमका, चेतन चढ़ा असवार ।
ज्ञान खडगलै काल शिर, भली मचाई मार ॥२१॥
कबीर–चित चेतन ताजी करै, लौकी करै लगाम ।
शब्द गुरूका ताजना, पहुँचै संत सुजान ॥ २२ ॥
कबीर–कबिरा तुरी पलानिया, चाबुक लीन्हा हाथ ।
दिवस थकां सांई मिलै, पीछै परिहै रात ॥ २३ ॥
कबीर–हरि घोडा ब्रह्मा कडी, बासक पीठि पलान ।
चांद सुरज दोउ पायडा, चढसी संत सुजान ॥२४॥

अर्थ–हर तमोगुण घोड़ा तमोगुण तलै दीया । दूजा ब्रह्मा रजोगुण कडी । कसी पकरचो वसि । अपान वायु चन्द्र सूर्य दोउ सुर साध । सन्त चढ़ै ।

कबीर–कबिरा हीरा बनीजिया, महँगै मोल अपार ।
हाड गली माटी मिली, शिर साटै व्यवहार ॥२५॥
कबीर–टूटै बरत अकाश सो, कौन सकत है झेल ।
साधु सती अरु शूर का, आनी ऊपर खेल ॥२६॥
कबीर–ढोल दमामा गडगडी, सहनाई औ तूर ।
तीनौ निकसि न बाहुरै, साधु सती और शूर ॥२७॥
कबीर–साधु सती औ शूरमाँ, ज्ञानी औ गजदंत ।
एते निकसि न बाहुरैं, जो युग जाहिं अनंत ॥२८॥

कबीर–साधु सती औ शूरमाँ, कबहुँ न फेरैं पीठ।
तीनों निकसि जो बाहुरै, ताको मुँह मति दीठ॥२९॥
कबीर–साधु सती औ शूरमां, दई न मारै मूँह।
ये तीनों भागा बुरा, साहबजीकी सूँह॥ ३०॥
कबीर--साधु सती औ शूरमां, इन पटतर कोइ नाहिं।
अगम पंथको पग धरै, डिगै तो कहां समाहिं॥३१॥
कबीर–सती डिगै तो नीच घर शूर, डिगै तौ कूर।
साधु डिगै तौ शिखर तैं, है चरनूंकी धूरि॥३२॥
कबीर–साधु सती औ शूरमाँ, राखा रहै न ओर।
माथा बांधि पताकसों, नेजा घालैं चोर॥ ३३॥
कबीर--साधु सती औ सिंहको, ज्यों लंघन त्यों शोभ।
सिंह न मारै मींडका, साधु न बांधे लोभ॥ ३४॥
कबीर–साधु सती औ शूरमाँ, इनकी बात अगाध।
आशा छोडै देहकी, तिनमें अधिका साध॥ ३५॥
कबीर–ज्यों ज्यों हरि गुणसाँभलों, त्यों त्यों लागै तीर।
सांटी सांटी झरि परी, भलका रहा शरीर॥ ३६॥
कबीर--जिमि जिमि हरिगुणको भजूं, त्यों त्यों लागै तीर।
लागे तें भागै नहीं, सोई संत सुधीर॥ ३७॥
कबीर–भाव भलका सुरति शर, धर धीरज करतान।
मनकी मूठी जहां लगि, चोट तहाँहीं जान॥३८॥
कबीर--कहै दरबारी बातरी क्यों पावै वह धाम।
शीश उतारै संचरै, नाहिं और को काम॥३९॥

कबीर–शिर राखे शिर जात है, शिर काटै शिर होय।
जैसे बाती दीपकी, कटि उजियारा जोय ॥४०॥
कबीर––शीतलता संजोगलै, शूर चढा संग्राम।
अबके भाजन परत है, शिर साहबके काम ॥४१॥
कबीर––धर सों शीश उतारिके, डारि देइ ज्यों ढेल।
कोई शूरको सोहसी, घर जानेका खेल ॥ ४२ ॥
कबीर–शूरा के तो शिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिब्रताके तन नहीं सुरति बसैं पिय माहिं ॥४३॥
कबीर––दाता के तो धन घना, शूराके शिर बीस।
पतिबरताके तन सही, पत राखै, जगदीस ॥४४॥
कबीर–शीश खिसै साईं लखै, भलवाँका असवार।
कदम कबीरा किलकिया, केता किया शुमार ॥४५॥
कबीर–लालच लोभ न मोह मद, एकल भला अनीह।
हरिजन ऐसा चाहिये, जैसा बनका सींह ॥४६॥
कबीर–साईं सेत न पाइये, बाता मिलै न कोय।
कबीर सौदा राम सो, शिर बिन कदै न होय ॥४७॥
कबीर–भागा भली न होयगी, कहा धरोगे पाँव।
शिर सोपै सीधा लरौ, काहे करौ कुदाव ॥४८॥
कबीर–भागा भला न होयगी, मुँह मोरा घर दूर।
साईं आगै शीसदै, सोच न कीजै शूर ॥४९॥
कबीर–शूरा सन्मुख बाहता, कोई न बाँधे धीर।
पर दल मोरन रन अटल, ऐसा दास कबीर ॥५०॥

कबीर–शूर सनाह न पहरई, मरता नहीं डराय ।
काथर भाजै पीठि दैं, शूर मुँहीमुहँ खाय ॥५१॥

कबीर–शर सनाह न पहरई, जब रन बाजा तूर ।
माथा काटै धर लडै, तब जानीजै शूर ॥५२॥

कबीर–जोग ते जौहर भला, घरी एकका काम ।
आठ पहरका जूझना, बिन खांडे संग्राम ॥५३॥

कबीर–खांडा तिसको बाहिये, जो फिरि खांडेकी देय ।
कायरकों क्या बाहिये, दांतों तिनका लेय ॥५४॥

कबीर–तीर तुपक बरछी बहैं, बिगसि जायगा चाम ।
शूराके मैदानमें, कायरका क्या काम ॥५५॥

कबीर–शूराका मैदानमें कायरका क्या काम ।
शूरा से शूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥ ५६ ॥

कबीर––शूराके मैदान में, कायरका क्या काम ।
कायर भाजें पीठि दै, शूर करै संग्राम ॥ ५७ ॥

कबीर–शूराके मैदान में, कायर वेधा आय ।
ना भाजै ना लडि सकै, मनहीं मन पछिताय ॥५८॥

कबीर–शूरचला संग्राम को, कबहुँ न देई पीठ ।
आगा चलि पीछा चलै,ताको मुँह मति दीठ॥५९॥

कबीर–शूरा लरै कमन्द है धरसों शीश उतारि ।
कहै कबीर मारा मुआ, कहै जो मारहिं मारि॥६०॥

कबीर–आगि आंच सहना सुगम, सुगम खड्गकी धार ।
नेह निबाहन एक रस, महा कठिन व्यवहार ॥६१॥

कबीर–नेह निबाहे ही बनै, सोचै बनें न आन ।
तन दै मनदै शीस दै, नेह न दीजै जान ॥ ६२ ॥

कबीर–बिन पाऊँका पंथ है, मंझि शहर अस्थान ।
बिकट बाट औघट घनां, पहुँचै सन्त सुजान ॥ ६३ ॥

कबीर–पंच असमाना जब लिया, तब रन धसिया शूर ।
दिल सौंपा शिर ऊबरा, मुजरा राम हजूर ॥ ६४ ॥

कबीर–रन धसिया ते ऊबरा, आया गरह निवास ।
घरूं बधावा बाजिया, औ जीवन की आस ॥ ६५ ॥

कबीर–जब लग धर पर सीस है, शूर कहावै कोय ।
माथा टूटै धर लरै, कमद कहावै सोय ॥ ६६ ॥

कबीर–शूरन सेंरी ताकई, नेजा घालै घाव ।
सब दल पाछा मोड़िके, माड़ी सेती चाव ॥ ६७ ॥

कबीर–शूरा तौ साँचै मतै, सहै जो सन्मुख धार ।
कायर अनी चुभायकै, पीछै झखै अपार ॥ ६८ ॥

कबीर–भाजि कहाँलौं जाइये, भय भारी घर दूर ।
बहुरि कबीरा खेतरह, दल आया भरपूर ॥ ६९ ॥

कबीर–इक मरिबो इक मारिबो, येही विषमा सिद्धि ।
ना वे कायर मरैंगे, जो चाले तरकस विद्धि ॥ ७० ॥

कबीर–रन रोही अतिही हुआ, साजन मिला हुजूरि ।
शूरा शूरा ठाहरा, भाजिगई भक भूरि ॥ ७१ ॥

कबीर–शूरा थोराही भला, सतका रोपै पग्ग ।
घना मिला किहि कामका, सावन का सा वग्ग ॥ ७२ ॥

कबीर–सबही साथ कलतरो, धीर न बंधै कोय ।
भागा पीछे बाहुरे, ठाठ गुसाईं सोय ॥ ७३ ॥
कबीर–सार बहै लोहा झरै, टूटै जिरह जँजीर ।
जम ऊपरि साटैकरी, चढिया दास कबीर ॥ ७४ ॥
कबीर–सार बहै लोहा झरै, टूटै जिरह जँजीर ।
अविनाशीकी फौजमें, मांडी दास कबीर ॥ ७५ ॥
कबीर–लडनेको सबही चला, शस्त्रहु बाँधि अनेक ।
साहब आगै आपना, जूझैगा कोइ एक ॥ ७६ ॥
कबीर–जूझैंगे तब कहैंगे, अब क्या कहैं बनाय ।
भीर परै मन मसकरा, लडै किधौं भगिजाय ॥७७॥
कबीर–शूरा नाम धरायके, अब क्यों डरपै बीर ।
मंडि रहिना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥७८॥
कबीर–तीर तुबक सों जो लड़ै, सो तो शूरा नाहिं ।
शूरा सोइ सराहिये, बांटि बांटि धन खाहिं ॥७९॥
कबीर–तीर तुबक सों जो लडै, सो तो शूर न होय ।
माया तजि हरिको भजै, शूर कहावै सोय ॥ ८० ॥
कबीर–शूरा सोइ सराहिये, अंग न पहरे लोह ।
जूझै सब बंद खोलिकै, छांड़ै तनका मोह ॥ ८१ ॥
कबीर–ज्ञान कामना लौगुनां, तन तरकस मन तीर ।
भलका बहै है सारका, मारै हदफ कबीर ॥८२॥
कबीर--कठिन कमान कबीरकी, पड़ी रहै मैदान ।
केता योद्धा पचि गया, खैंचे संत सुजान ॥ ८३ ॥

कबीर--बाँकी तेग कबीरकी, अनी परै द्वै टूक ।
मारे मीर महाबली, ऐसी मूठि अचूक ॥ ८४ ॥
कबीर--बांका गढ बांका मता, बांकी गढकी पौलि ।
कछि कबिरा नीकसा, यम सिर घाली रौलि॥८५॥
कबीर-कबिरा तोरा मान गढ, लूटी पांचों खान ।
ज्ञान कुहाड़ी कर्म बन, काटि किया मैदान ॥८६॥
कबीर-कबिरा तोरा मान गढ, मारा पांच गनीम ।
सीस नँवाया धनीको, साधी बड़ी महीम ॥ ८७ ॥
कबीर-राम झरोखै बैठिकै, सबका मुजरा लेय ।
जैसी जाको चाकरी, तैसी मुनसब देय ॥ ८८ ॥
कबीर--चौपड़ माँडी चौहटे, अरध उरध बाजार ।
कबिरा खेलै रामसौं, कबहुँ न आवै हार ॥ ८९ ॥
कबीर-हारौं तो हरि मान है, जो जीतूं तौ दाव ।
पारब्रह्मसों खेलतां, जो शिर जाय तो जाव ॥९०॥
कबीर-पासा पकरा प्रेमका, सारी कियो शरीर ।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥ ९१ ॥
कबीर-खेलजु मांड़ा खिलाड़सौं, आँनद बढा अघाय ।
अब पासा काहूपरौ, प्रेम बंधा युग जाय ॥ ९२ ॥
कबीर-घटी बढी जानै नहीं, मनमें राखे जीत ।
गाडर लडै गयन्दसा, देखो उलटी रीत ॥ ९३ ॥

अर्थ-घटी आयुर्दा। बढी तृष्णा । दूजी बढ़ी वाद। गाडर गर्व । गयंद ज्ञान। दूजी गाडर गरीबी । गयंद गर्व ।

कबीर-कूकरा बहु जुरिमुआ, सलसै चढी सियार ।

रोवत आवै गदहड़ा, प्रमोधत आय बिलार ॥९४॥

टीका—कूकर काम । सियार संशय । गदहा गर्व । बिलार वाद ।

कबीर—मा मारी धी घर करै, गऊसो बच्छा खाय ।
ब्राह्मन मारै मदपिये, तो स्वर्गापुर जाय ॥ ९५ ॥

टीका—ममता मारे । धी धीरज । गऊ गम्य । वच्छा विवेक । ब्राह्मन वाद मद गुरुमत पीवै ।

कबीर—माता मुये एक फल, पिता मुये फल चार ।
भाई मूये हानि है, कहैं कबीर विचार ॥ ९६ ॥

टीका—माता ममता । एक फल परमेश्वर प्राप्ति । पिता प्रीति चारि फल । अर्थ धर्म काम मोक्ष । भाई भाव हानि भुक्तिकी ।

कबीर—अचर चरै चर पर हरै, मरै न चारै जाय ।
बारह मास बिलोघनां, घूमै एकै भाय ॥ ९७ ॥

टीका—अचर नाम चर नाम लेवे । चर ईन्द्री प्रहरे । बारह मास बारह आंगुल वायु । विलोवै साधन करे । एक भाय एक परमेश्वरको पतिव्रत । दूजा अचर पवन । चरे तिसको खेंचे ॥

अथ व्यापकको अंग ॥ ८९ ॥

कबीर—जेता घट तेता मता, बहु बानी बहु भेख ।
सब घट व्यापक है रहा, सोई आप अलेख ॥१॥

कबीर—पारब्रह्म सुभर भरा, जाका वार न पार ।
खालिक बिन खाली नहीं, सुई जेता संचार ॥२॥

कबीर—जाति जाति के पाहुने, जाति जाति के जाय ।
साहब जाति सुजाति है, सब घट रह्यो समाय ॥३॥

कबीर—बालक रूपी साइयाँ, खेलै सब घट माहिं ।
जो चाहै सो करत है, भय काहू का नाहिं ॥४॥

कबीर—भूला भूला क्या फिरै, शिर पर बंधि गई वेल ।

तेरा साईं तुझहि में, ज्यों तिल माहीं तेल ॥ ५ ॥
कबीर-ज्यों तिल माहीं तेल है, चकमक माहीं आगि ।
तेरा साईं तोहिमें, जागि सके तो जागि ॥ ६ ॥
कबीर-पावक रूपी राम है, सब घट रह्यो समाय ।
चित चकमक लागे नहीं, ताते बुझि बुझि जाय ॥७॥
कबीर-काया कफ चित चकमकै, झारौं बारंबार ।
तीन बार धूंआ भया, चौथे परा अँगार ॥ ८ ॥
कबीर-जैसी लकडी ढाककी, ऐसा यह तन देख ।
वामें केसू छिपि रहा, यामें पुरुष अलेख ॥ ९ ॥

अथ जीवत मृतकको अंग ॥ ८६ ॥

कबीर-कबीर काया समुद्र है, अंत न पावें कोय ।
मृतक होयकै जो रहै, मानिक लावै सोय ॥ १ ॥
कबीर-तन समुद्र मन मर्जिवा, एक बार धसि लेय ।
की तो लाल ले नीकसे, कि लालच जिय देय ॥२॥
कबीर-मोती निपजै सीपमें, सीप समुन्दर माहिं ।
कोई मरजीवा काढ़सी, जीवनकी गम नाहिं ॥३॥
कबीर-हरि दरिया सुभर भरा, जामैं मुकता लाल ।
मरजीवा ले नीकसे, पहरि क्षमाकी खाल ॥ ४ ॥
कबीर-मैं मरजीवा समुद्रका, पैठा सप्त पताल ।
लाज कानि कुल मेटिकै, गहि लै निकसा लाल ॥५॥
कबीर-मैं मरजीवा समुद्रका, डुबकी मारी एक ।
मूठी लाया ज्ञानकी, तामैं बस्तु अनेक ॥ ६ ॥

कबीर–डुबकी मारी समुद्रमें, जाइ निकसा आकास ।
गगन मंडलमें घर किया, हीरा पाया दास ॥ ७ ॥

कबीर–हरि हीरा क्यों पाइहैं, जिन जीवेकी आस ।
हरि दरिया सों काढिसी, कोइ मरजीवा दास ॥८॥

कबीर–शून्य शहरमें पाइया, जहां मरजीवा मन्न ।
कबिरा चुनि चुनि लैगया, भीतर राम रतन्न ॥९॥

कबीर–ऊंचा तरुवर गगन फल, बिरला पक्षी खाय ।
इस फलको तो सो भखै, जीवतही मरि जाय॥१०॥

कबीर–जब लगि आस शरीरकी, मृतक हुवा न जाय ।
काया माया मन तजै, तब चौडे रहै बजाय ॥११॥

कबीर–राम कहो तो मरि रहौ, जीवत बन्दूँ न राम ।
जब लग जीवत राम है, तब लग काँचा काम॥१२॥

कबीर–कबीर कसौटी रामकी, खोटा टिकै न कोय ।
राम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मृतक होय॥१३॥

कबीर–जीवत मृतक ह्वै रहै, तजै, खलककी आस ।
आगे पीछे हरि फिरै, मति दुख पावै दास ॥१४॥

कबीर–कबिरा मन मृतक भया, दुर्बल भया शरीर ।
पैडै लागा हरि फिरै, कहै कबीर कबीर ॥ १५ ॥

कबीर–मनको मृतक देखिकै, मति मानैं बिसवास ।
साधू अजहूँ भय करै, जब लग पिंजर स्वास॥१६॥

कबीर–मृतककों धीज्यों नहीं, मेरो मन वह बाज ।
बाजै बाव विकारकी, कब फिरि जीवै आज ॥१७॥

कबीर--मृतकको दावा किसा, अहाँ रहै नहिं कोय ।
मुआ मसाना परज्वलै, यह कछु अचरज होय॥१८॥

कबीर-मैं जानूं मन मरिगया, मरकर हूआ भूत ।
मूआ पीछै उठि लगै, ऐसा मेरा पूत ॥ १९ ॥

कबीर-मरतां मरतां जग मुआ, औसर मुआ न कोय ।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥२०॥

कबीर-वैद्य मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार ।
एक कबीरा ना मुआ, जाके राम अधार ॥२१॥

कबीर-जीवनतें मरना भला, जो मरि जानै कोय ।
मरना पहली जो मरै, तो कलि अजरामर होय॥२२॥

कबीर--मन मनसा ममिता मुई, अहं गई सब छूटि ।
गगन मंडलमें घर किया, काल रहा सिर कूटि ॥२३॥

कबीर-मोहिं मरनेका चाव है, मरूं तो राम दुवारि ।
मति हारि बूझै बातरी, कोई दास मुआ दरबारि ॥२४॥

कबीर-मोहिं मरनेका चाव है, मरूं तो राम दुवारि ।
की तनका कुटका करूं की ले उतरों पारि ॥२५॥

कबीर-जा मरना सों जग डरै, सो मेरे आनंद ।
कब मरिहों कब भेटिहों, पूरन परमानन्द ॥ २६ ॥

कबीर-मूआको क्या रोइये, जो अपने घर जाय ।
रोइये बन्दीवानको, जो हाटै हाट बिकाय ॥ २७ ॥

कबीर-मरना भला बिदेशका, जहां अपना नहिं कोय ।
जीव जन्तु भोजन करैं, सहज महोत्सव होय ॥२८॥

कबीर–कबिरा मरि मरहट गया, किनहु न पूछी सार ।
हरि आगै आदर लिया, ज्यों गऊ बछाकी लार॥ २९॥
कबीर–पैंडा मांही परि रहो, दुर्बल मिरतक होय ।
जेहि पैंडे यम लूटिया, बात न बूझै कोय ॥ ३० ॥
कबीर–जिन पावन भू बहुफिरा, देखा देस बिदेस ।
तिन पावन थित पकरिया, आँगन भया बिदेस ॥ ३१॥
कबीर--कबिरा चेरा संतका, दासन हू का दास ।
अब तो ऐसा है रहौ, ज्यौं पांव तलेका घास ॥ ३२॥
कबीर–रोडा होय रहे बाटका, तजि आपा अभिमान ।
लोभ मोह तृष्णा तजै, ताहि मिलै भगवान ॥ ३३॥
कबीर–रोडा भया तो क्या भया, पंथी कों दुख देह ।
हरिजन ऐसा चाहिये, ज्यों राहकी खेह ॥ ३४॥
कबीर–खेह भई तो क्या भया, उडि उडि लागै अंग ।
हरिजन ऐसा चाहिये, पानी का सा रंग ॥ ३५॥
कबीर–पानी भया तो क्या भया, ताता सीरा सोय ।
हरिजन ऐसा चाहिये, हरिभजि निर्मल होय॥ ३६॥
कबीर–निर्मल भया तो क्या भया, निर्मल मांगै ठौर ।
मल निर्मल सूं रहित है, ते साधू कोइ और ॥ ३७॥
कबीर–पापीको दोजख नहीं, धरमी दोजख जाइ ।
यह परमारथ बूझिकै, जनि कोइ धरम कमाइ ॥ ३८॥
कबीर–पांच पचीसूं मारिया, पापी कहिये सोय ।
या परमारथ बूझिकै, पाप करो सबकोय ॥ ३९॥

कबीर—आपा मेटै हरि मिलै, हरि मेटै सब जाय।
अकथ कहानी प्रेमकी, कहै न कोइ पतियाय ॥४०॥
कबीर—घर जारै घर ऊबरै, घर राखै घर जाय।
एक अचंभो देखिया, मुआ कालको खाय ॥४१॥

टीका—घर घट। जरै घटके विकार। उबरै अमर होय। मरै जीवन मृतक।

अथ जीवनमुक्तिको अंग ॥ ८७ ॥

कबीर—बंधा को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंधकी, पलमें लेइ छुड़ाय ॥ १ ॥
कबीर—दुनिया बंधन परिगई, साधू है निरबंध।
राखै खडग जो ज्ञान को, काटत फिरै जो फंध॥२॥
कबीर—मुक्ता बाँबें दाहिनै, मुक्ता आगै पीठि।
मुक्ता धरनि अकास में, मुक्ता सेरी दीठि ॥ ३ ॥
कबीर—मुक्ता पैडा जब भया, प्रान मुक्ति निरबान।
रूप मुक्ति तब जानिये, जब देखै दृष्टि पिछान ॥४॥

अथ मांसाहारीको अंग ॥ ८८ ॥

कबीर—मांस अहारी मानई, प्रत्यक्ष राक्षस जानि।
ताकी संगति मति करै, होइ भक्ति में हानि ॥१॥

१ जिह्वा स्वादी तर्कवादी अपस्वार्थी लोग प्राय: कहा करते हैं कि, मांस खानेमें क्या दोष है ? ऐसे लोंगोंको न तो धर्म्म शास्त्रके ऊपर आस्था होती है न धर्म्मको कुछ पदार्थ समझते हैं न मुक्ति आदिको मानते हैं। कारण इसका यही है कि, जब मांस अहारके कुछन्दमें पडकर शिश्न और जिह्वाके क्षणिक दु:खान्त आनन्दका उन्हें अनुभव होता है और हृदय विचार शून्य हो जाता है तब सारासार विचारणी शक्ति नष्ट हो जाती है जिससे उनको सत्य बोध कदापि नहीं हो सकता। परंतु कोई कोई मांस अहारी ऐसे भी हैं कि, जिनको भली संगति अथवा पूर्व संस्कारसे इसका दोष समझ पड़ता है और इससे रहित होकर लोक परलोकके सुखके भागी बनते हैं।

कबीर–मांस खांय ते ढेड़ सब, मद पीवैं सो नीच ।
कुलकी दुरमति पर हरै, राम कहै सो ऊंच ॥२॥
कबीर–मांस मछलिया खात हैं, सुरापान से हेत ।
ते नर नरकै जाहिंगे, माता पिता समेत ॥ ३ ॥
कबीर–मांस मछलिया खात हैं, सुरा पान सों हेत ।
ते नर सगरा जाहिंगे, ज्यों मूरीका खेत ॥ ४ ॥
कबीर–मांस भखै औ मद पिये, धन वेश्या सों खाय ।
जूआ खेलि चोरी करै, अंत समूला जाय ॥ ५ ॥

तत्त्वविद्याकी पुस्तकोंका अभ्यास करनेसे स्पष्ट जान पडेगा कि, मद्य मांसके ग्रहण करनेवाले तत्त्वविद्याके अधिकारी कदापि नहीं हो सकते । कारण कि, ऐसे नीच और अग्राह्य पदार्थोंके सेवन करनेसे शरीर और मनके ऊपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है ।

पशुओंका मांस चाहे जिस प्रकारसे पकाया जावे परंतु उसके भिन्न२ गुण और औगुण नष्ट नहीं होजाते इसी कारणसे किसी प्रकारसे भी माँसका उपयोग क्यों न किया जावे ! परन्तु जिस प्राणीका वह मांस होता है उसका गुण उसके मांस अहारी पर अवश्य होता है और उसके गुण और विकारसे हठात् वशीभूत हुआ मनुष्य भी उसी पशुके समान हो जाता है ।

जैसे जैसे पशु अथवा पक्षियोंका मांस भक्षण किया जाता है वह वैसाही २ गुण और औगुण अपने भक्षण करता पर डालता है । यह नहीं कि, केवल वडे पशुओंके मांसका असर पड़ता हो, बरन छोटे वड़े सव जीवधारियोंके मांसका गुण औगुण तारतम्यता अनुसार समानही पडता है ।

मांस भक्षी और वनस्पतिके ऊपर जीवन व्यतीत करनेवालों में वडा अन्तर है वनस्पतिसे जीवित जीवधारी जैसे गाय, बकरा, मेढा, घोडा, शुका आदिके शरीर से स्वच्छ और पवित्र होते हैं कि तिनके ऊपर हाथ फेरने और उन की प्यारी कुसूरतको प्यार करनेका जी चाहता है । इसके विरुद्ध मांसभक्षी जैसे व्याघ्र, कुत्ता, बिलाई, गिद्ध, इत्यादि पशु पक्षियोंके शरीरमें से ऐसी दुर्गंधि निकलती है कि, उनको प्यार करना तो अलग रहे उनके निकट खड़ा रहनेको भी जी नहीं चाहता । वे सदा अपवित्र रहते हैं । ये तो इनके शरीर का अन्तर हुआ अब उनके गुणोंपर विचार करें तो जान पडेगा कि उसमें भी

कबीर--मांस मांस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय ।
आंखि देखि नर खात है, ते नर नरकहिं जाय ॥६॥
कबीर-यह कूकर को भक्ष है, मनुष देह क्यों खाय ।
मुखमें आमिख मेलिके, नरक परंते जाय ॥७॥
कबीर-ब्राह्मन राजा बरनका, और पवनी छत्तीस ।
रोटी ऊपर माछली, सब बरन भये खबीस ॥ ८ ॥
कबीर-कलिजुग केरा ब्राह्मना, मांस मछलिया खाय ।
पांय लगे सुखमानई, राम कहे जरि जाय ॥ ९ ॥
कबीर-पापी पूजा बैठिकै, भखै मांस मद दोइ ।
तिनकी दीक्षा मुक्ति नहिं, कोटि नरक फल होइ॥ १०॥
कबीर-सकल बरन एकत्र है, शक्ति पूजि मिलि खाहिं ।
हरि दामन की भ्रांति करि, केवल जमपुर जाहिं॥ ११॥

बहुतही अन्तर है । जैसा कि, मांसभक्षी प्राणी विकारोंसे पूर्ण और विकराल भयदायक देख पडता है, उसके स्वभावमेंही कठोरता भरी होती है, उसके उलटा वनस्पति ऊपर गुजर करनेवाले बैल, बकरी आदि शांत स्वभाव वाले परिश्रमी और अत्यन्त उपयोगी होते हैं ।

इसी प्रकारसे मनुष्य जातिमें भी मांसाहारी और संयमी मांस त्यागी पुरुषोंमे पूरब पश्चिम कासा अन्तर देख पडता है; मांस और मद्य आदिका उपयोग करने वाला पुरुष काम, क्रोध, ईर्षा, वैर, और स्वार्थ आदि नीच आसुरी गुणों से पूर्ण हो सदा देहाभिमानमें पड़ा हुआ दुःखी रहता है। वह अपने इंद्रियोंको वशमें नहीं रख सकता उसका मन सदा मिथ्या विषयोंके ही चिंतनमें लगा रहता है परमार्थ विचारका तो गंध भी उसके मस्तिष्क तक नहीं पहुँचता इत्यादि जितने परलोक विमुख आसुरी सम्पत्ति हैं सब उसमें पाये जाते हैं और वनस्पति खानेवाले प्राणी इसके विरुद्ध सदा पारलौकिक उत्तम विचारोंमें लगे रहते हैं ।

दैवी सम्पत्ति शील, संतोष, धैर्य्य और विचार आदिको परम प्रिय जानकर उन्हीं का सेवन करता है। महान शूरवीरके समान अपने मन और इंद्रि-

कबीर–विष्ठाका चौका दिया, हांडी सीझै हाड ।
छूति बचावै चासकी तिनहूं का गुरु राड ॥१२॥
कबीर–जीव हनै हिंसा करै, प्रगट पाप सिर होय ।
पाप सबै जो देखिया, पुन्य न देखा कोय ॥१३॥
कबीर–जीव हनै हिंसा करै, प्रगट पाप सिर होय ।
निगम पुनि ऐसे पाप तें, भिस्त गया नहिं कोय॥१४॥
कबीर–हन्या सोही हल्लसी, भावै जानि बिजान ।
कर गहि चोटी तानसी, साहबके दीवान ॥१५॥
कबीर–तिलभर मछली खायके, कोटि गऊ दै दान ।
काशी करवट लै मरै, तौ भी नरक निदान ॥१६॥
कबीर–काटि कूटि जबह करै, या पाप संगका भेस ।
निश्चै राम न जानही, कहै कबीर सँदेस ॥१७॥
कबीर–बकरी पाती खात है, ताकी काढी खाल ।
जो बकरीको खात है, तिनका कौन हवाल ॥१८॥
कबीर–आठ बाट बकरी गई, माँस मुलां गये खाय ।
अजहूँ खाल खटीकके, भीस्त कहांते जाय ॥१९॥
कबीर–अंडा किन बिसमिल किया, घुन किन किया हलाल ।
मछली किन जबह करी, सब खानेका ख्याल ॥२०॥
कबीर–मुल्ला तुझै करीमका, कब आया फरमान ।
घट फोरा घर घर किया, साहबका नीसान ॥२१॥
कबीर–काजीका बेटा मुआ, उरमैं सालै पीर ।

योंको अपने वशमें रखता है । छलकपट कृत प्रपञ्चके संकल्पोंसे सदा लड़ाई करता और जय पाता रहता है । जीवन को शांतिसे बिताकर परलोकके अक्षय सुखका अधिकारी बनता है ।

वह साहब सबका पिता, भला न मानैं बीर ॥२२॥

कबीर-पीर सबनको एकसी, मूरख जानैं नाहिं ।
अपना गला कटायकै, भिश्त बसै क्यों नाहिं॥२३॥

कबीर-मुरगी मुल्लासों कहै, जबह करत है मोहिं ।
साहब लेखा मांगसी, संकट परिहै तोहिं ॥ २४ ॥

कबीर-कबिरा काजी स्वाद बस, जीव हते तब दोय ।
चढ़ि मसीत एको कहै, क्यों दरगह सांचा होय॥२५॥

कबीर-काजी मुल्लां भरमिया, चले दुनीके साथ ।
दिल सो दीन निवारिया, करदलई तद हाथ ॥२६॥

कबीर-काला मुँह करि करदका, दिल सूं दई निवार ।
सब सूरति सुबहानकी, अहमक मुला न मार ॥२७॥

कबीर-जोरी करि जबह करै, मुखसों कहै हलाल ।
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल॥२८॥

कबीर--जोर कीयां जुलूम है, मागै ज्वाब खुदाय ।
खालिक दर खूनी खडा, मार मुही मुँह खाय॥२९॥

कबीर-गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल ।
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल ॥३०॥

कबीर-गला गुसाकों काटिये, मियां कहरको मार ।
जो पांचू बिस्मिल करै, तब पावै दीदार ॥ ३१ ॥

कबीर-ये सब झूठी बंदगी, बेरिया पांच निमाज ।
सांचहि मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥३२॥

कबीर-दिनको रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय ।

यह खून वह वंदगी, कहुं क्यों खुशी खुदाय ॥२३॥
कबीर–कबिरा चाला जाय था, आगे मिले खुदाय ।
मीरां मुझ सौं कब कही, कद फुरमाई गाय ॥३४॥
कबीर–सेख सबूरी बाहरा, हाँका जमकै जाय ।
जिनका दिल साबुत नहीं, तिनकौं कहां खुदाय ३५॥
कबीर–कबिरा तेई पीर हैं, जो जानै पर पीर ।
जो पर पीर न जानि है, सो काफिर बेपीर ॥३६॥
कबीर–खूब खाना है खीचडी, मांहीं परी टुक लौन ।
मांस पराया खायकै, गला कटावै कौन ॥ ३७ ॥
कबीर–कहता हूं कहि जात हूं, कहा जो मान हमार ।
जाका गला तुम काटि हो, सो फिर काटै तुम्हार॥ ३८॥
कबीर–हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरकके नाहिं ।
कहै कबीर दोनूं गया, लख चौरासी माहिं ॥३९॥
कबीर–मुसलमान मारै करदसो, हिंदू मारे तरवार ।
कहै कबीर दोनूं मिलि, जैहैं यमके द्वार ॥ ४० ॥

अथ अमल अहारीको अंग ॥ ८९ ॥

कबीर–कलयुग काल पठाइया, भाँग तमाखू फीम ।
ज्ञान ध्यानकी सुधि नहीं, बसै इन्हींकी सीम ॥१॥
कबीर–गऊ जो विष्ठा भक्षई, विप्र तमाखू भंग ।
शस्तर बांधै दरसनी, ये कलियुगके रंग ॥ २ ॥
कबीर–भाँग तमाखू छतरा, आफू और शराब ।

कौन करैगा बंदगी, येतो भये खराब ॥ ३ ॥
कबीर–अमल माहिं औगुन कहा, कहो मोहिं समुझाय !
उत्तर प्रश्नहिमें सुनो, मनकी संशय जाय ॥ ४ ॥
कबीर–भांग भखै बल बुद्धिको, आफू अहिमुख होय ।
दोइ अमल औगुन कहा, ज्ञानवंत सुनि लेय ॥ ५ ॥
कबीर–औगुन कहूं शराबका, ज्ञानवंत सुनिलेय ।
मानुषसों पशुवा करै, द्रव्य गांठिको देय ॥ ६ ॥
कबीर–काम हरक्कत बल घटत, तृष्णा नाहीं ठौर ।
ढिग होय बैठे दीनके, एक चिलम भरि और ॥७॥
कबीर–पानी पिरथी के हते, धूंआं सुनिके जीव ।
हुक्के में हिंसा घनी, क्योंकर पावै पीव ॥ ८ ॥
कबीर–छाजन भोजन हक्क है, और अनाहक लेइ ।
आपन दोजख जात है, औरै दोजख देइ ॥ ९ ॥
कबीर–अमल अहारी आतमा, कबहुँ न पावै पार ।
कहै कबीर पुकारिकै, त्यागो ताहि विचार ॥१०॥
कबीर–तन मद मनमद मायामद, विद्यामद उनमद्द ।
एता मद जब पर हरै, तब सुनै ज्ञान अनहद्द॥११॥

अथ अपारखको अंग ॥ ९० ॥

कबीर–चंदन गया विदेसड़ै, सब कोइ कहै पलास ।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधिकी बास॥१॥
कबीर–चंदन रोया रातँ भरि, मेरा हित्त न कोय ।

जिसने राख्यो पेटमें, सो फिर बैरी होय ॥ २ ॥

कबीर--चंदन काटा जड खनी, बांधिलिया शिर भार ।
कालि जो पंछी बसि गया, तिसका यह उपकार॥ ३॥

कबीर--पांच पदारथ पेलिया, काँकर लीन्हां हाथ ।
जोडी बिछुरी हंस की, चला बुगांके साथ ॥ ४ ॥

कबीर--हंसा तो महाराणका, आया थलियां माहिं ।
बगुला करि करि मारिया, मरम जो जानै नाहिं ॥ ५॥

कबीर--हंस बुगांके पावना, कोइक दिनका फेर ।
बगुला कहा गरबिया, बैठा पंख विखेर ॥ ६ ॥

कबीर--बगुला हंस मनाइलै, नीरां रूकां बहोर ।
या बैठा तू ऊजला, तासौं प्रीति न तोर ॥ ७ ॥

कबीर-एक अचंभो देखिया, हीरा हाट बिकाय ।
परखन हारा बाहरी, कौड़ी बदलै जाय ॥ ८ ॥

कबीर-पायो पर पायो नहीं, हीरा हड्डी मार ।
कहैं कबीर योंही गयो, परखे बिना गँवार ॥ ९ ॥

कबीर-कबिरा चुनता कन फिरै, हीरा पाया बाट ।
ताको मरम न जानिया, ले खलि खाई हाट॥ १०॥

कबीर-हीरा को कछु ना घटा, घटा जो बेचन हार ।
जन्म गमायो आपनौ, अंधे पशू गँवार ॥ ११ ॥

कबीर-हिरदै हीरा ऊपजै, नाभि कमलके बीच ।
जो कबहूँ हीरा लखै, तो कदे न आवै मीच ॥ १२॥

कबीर--हीरा हरिको नाम है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भरिरहा, ऐसा आप अलेख ॥ १३ ॥
कबीर-बाद बके दमजात है, सुरति निरतिलै बोल।
नित प्रति हीरा शब्दका, गाहक आगे खोल ॥१४॥
कबीर-मान उनमान तोलिये, शब्दा मोल न तोल।
मूरख लोग न जानहीं, आपा खोयो बोल ॥१५॥
कबीर-कबिरा गुदरी बीखरी, सौदा गया बिकाय।
खोटा बाँधा गांठरी, खरा लिया नहिं जाय॥१६॥
कबीर-राम रतन धन पाइकै, गांठ बांधि ना खोल।
नहीं पटन नहिं पारखी, नहिं ग्राहक नहिं मोल॥१७॥
कबीर-राम रतन धन मुक्तिमें, खान खुली घट माहिं।
सेतमेतही देतहों, ग्राहक कोई नाहिं ॥ १८ ॥
कबीर-जहँ गाँहक तहँ मैं नहीं, मैं तहाँ गाहँक नाहिं।
परिचय बिन फूला फिरै, पकरि शब्दकी बाहिं॥१९॥
कबीर-पप्पासों परिचय नहीं, दादा रहि गा दूर।
लल्ला लौ लागी रहै, नन्ना सदा हजूर ॥ २० ॥
टीका-पप्पा पुरुष। दद्दा देना। लल्ला लोभ। नन्ना नाहिं।

कबीर-कबिरा खाँडहि छाँडिकै, काँकर चुनि चुनि खाय।
रत्न गँवाया रेतमें, फिर पाछे पछिताय ॥ २१ ॥
टीका-खांड क्षमा। काँकर क्रोध। रत्न नाम रेत कुल रीति।

कबीर-पैंडे मोती बीखरा, आधा निकरा आय।
ज्योति बिना जगदीशकी, जगत उलांडा जाय॥२२॥

कबीर-कबिरा ये जग आंधरा, जैसी अंधी गाय ।
बछरा था सो मरि गया, ऊभी चाम चटाय ॥२३॥
कबीर-सागरमें मानिक बसै, चीन्हत नाहीं कोय ।
या मानिक कों सो लखे, जाको गुरुगम होय॥२४॥
कबीर-अनजानेका कूकना, कूकर कासा शोर ।
ज्यों अंधियारी रैनमें, साह न चीन्हें चोर ॥२५॥
कबीर-मैं भारन सब ज्ञानिया, कथत बकत दिन जाय ।
साह चोर चीन्है नहीं, कागा हंस लगाय ॥ २६ ॥
कबीर-हंस कागकी पारिखा, सतगुरु दई बताय ।
हंसा तो मोती चुगैं, काग नरक परिजाय ॥ २७ ॥
कबीर-अपने अपने सिरपर, सबहिन लीन्हा मानि ।
हरिकी बात दुर्लभ अहै, काहू परी न जानि॥२८॥

अथ पारखको अंग ॥ ९१ ॥

कबीर-जब गुनको गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाय ।
जब गुनको गाहक नहीं, तब कौडी बदले जाय ॥१॥
कबीर-हरि हीरा जन जौहरी, लैलै मांडी हाट ।
जब रै मिलैगा पारखी, तब हीरा का साठ ॥२॥
कबीर-संशय नहिं साधू मिले, मिलि मिलि करै बिचार ।
बोला पीछे जानिये, जो जाको व्यवहार ॥ ३ ॥
कबीर-कबिरा देखि परखिले, परखिके मुखां बुलाय ।
जैसी अंतर होयगी, मुख निकसैगी आय ॥ ४ ॥

कबीर–जो जैसा उनमानका, तैसो तासों बोल ।
पोता को गाहक नहीं, हीरा गाठि न खोल ॥५॥
कबीर–पहले शब्द पहचानिये, पीछै कीजे मोल ।
पारख परख न पटतरा, शब्दै मोल न तोल ॥६॥
कबीर–राम रसायन प्रेमरस, अमृत शब्द अपार ।
गाहक बिना न नीकसै, मानिक कनक कुठार॥७॥
कबीर–हरि हीरा सन मेहटा, पट्टन प्राण सुभट्ट ।
गाहक बिना न खोलिये, हीरा केरी हट्ट ॥ ८ ॥
कबीर–हीरा तहाँ न खोलिये, जहां खोटी है हाट ।
कस करि बाँधौ गांठरी उठकरि चालो बाट ॥ ९ ॥
कबीर--एकहि बार परखिये, ना वा बारम्बार ।
बालू तौहू किरकिरी, जौ छानै सौ बार ॥ १० ॥
कबीर–राम रतन घट कोथली, गाहक आगे खोल ।
जब रे मिलैगा पारखी, तब लेगा महँगे मोल॥११॥
कबीर–तन सन्दूक मन रतन है, चुपकी दै हटताल ।
गाहक बिन नहिं खोलिये,पूंजी शब्द रसाल ॥१२॥
कबीर--हरि हीरा मन जौहरी, परखि निरखि हिय लेय ।
लै लुहार करि गहनमें, ज्ञान चोट घन देय ॥१३॥
कबीर–हरि मोतियनकी माल है, पोईकाचे धागि ।
यतंन करो झटका घनां, टूटैकी कहुँ लागि ॥१४॥
कबीर--पारख कीजे साधुकी, साधुहि परखै कौन ।

गगन मंडलमें घर करै, अनहद राखै मौन ॥१५॥

कबीर–हीरा परखै जौंहरी, शब्दहिं परखै साध ।
कबिरा परखै साधुको, ताका मता अगाध ॥१६॥

कबीर–ज्ञानी जन हैं जौंहरी, करमी सकल मजूर ।
देह भारका टोकरा, ताके सीस न धर ॥ १७ ॥

कबीर–हम हैं जगमें जौंहरी, घटकी आँखो खोल ।
तुला सवारि बिवेककी, शब्द जुहार जो तोल॥१८॥

कबीर–कै रत्ती भर सुरति है, कै रत्ती भर काम ।
माया कै रत्ती भरी, कै रत्ती भर नाम ॥ १९ ॥

कबीर–सोलह रत्ती सुरति है, छत्तिस रत्ती काम ।
माया सहस रती भरी, आध रती निजनाम ॥२०॥

कबीर–हड्डी मारि हीरा लहा, नौ करोडको हीर ।
जा मारग हीरा लहा, सो क्यों तजै कबीर ॥२१॥

टीका–हड्डी हिरस।हीरा नाम। नौकरोरि नौ द्वार।मार्गसतशंग।हीरा हरि।

कबीर–हीरा पाया परखि कै, घनमें दीया आनि ।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहचानि ॥ २२ ॥

कबीर–जो हंसा मोती चुगै, काँकर क्यों पति आय ।
काँकर माथा ना नवै, मोती मिलै तो खाय ॥२३॥

कबीर–मोती है बिन सीपका, जगर मगर उजियार ।
कहै कबीर तब पावई, जब भोजन मिलै हमार॥२४॥

कबीर–वे मोती मति जानियो, जो पोवै पोतके साथ ।

येतो मोति शब्दका, बेधि रहा सब गात ॥२५॥
कबीर–हंसा देश सुदेशका, परे कुदेसा आय।
जाका चारा मोतिया, घूंघे क्यों पतियाय ॥२६॥
कबीर–हंसा बगला एकसा, मान सरोवर माहिं।
बग ढिंढोरे माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥ २७ ॥
कबीर–उत्तर दक्षिन पूरब पश्चिम, चारों दिशा मसान।
कबीर–उत्तम देश कबीर का, अमरापुर अस्थान ॥ २८ ॥
कबीर–गांवनीयाके मुख बसौं, श्रोता के मैं कान।
ज्ञानीके हृदये बसौं, भेदीका निज मान ॥ २९ ॥
कबीर–कीर्तनियां सौं कोस बिस, संन्यासी सों तीस।
गृहीके हृदये बसौं, बैरागीके सीस ॥ ३० ॥
कबीर–जो कछु होय तो कुछ, कहौं तौ झगरा सोह।
दो अंधों का नाचना, कहौ काकों मोह ॥ ३१ ॥

अथ निन्दाको अंग ॥ ९२ ॥

कबीर–लोग बिचारा निन्दही, जिनहु न माया ज्ञान।
राम नाम जाने नहीं, बकै आन ही आन ॥ १ ॥
कबीर–निन्दक एकहु मति मिलै, पापी मिलौ हजार।
एक निन्दकके सीसपर, हजार पापको भार ॥ २ ॥
कबीर–निंदकते कुत्ता भला, हठ करि मांडै रारि।
कूकर तैं क्रोधी बुरा, गुरू दिवावै गारि ॥ ३ ॥
कबीर–निन्दक न्हाय गहन कुरुखेत, अपरै नारि सिंगार समेत।

चौंसठ कूआ बाय दिवावै। तौभी निंदक नरकहिं जावै ॥४॥
अडसठि तीरथ निन्दक न्हाई। देह पलोसे मैल न जाई।
छप्पनकोटि धरती फिरि आवै।तोभी निन्दक नरकहि जावै५॥

कबीर—निन्दक नियरैं राखिये, आंगन कुटी बँधाइ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाइ ॥६॥

कबीर—निन्दक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मान।
निर्मल तन मन सब करै, बकैं आनही आन ॥७॥

कबीर--निन्दक हमरा जनि मरौ, जीवो आदि युगादि।
कबिरा सतगुरु पाइया, निन्दकके परसादि ॥८॥

कबीर--कबिरा निन्दक मरि गया, अब क्या कहिये जाइ।
ऐसा कोई ना मिलै, बीडा लेइ उठाइ ॥ ९ ॥

कबीर--जो कोइ निन्दे साधु कों, संकट आवै सोइ।
नरक माहिं जन्मै मरैं, मुक्ति न कबहूँ होइ ॥१०॥

कबीर--कबिरा मेरे साधुकी निन्दा करौ मति कोइ।
जोपै चन्द कलंक है, तऊ उजियारा होय ॥११॥

कबीर--निन्दक तो है नाक बिन, सोहैं नकटा माहिं।
साधू सिरजनहारका, तिनमें सोहैं नाहिं ॥ १२ ॥

कबीर—सातूं सायर मैं फिरा, जंबु द्वीप दे पीठि।
निन्दा पराई ना करै, सो कोइ बिरला दीठि ॥१३॥

अथ अनिन्दाको अंग ॥ ९३ ॥

कबीर—काहूकों नाहिं निन्दिये, सिर हीनता होय।
फिरि फिरि ताकों बंदिये, साधु लक्ष है सोय ॥१॥

कबीर–ऐसा जन कोइ एक है, दूजा भेष अनेक ।
निन्दा बिन्दा क्या करे, जो नहिं हृदये एक ॥२॥
कबीर–दोष पराया देखिकै, चलै हसंत हसंत ।
अपना यादि न आवई, जाकी आदि न अंत ॥३॥
कबीर–तिनका कबहु न निन्दिये, जो पांव तलै है सोय ।
कबहूँ उडि आंखों परै, तो पीर घनेरी होय ॥४॥
कबीर–आपन को न सराहिये, पर निन्दिय न कोय ।
अजहूं लंबा धौंहरा, ना जानौं क्या होय ॥ ५ ॥
कबीर–आपन पौ न सराहिये, और न कहिये रंक ।
क्या जानों किहि रूख तर, कूरा होइ करंक ॥६॥

अथ साकटनरको अंग ॥ ९४ ॥

कबीर–साकटका मुख बिंब है, निकसत वचन भुवंग ।
ताको औषधि मौन है, विष नहिं व्यापै अंग ॥१॥
कबीर–साकट कहा न कहि चलै, सुनहा कहा न खाय ।
जो कौआ मठ हगि भरै, तो मठको कहा नसाय॥२॥
कबीर–साकट सूकर कूकरा, तीनोंकी मति एक ।
कोटि यतन परमोधिये, तऊ न छांडै टेक ॥ ३ ॥
कबीर–टेक न कीजै बावरे, टेक मांहि है हान ।
टेक छांड़ि मानिक मिलै, सतगुरु वचन प्रमान ॥४॥
कबीर–मैं तोहीं कब कह्या, तू साकटके घर जाव ।
बहती नदी जो डूबि मरु, साकट संग न खाव ॥५॥

कबीर-कबिरा साकटकी सभा, तू मति बैठे जाय ।
एक गुवाडै कदि बडै, रोज गदहरा गाय ॥ ६ ॥
कबीर-साकट संग न बैठिये, अपनो अंग लगाय ।
तत्त्व शरीरा झरि परैं, पाप रहै लपटाय ॥ ७ ॥
कबीर-साकट संग न बैठिये, करन कुबेर समान ।
ताके संग न चालिये, पडि है नरक निदान ॥८॥
कबीर-साकट ब्राह्मण मत मिलौ, वैष्णव मिलो चंडाल ।
अंग भरे भरि भेंटिये, मानों मिलै दयाल ॥ ९ ॥
कबीर-साकट सनका जेवरा, भीजे सो करराइ ।
दो अक्षर गुरु बाहरा, बांधा यमपुर जाइ ॥ १० ॥
कबीर-साकटसे सूकर भला, सूचौ राखै गाँव ।
बूडो साकट बापरा, बाइस भरमी नाँव ॥ ११ ॥
कबीर-साकट हमरे कोउ नहीं, सबै वैष्णव झारि ।
संशयतें साकट भया, कहै कबीर बिचारि ॥ १२ ॥
कबीर-साकट ब्राह्मण सेवरा, चौथा योगी जान ।
इनको संग न कीजिये, होइ भक्तिमें हान ॥१३॥
कबीर-साकट संग न जाइये, दे मांगा मोहिदान ।
प्रीति संगाती ना मिलै, छांडै नहिं अभिमान॥१४॥
कबीर-संगति सोई बिगुचई, जो है साकट साथ ।
कंचन कटोरा छोड़िकै, सनहक लीन्ही हाथ ॥१५॥
कबीर-सूता साधु जगाइये, करै ब्रह्मको जाप ।
ए तीनों न जगाइये, साकट सिंह रु साँप ॥ १६ ॥

कबीर-आँखों देखा घी भला, ना मुख मेला तेल ।
साधू सो झगड़ा भला, ना साकट सो मेल ॥१७॥
कबीर-घरमें साकट इस्तरी, आप कहावै दास ।
वो तो हैगी शूकरी, वह रखवाला पास ॥ १८ ॥
कबीर-खसम कहावै वैष्णव, घरमें साकट जोय ।
एक घरां में दोमता, भक्ति कहांते होय ॥ १९ ॥
कबीर-साकट नारी छांडिये, गनिका कीजै नारि ।
दासी है हरि जननकी, कुल नहिं आवै गारि ॥२०॥
कबीर--एक अनूपम हम किया, साकटसों व्यवहार ।
निन्दा साटै उजागरो, कीयो सौदा सार ॥ २१ ॥
कबीर-साकट तें संत होत है, जो गुरु मिलै सुजान ।
राम नाम निज मंत्र दै, छुड़ावै चारू खान ॥२२॥

अथ दयाको अंग ॥ ९६ ॥

कबीर-दया भाव जानै नहीं, ज्ञान कथै बेहद्द ।
ते नर नरकहि जाहिंगे, सुनि सुनि साखी शब्द॥१॥
कबीर-दाया दिलमें राखिये, तू क्यों निरदत होइ ।
सांईके सब जीव हैं, कीडी कुंजर सोइ ॥ २ ॥
कबीर-दया कौन पर कोजिये, कापर निरदइ होइ ।
हम तो भये तमाशगी, नाटक बाजी जोइ ॥ ३ ॥
कबीर-दया कौन पर कीजिये, कापर निरदइ होय ।
साइंके सब जीव हैं, कीडी कुंजर सोय ॥ ३ ॥

कबीर-भावै जाओ बादरी, भावै जावहु गया ।
　　कहै कबीर सुनो भाइ साधो, सबतें बड़ी दया ॥४॥
कबीर-कबिरा दरिया परज्वला, दाझे जल थल झोल ।
　　बस नाहीं गोपाल सो, दाझे रतन अमोल ॥ ५ ॥
कबीर-ऊनै आई बादरी, बरसन लगा अँगार ।
　　ऊठि कबीरा धाह दै, दाझत है संसार ॥ ६ ॥

टीका—बादली माया । अंगार इंद्री ।

कबीर-दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखा कोय ।
　　को पुत्र को बान्धवा, को धन हीना होय ॥७॥
कबीर-दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखा जाय ।
　　जहँ जहँ भक्ति कबीरकी, तहँ तहँ धीरज होय ॥८॥
कबीर-बाग बिछूट मिरगला, ताहि न मारो कोय ।
　　आपेही मरि जायगा, डांवा डोला होय ॥ ९ ॥
कबीर-हम रोवै संसारको, हमको रोवे न कोय ।
　　हमको तो सो रोइ है, जो शब्द सनेही होय ॥१०॥

अथ कुदयाको अंग ॥ ९६ ॥

कबीर-बैरागी है ग्रह तजि, पग पहिरै पैजार ।
　　अन्तर दया न ऊपजे, घनो सहैगा मार ॥ १ ॥
कबीर-बैरागी है गृह तजि, अपना रांधा खाय ।
　　जीव हतै जौंहर करै, बांधा यमपुर जाय ॥ २ ॥
कबीर-आगि जलावै अन दहै, मोटा आरंभ एह ।
　　दीख जम की चोटमें, कीट पतंगा देह ॥ ३ ॥

कबीर-पाकी तें डाकी भला, तिथि त्योहारां लेय ।
जीव सतावै रामका, निति उठि चौका देय ॥४॥
कबीर-पाकी को मन पानरे, कै गोबर कैं गार ।
और जनम कहा पाइये, यह तो चाला हार ॥५॥
कबीर--चौके चोठी चुल्है घन, किस्म बहुत जो जान ।
कहै कबीर आचार यह, जीवको होय अकाज ॥६॥
कबीर-आचारी सब जग मिला, विचारी मिला न कोय ।
कोटि अचारी वारिये, एक विचारी होय ॥७॥

अथ स्वादीको का अंग ॥ ९७ ॥

कबीर-मूँड मुड़ाया मुक्तिको, सालनकूं पछिताय ।
गोडा फूटे योग बिन, लोगनसो शथलाय ॥१॥
कबीर-खाटा मीठा चरफरा, जिह्वा सब रस लेय ।
चोरों कुतिया मिलिगई, पहरा किसका देय ॥२॥
कबीर-खाटा मीठा देखिकै, रसनां मेलै नीर ।
जब लग मन पाको नहीं, काँचो निपत कथीर ॥३॥
कबीर-जिह्वा स्वादके कूपमें, जहाँ हलाहल काम ।
अंग अविद्या ऊपजे, जाइ हृदयतें राम ॥४॥
कबीर-अहार करै मन भावता, जिह्वा केरा स्वाद ।
नाके लगि पूरण भरै, को कहिहैं परसाद ॥५॥
कबीर-माखी गुडमें गड़ि रही, पंखरही लपटाय ।
तारी पीटै सिर धुनै, मीठै वोरी माँय ॥ ६ ॥

अथ अनस्वादीको अंग ॥ ९८ ॥

कबीर–रूखा सूखा खाइके, ठंढा पानी पीव।
देखि बिरानी चोंपड़ी, मत ललचावे जीव ॥१॥
कबीर–आधी अरु रूखी भली, सारी सोग संताप।
जो चाहैगा चोपडी, तौ बहुरि करैगा पाप ॥२॥
कबीर–कबिरा सांई मुझको, रूखी रोटी देय।
चुपडी माँगत मैं डरूँ, मत रूखी छिन लेय ॥३॥
कबीर–अँन पानी का अहार है, स्वाद संग नहिं जाय।
जो चाहे दीदारकों, तो चुपडी चरै बलाय ॥४॥
कबीर–जिह्वा कर्म कछोटरी, तीनो गृहमें त्याग।
कबिरा पहले त्यागिकै, पीछै ले बैराग ॥५॥
कबीर–जिह्वा कर्म कछोटरी, जो तीनो बसि होय।
राजा प्रजा औ यमपुरी, गंजि सकै नहिं कोय ॥६॥
कबीर–जूवा चोरी मुखबिरी, ब्याज बिरानी नार।
जो चाहै दीदार की, इतना वस्तु निवार ॥७॥

अथ सुन्दरीको अंग ॥ ९९ ॥

कबीर–कबिरा सुन्दरि यों कहै, सुनियो कन्त सुजान।
बेगि मिलो तुम आइकै, ना तर तजिहौं प्रान ॥१॥
कबीर–कबिरा जो कोइ सुंदरी, जानि करै व्यभिचार।
ताहि न कबहूं आदरै, परम पुरुष भरतार ॥२॥
कबीर–सुंदरि तो साईं भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहूँ परिहरै, पलक न छांडै पास ॥३॥

कबीर–मन मनसा को मारि कै, नान्हा करि कै पीस ।
तब सुख पावै सुंदरी, पदम झलकै सीस ॥ ४ ॥
कबीर–नवसत साजे सुंदरी, तन मन रही संजोइ ।
पियके मन मानै नहीं, तो पदम किया क्या होइ॥५॥
कबीर–मैं मेरी सब जायगी, तब आवैगी और ।
जबही यह निश्चल रहै, तब पावैगा ठौर ॥ ६ ॥
कबीर–चढी अखारै सुंदरी, माडा पीवसों खेल ।
दीपक जोया ज्ञानका, काम जरै ज्यों तेल ॥ ७ ॥
कबीर–कबिरा सेरी सांकरी, माहीं चूरम चूर ।
कारनवन्ती सुन्दरी, रहै धकासो दूर ॥ ८ ॥

अथ उपजनको अंग ॥ १०० ॥

कबीर–नाम न जानै गांवका, पीछे लागा जाय ।
काल्हि जो काटा भांगसी, पहली क्यों न खुराय॥१॥
कबीर–सीख भई संसार सो, चला जो सांई पास ।
अविनासी मोहिं लै चला, पुरई मेरी आस ॥ २ ॥
कबीर–इन्द्रलोक अचरज भयो, ब्रह्मा परा बिचार ।
कबिरा चाला राम पै, केतिकहार अपार ॥ ३ ॥
कबीर–सदपानी पातालका, काढि कबीरा पीव ।
बासी पावक पारि मुआ, विषय बिलंबा जीव ॥४॥
कबीर–कबिरा हरिका डरपता, ऊन्हा धान न खाव ।
हिरदा भीतर हरि बसै, दाझनते जडराव ॥ ५ ॥

कबीर-गोविंद केरे बहुत गुन, लिखा जो हिरदा मांहि ।
पानी न पीऊँ डरपता, मत वै धोया जांहि ॥ ६ ॥
कबीर-अब तो मैं ऐसा भया, निरमोलिक निजनाम ।
पहले काच कथीर था, फिरता ठामहिं ठाम ॥७॥
कबीर-भवसागर जल विष भरा, मन नहिं बांधे धीर ।
सबल सनेही हरि मिला, उतरा पार कबीर ॥८॥
कबीर-भला सुहेला ऊतरा, पूरा मेरा भाग ।
राम नाम बांका गहा, पानी पग नहिं लाग ॥ ९ ॥
कबीर-सपनामें साईं मिला, सोवत लिया जगाय ।
आँखि न मीचौ डरपता, मत सपना है जाय॥१०॥
कबीर-कबिरा केशवकी दया, संशय मेला खोहिं ।
जो दिन गया हरि भजन बिन,सो दिन सालैं मोहिं ११॥
कबीर-कबिरा जाँचन जाय था, आगे मिला अजाच ।
आप सरीखा करि लिया, भारी पाया साँच ॥१२॥
कबीर-कबिरा बेटीको भाटी लेगइ, बेटाको लेगई भँगार ।
माताको लोई लेगई, कबीर सिरजन हार ॥१३॥
टीका-बेटी बुराई । भाटी भलाई । बेटा बाद । भंगार भजन । माता ममता लोइ लौ ॥

अथ कस्तूरिया मृगको अंग ॥ १०१ ॥

कबीर-कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूँढै बनमांहिं ।
ऐसे घट घट ब्रह्म है, दुनियां जानै नाहिं ॥ १ ॥
कबीर-सो साहिब तनमें बसे, मरम न जानै तास ।

कस्तूरीका मिरग ज्यों, फिर फिर ढूंढै घास ॥२॥

कबीर–कस्तूरी कुंडल बसै, नाभि कमल हरिनाम ।
नर ढूंढै पावै नहीं, गुरु बिन ठामहिं ठाम ॥३॥

कबीर–तेरा सांई तुझीमें, ज्यों, पुहुपनमें बास ।
कस्तूरीके मिरग ज्यों फिरि फिरि ढूंढै घास ॥४॥

कबीर–ज्यों नयननमें पूतलीं त्यों खालिक घटमाहिं ।
मूरख नर जानै नहीं, बाहर ढूंढन जाहिं ॥ ५ ॥

कबीर–कबिरा खोजी रामका, गया जो सिंगल दीप ।
साहिब तो घटमें बसै, जो आवै परतीत ॥ ६ ॥

कबीर–मैं जानूं हरि दूर है, हरि हृदये भरपूर ।
आप पिछानै बाहरी, नीराहीते दूर ॥ ७ ॥

कबीर–घट बढ कहूं न देखिये, प्रेम सकल भरपूर ।
जानेहीते निकट है, अनजानेते दूर ॥ ८ ॥

कबीर–कबिरा बहुत भटकिया, मनलै विषै बिराम ।
ढूंढत ढूंढत जग फिरा, तिनका ओटे राम ॥९॥

कबीर–तिनके ओटे राम है, परबत मेरै भाय ।
सतगुरु मिलि परचा भया, तब पाया घट माय॥१०॥

कबीर–राम नाम तिहुँ लोकमें, सकल रहा भरपूर ।
जो जानै तो निकट है, अनजानेते दूर ॥ ११ ॥

कबीर–जा कारण जग ढूँढ़िया, सो तो घटही माहिं ।
परदा दीया भरमका, ताते सूझै नाहिं ॥ १२ ॥

कबीर–समझा तो घरमें रहै, परदा पलक लगाय ।

तेरा साहिब तुझहि में, अन्त कहूं मत जाय ॥१३॥

अथ विनतीको अंग ॥ १०२ ॥

कबीर–बिनवत हूं कर जोरिकै, सुनु गुरु कृपा निधान ।
संतन में सुख दीजिये, दया गरीबी ज्ञान ॥ १ ॥
कबीर–कबिरा करत है बीनती, सुनौ संत चितलाय ।
मारग सिरजनहारका, दीजै मोहिं बताय ॥ २ ॥
कबीर–कबिरा करत है बीनती, भवसागरके ताँइ ।
बंदे पर जोरा होत है, यमको बरजु गुसांइ ॥ ३ ॥
कबीर–सांई तेरै जोर जुलम है, मेरा होय अकाज ।
बिरद तुम्हारो लाजि है, शरण परेकी लाज ॥४॥
कबीर–क्या मुख ले बिनती करूँ, लाज आवत है मोहि ।
तुम देखत अवगुन किया, कैसे भाऊँ तोहि ॥ ५ ॥
कबीर–बनजारी विनती करै, नारियल लायी हाथ ।
बाडा थासो लदि गया, नायक नाहीं साथ ॥ ६ ॥
कबीर–तुझ में औगुन तुझहि गुन, तुझ गुन औगुन मुझ्झ ।
जो मैं विसरूं तुझ्झकौं, तू मति बिसरै मुझ्झ ॥७॥
कबीर–साहब तुम जनि बीसरौ, लाख लोग मिलिजाहिं ।
हमसे तुमकूं बहुत हैं, तुमसे हमको नाहिं ॥ ८ ॥
कबीर–तुम्हे बिसारे क्यों बनै, मैं किस शरने जाउँ ।
शिव विरंचि मुनि नारदा, तिनके हृदय न समाउँ॥९॥
कबीर–कबिरा भूलि बिगारिया, तू ना कर मैला चित्त ।
साहब गरुवा चाहिये, नफर बिगारो नित्त ॥१०॥

कबीर-कबिरा भलि बिचारिया, कारे कारे मैला चित्त ।
नफ़रभि ऐसा चाहिये, साहबसे राखै हित्त ॥११॥
कबीर-औगुन किया तो बहु किया, करत न मानी हारि ।
भावै बंदा बखशियो, भावै गरदन मारि ॥ १२ ॥
कबीर-औगुन मेरा बापजी, बखश गरीब निवाज ।
जो मैं पूत कपूत हों, तोहि पिताकों लाज ॥१३॥
कबीर-साईं केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं ।
जो दिल खोजों आपना, तो सब औगुन मुझ माहिं १४॥
कबीर-मुझ में गुन एकौ नहीं, जान राय शिर मौर ।
तेरे नाम प्रताप सों, पाऊँ आदर ठौर ॥ १५ ॥
कबीर-मैं खोटा साईं खरा, मैं गाधा मैं गार ।
मैं अपराधी आतमा, साईं शरन उबार ॥ १६ ॥
कबीर-मैं अपराधी जनमका, नख शिख भरो बिकार ।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो संभार ॥ १७ ॥
कबीर-सुरति करौ मम साइयाँ, हम हैं भवजल माहिं ।
आपेही मर जाँयँगे, जो नहिं पकरो बाहिं ॥१८॥
कबीर-और पतित तो कूप है, मैं हों समुद्र समान ।
मोहिं टेक तोह नाम की, सुनियो कृपानिधान॥१९॥
कबीर-औसर बीता अल्पतन, पीव रहा परदेश ।
कलंक उतारो रामजी, भानो भरम अंदेश ॥ २० ॥
कबीर-साईं मेरा सावधान, मै ही भया अचेत ।
मन बच करम न हरि भजा, ताते निष्फल खेत॥२१॥

कबीर–मन परतीति न प्रेमरस, ना कोइ तनमें ढंग ।
ना जानों उस पीव सो, क्यों करि रहसी रंग॥ २२ ॥

कबीर–अबकी जो सांई मिलै, सब दुख आँखों रोइ ।
चरणों ऊपर शिर धरों, कहूँ जो कहना होइ ॥२३॥

कबीर–कबिरा सांई तो मिलैंगे, पूछैंगे कुशलात ।
आदि अंतकी सब कहूँ, उर अंतरकी बात ॥२४॥

कबीर–अंतरजामी एक तू, आतमके आधार ।
जो तुम छाँडौ हाथतैं, तो कौन उतारै पार ॥२५॥

कबीर–भवसागर भारी भया, गहरा अगम अथाह ।
तुम दयाल दाया करो, तब पाऊँ कछु थाह ॥२६॥

कबीर–सतगुरु बडे दयाल हैं, संतन के आधार ।
भवसागर अथाह सों, खेइ उतारै पार ॥ २७ ॥

अथ बेलिको अंग ॥ १०३ ॥

कबीर–कबिरा कड़वी बेलड़ी, कड़वाई फल जोय ।
सिद्ध नाम तब पाइये, जब बेलि बिछोहा होय॥ १॥

टीका–बेली वपु । कड़वा फल काम । सिद्धि साध । बेलि कुलतें निछुड़ ।

कबीर–सिद्ध भई तौ क्या हुआ, चहुं दिस फूटी बास ।
अजहूँ बीज अंकूरमैं, फिर जामनकी आस ॥ २ ॥

टीका–सिद्धि साध भया तो क्या हुआ बीज वासना फेर जाम लैगा ।

कबीर–जो मनमें तो ब्रह्ममें, अनत न कहूँ समाय ।
हरिरस सींची बेलडी, कदे न निर्फल जाय ॥ ३ ॥

कबीर–सिद्ध सहजहि खिर पड़ी, अग्नि जो लागी माहिं ।
सिद्धि बेलि दोऊ जरी, अब फिरि ऊगै नाहिं ॥४॥

टीका–सिद्धि तो साध । अग्नि ज्ञान विरह । बेलि वपु ।

कबीर–मूल जला बेली जली, हुआ बीजका नास ।
सुरति समानी शब्द में, नहिं जामन की आस ॥५॥

टीका–मूल मोह । बेलि वपु । बीज वासना ।

कबीर–अब तो ऐसी है परी, नां तूंबरी ना बेलि ।
जारन आनी लाकरी, ऊठी कोंपल मेलि ॥ ६ ॥

टीका–तूंबरी तृष्णा । बेलि विषम । लकड़ी योग, दूजो लकड़ी काया कूंपल भाव भक्ति ।

कबीर–आगै आगै धा बर, पीछैं हरिया होय ।
बलिहारी ता वृक्षकी, जड़ काटे फल सोय ॥ ७ ॥

टीका–धा ज्ञान विरह। बेलि इंद्री । हरिया भाव भक्ति उपज । वृच्छ वपु। जरै अहँ । फल दर्शन ।

कबीर–जो काटे तौ डहडही, सींचे तो कुम्हिलाय ।
इस गुणवन्ती बेलिका, कछु गुन कहा न जाय॥८॥

टीका–काटे इन्द्रियोंको पोषे नहीं तो डहडही भाव भक्ति उपजे । सींचे पोषे तो कुम्हिलाय । बेलि वपु । दूजा विषय ।

कबीर–आंगन बेलि अकास फल, अन व्याहीका दूध ।
शसा सिंहके धनुषको, खैंचे बांझके सुत सूध ॥९॥

अर्थ–आंगन अंतःकरण । बेलि सुबुद्धि । अकास ऊंची दिशा । फल दर्शन । अन व्याही आत्मा । दूध नाम । शसा शब्द । सिंह संतोष । धनुष ध्यान । बांझ क्षमा । सुत ज्ञान । दूजा अग्नि नाभि कँवल । बेली प्राण-वायु । आकाश दशवां द्वार । अन व्याही सुषुमना नाडी । दूध अमी ।

कबीर-आंगन बेलि अलख है, फल करता अभिलास ।
गगन मण्डलमें शोभिलै, सतगुरु बोलै सास ॥१०॥

कबीर-अनब्याही आकाश है, सुषुमनि सुरति बिलोय ।
अहनिसि तो तारी लगी, जहां प्रेम दूध झर होय॥११॥

कबीर-छाया माया रहित है, सूक्षम है अनमूत ।
आवागमनसे रहित है, सोई बांझका पूत ॥ १२ ॥

कबीर-शशा सिंहके धनुषका, पाया शब्द विवेक ।
भय छूटा निर्भय भया, सब घट देखा एक ॥१३॥

अथ अबिहड़को अंग ॥ १०४ ॥

कबीर-साथी तो सोई किया, दुख सुख जाहि न कोय ।
हिलि मिलि हैके खेलई, कबहूँ न बिछोहा होय॥१॥

कबीर-आदि अंत और मध्य लौं, अभय औ सदा अभंग ।
कबिरा उस करतारका, कदी न छाडै संग ॥ २ ॥

कबीर-अबिहड अखंडित पीव है, ताका निरभय दास ।
तीनौं गुनको पेलिके, चौथे किया निवास ॥ ३ ॥

अथ बेहदको अंग ॥ १०६ ॥

कबीर-कांसे ऊपर बीजुरी, परै अचानक आय ।
तातै निर्भय ठीकरा, सतगुरु दिया बताय ॥ १ ॥

कबीर-हद छांड़ि बेहद गया, लिया ठीकरा हाथ ।
भया भिखारी दीनका, दर्शन भया सनाथ ॥ २ ॥

कबीर-हद छांडि बेहद गया, अबरन किया मिलान ।
दास कबीरा मिलि रहा, सो कहिये रहमान ॥३॥

कबीर-बेहद बिचारो हद तजो, हद तजि मेलो आस ।
सबै अलिंगन भेटिकै, करो निरन्तर बास ॥ ४ ॥
कबीर-निरन्तर बासी निरमला, शून्य स्थूल सो निनार ।
पूरब गङ्गा पश्चिम बहावै, ऐसे बहु उजियार ॥५॥
कबीर-बेहद अगाधी पीव है, ये सब हदके जीव ।
जे नर राते हदसो, ते कदी न पावै पीव ॥ ६ ॥
कबीर-हदमें पीव न पाइये, बेहदमें भरपूर ।
हद बेहदकी गम लखै, तासौं पीव हजूर ॥ ७ ॥
कबीर-हद बँधा बेहद रमैं, पल पल देखै नूर ।
मनवा तहाँ ले राखिया, जहां बाजै अनहद तूर॥८॥
कबीर-हद छांड़ि बेहद गया, शून्य किया अस्थान ।
मुनि जन महल न पावहीं, तहां किया बिशराम॥९॥
कबीर-हद्द मांहिं हदका घनां, लीया जीव तुराय ।
रिगसि बिगसि बेहद गया, मरै न आवै जाय ॥१०॥
कबीर-हद छांडि बेहद गया, रहा निरन्तर होय ।
बेहदके मैदान में, रहा कबीरा सोय ॥ ११ ॥
कबीर-हद्द छाडि बेहद गया, तासों राम हजूर ।
पारब्रह्म परचा भया, अब नियरे तब दूर ॥ १२ ॥
कबीर-हदमें बैठा कथन है, बेहदकी गम नाहिं ।
बेहदकी गम होयगी, तब कछु कथना काहि॥१३॥
कबीर-कबिरा हदके जीव सों, हित करि मुखै न बोल ।

जो राचे बेहद सौं, तिनसौं अन्तर खेल ॥ १४ ॥
कबीर–हदिया सेतो हद रहो, बेहदिया बेहद्द ।
जो जैसा तहा रोगिया, तहा तैसी औषद्द ॥ १५ ॥
कबीर–हदमें रहैं सो मानवी, बेहद रहै सो साधु ।
हद बेहद दोनौं तजैं, तिनका मता अगाध ॥१६॥
कबीर–हद बेहद दोनौं तजी, अबरन किया मिलान ।
कहै कबीर ता दास पर, वारौं सकल जहान ॥१७॥
कबीर–अगह गह अकह कहै, अनभेदा भेद लहाइ ।
अनभै वाणी अगमकी, लेगई संग लगाइ ॥ १८ ॥
कबीर–जहां शोक व्यापै नहीं, चल हंसा उस देस ।
कहै कबीर गुरगम गहो, छांडि सकल भ्रम भेस॥१९॥
कबीर–अंग अठोत्तरसौ कहा, परम पुरुष उपदेश ।
कहैं कबीर अब हरि मिलै, मानौं साख संदेश ॥२०॥
कबीर–जन कबीर बंदन करै, किस बिधि कीजै सेव ।
बार पारकी गम नहीं, नमो नमो निज देव ॥२१॥

अथ आत्मअनुभवको अंग ॥ १०६ ॥

कबीर–आतमअनुभव सुखकी, जो कोइ पूछे बात ।
कि जो कोई जानई, की अपनोई गात ॥ १ ॥
कबीर–आतम अनुभव ज्ञानकी, जो कोइ पूछे बाद ।
सो गुँगा गुड खायके, कहे कौन मुख स्वाद ॥ २ ॥
कबीर–ज्यों गुँगाके सैनको, गुंगेही पहिचान ।

त्यों ज्ञानीके सुखको, ज्ञानी होय सो जान ॥ ३ ॥
कबीर--श्याम सब्ज विधि पंच जे, पीत अरुण अरु स्वेत ।
चक्षुमान अचक्षुको, ज्यों नहिं उपमा देत ॥ ४ ॥
कबीर-ज्यों नरनारीके स्वादको, खसी[1] नहीं पहिचान ।
त्यों ज्ञानीके सुखको, अज्ञानी नाहिं जान ॥ ५ ॥
कबीर-ताको लक्षन को कहे, जाको अनुभव ज्ञान ।
साधु असाधू देखिये, क्यों कर करौं बखान ॥ ६ ॥
कबीर-आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष विषाद ।
चित्र दीप सम ह्वै रह्यो, तजिकर बाद विवाद ॥ ७ ॥
कबीर-कागद लिखे सो कागदी, की व्यवहारी जीव ।
आतम दृष्टि कहां लिखे, जित तित देखे पीव ॥८॥
कबीर-लिखा लिखीकी नाहिं है, देखा देखीकी बात ।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी परी बरात ॥९॥
कबीर-ज्ञानभक्ति बैराग सुख, पीव ब्रह्मलों धाय ।
आतम अनुभव सेज सुख, तहां न दूजा जाय ॥१०॥
कबीर-कहा सिखावन देतहौ, समुझि देखु मन माँहिं ।
सबै हर्फ है द्वात महँ, द्वात न हरफन माँहिं ॥११॥
कबीर-सुषुम्नि माहीं सब गले, मन बुद्धि चित प्रकास ।
छिनक माँहिं परलय भये, को ठाकुर को दास॥१२॥

---

१ खसी. नपुसंक ।

अष्ट उत्तर शत से ये तीन अंग अधिक हैं इसलिये उनको समाप्ति में दिया है यह नहीं समझना कि यह साखी बाहरकी हैं वरन ये भी कबीर साहबकी साखी हैं ।

कबीर–जाग्रत जाग्रत सांच है, सोवन सपना सांच ।
  देह गये दोऊ गये, ज्यों भगली की नाच ॥ १३ ॥

कबीर–अंधरेको हाथी ज्यों, सब काहू को ज्ञान ।
  अपनी अपनी कहत हैं, काको धरिये ध्यान ॥१४॥

कबीर–अंधरनको हाथी सही, है साँचे सगरे ।
  हाथनकी टोई कहें, आँखिन के अँधरे ॥ १५ ॥

कबीर–दूजा होय तो बोलिये, दूजा झगरा सोह ।
  दो अंधरन के नाचतें, कौन काको मोह ॥ १६ ॥

कबीर–निरजानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय ।
  अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥ १७ ॥

कबीर–ज्ञान युक्ति सुनाइये, जो सुनि करे बिचार ।
  सर दासकी स्त्री, कापर करे सिंगार ॥ १८ ॥

कबीर–ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रह्यो निज रूप ।
  बाहर खोजे बापुरे, भीतर बस्तु अनूप ॥ १९ ॥

कबीर–भीतर तो भेद्यो नहीं, बाहर कथै अनेक ।
  जो पै भीतर लखिपरे, भीतर बाहर एक ॥२०॥

कबीर–नैन समाने नैनमें, बैन समाने बैन ।
  जीव समाने बुझमें, रहे ऐन के ऐन ॥ २१ ॥

कबीर–झारी फांसी कूपमें, भभकी पानी माहिं ।
  भरे भभक सब मिटि गई, अब कछु कहनी नाहिं॥२२॥

कबीर–भरो होय तो रीतई, रीतौ होय भराय ।

रीतौ भरो न पाइये, अनुभव सोइ कहाय ॥ २३ ॥

कबीर–वचन वेद अनुभव युक्ति, आनँदकी परछाहिं ।
बोध रूप पुरुष अखण्डित, कहवेमें कछु नाहिं॥२४॥

कबीर–बूझन सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहिं ।
जेते ज्ञानी देखिये, तेते संशय माहिं ॥ २५ ॥

इति आत्मअनुभवको अंग समाप्त

अथ अद्वैत ज्ञानको अंग॥ १०७॥

कबीर–सबै खेलौना खांड मध्य, खांड़ खेलौना माहिं ।
तैसे सब जग ब्रह्ममें, ब्रह्म जगतके माहिं ॥ १ ॥

कबीर–खांड खेलौना दो नहीं, खांड खेलौना एक ।
तैसेही सब जग देखिये, किये कबीर विवेक ॥२॥

कबीर–खांड खेलौना तुम कहो, एक अहै नहिं दोय ।
नाम रूप दीसै पृथक, हस्ती घोड़ा सोय ॥ ३ ॥

कबीर–उपजे एकै खांडते, हस्ती घोड़ा ऊँट ।
खांड बिचारे पाइया, नाम रूप सब झूँठ ॥ ४ ॥

कबीर–त्यों ही एकै ब्रह्मते, जीव ईश जग जान ।
ब्रह्म बिचारे पाइया, नाम रूपको हान ॥ ५ ॥

कबीर–ईश्वरमें अरु जीवमें, ब्रह्म मध्य कबीर ।
त्रिविधि भेद न देखिये, सिंधु बुदबुदा नीर ॥ ६ ॥

कबीर–ज्योंही एकै सीलमें, प्रतिमा विविध प्रकार ।
कहै कबीर त्योंही लसे, ब्रह्म मध्य संसार ॥ ७ ॥

कबीर-दारु मध्ये ज्यों पूतरी, पूतरी मध्ये दारु ।
कहे कबीर त्यों ब्रह्ममें, भाषत जग विस्तार ॥ ८ ॥
कबीर-कबिरा लोहा एक है, गढ़नेमें है फेर ।
ताहीका बखतर बना, ताहीका शमशेर ॥ ९ ॥
कबीर-नीर मध्ये ज्यों बूदबुद, बुदबुद मध्ये नीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत कबीर ॥ १० ॥
कबीर-चीर मध्ये ज्यों तंतु है, तन्तु मध्ये ज्यों चीर ।
त्योंही जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत कबीर ॥ ११ ॥
कबीर-आंधी यथा समीर मध्य, आंधी मध्य समीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत कबीर ॥ १२ ॥
कबीर-तम मय शीत न पाइये, ज्यों पावक विस्तार ।
जीव ईश जग जोइले, त्योंहीं ब्रह्म बिचार ॥ १३ ॥
कबीर-कबीरा भिन्न न देखिये, जगत ईश अरु ब्रह्म ।
सब मध्ये एक ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य सब भर्म ॥ १४ ॥
कबीर-ज्यों मृतिका घट मध्ये, घट मृतिका मध्ये जोइ ।
त्योंही जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्ये जग सोइ ॥ १५ ॥
कबीर-जैसे स्याही अंक मध्ये, स्याही मध्ये अंक ।
त्योंही जगमध्ये ब्रह्म है, ब्रह्ममध्ये जगत निशंक ॥ १६ ॥
कबीर-भूषण मध्ये कनक ज्यों, भूषन कनक मँझार ।
त्योंही जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्ये जग निर्धार ॥ १७ ॥
कबीर-दरिआव मध्ये मौज ज्यों, मौज मध्ये दरिआव ।

त्योंही जगमध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्ये जगत सुभाव॥१८॥

कबीर–ज्यों बधूरा बाव मध्य, मध्य बधूरा बाव।
त्योंही जग मध्ये ब्रह्महै, ब्रह्ममध्ये जगत सुभाव॥१९॥

कबीर--शरीर मध्य ज्यों अंग हैं, अंगन मध्य शरीर।
त्योंही जग मध्ये ब्रह्महै, ब्रह्म मध्य जगत कबीर॥२०॥

कबीर–व्योम मध्य ज्यों घटमठ, अरू चिदा कास आकास।
कहे कबीर यो ब्रह्ममें, जीव ईश जगभास॥ २१ ॥

कबीर–अण्डज स्वेदज उद्भिज, अरु पिण्डज आतमरूप।
कहे कबीर विचारिके, यों ज्यों सूरज धूप॥२२॥

कबीर–पावक एक अनेक जो, दीपक और मसाल।
कहे कबीर त्यों जानिये, ब्रह्म मध्य जगजाल॥२३॥

कबीर–हथिआर मध्ये लोह ज्यों, लोह मध्य हथियार।
कहे कबीर त्यों देखिये, ब्रह्म मध्य संसार॥ २४ ॥

पानी मध्ये लीक ज्यों, लीक मध्य ज्यों पानि।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म जगत में जानि॥ २५ ॥

कबीर–ज्यों मृतिका घट फेन जल, कुण्डल कनक सो आय।
त्यों कबीर जग ब्रह्मते, भिन्न कहूं न दिखाय॥२६॥

कबीर–जैसे तरुवर बीज महँ, बीज तरुवरै माहिं।
कहें कबीर विचारिके, जगत ब्रह्मके माहिं॥ २७ ॥

कबीर–जीव ब्रह्म ब्योरा नहीं, जीव ब्रह्म यक अंग।
ज्यों कनककुण्डल मृद्दु, घट सार फेन तरंग॥२८॥

कबीर–जैसे सूरज धूप मध्य, सूरज मध्ये धूप ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत स्वरूप॥२९॥

इति अद्वैतको अंग समाप्त ।

रसीदपुर (शिवहर) निवासी,

श्रीमान् बख्शी गोपाल लाल साहब—

के पुस्तकालयसे प्राप्त

★

श्री कबीर परिचयकी साखी

(ज्ञान काण्ड)

१०८

★

स्वामी श्रीयुगलानन्द-कबीरपंथी, भारत-पथिक द्वारा संशोधित

सत्य

श्री गुरुभ्यो नमः

अथ कबीर परिचयकी साखी प्रारम्भ

शब्द

कबीर काहू अस कह्यो, कान काग लिय जाय ॥
कान न टोवै बावरा, खोजै दहुँ दिशि धाय ॥ १ ॥
चोर चला चोरी करन, किये साहुका भेष ॥
गहे सब जग मूसिया, चोर रहा अवशेष ॥ २ ॥
अवशेषे जग मूसिया, सेंध जो दीन्हों कान ॥
ब्रह्मादिक सनकादि जग, दुखिया भये निदान ॥ ३ ॥
कानते मुखमें मुखते करमें, चुटकी चमके नूर ॥
तेहटा खेती चोरवे किया, सब पंडित भये मजूर ॥४॥
मुखमें करमें काखमें, हियमें चोर बकभौन ॥
कहे कबीर पुकारिके, पंडित चीन्हों कौन ॥ ५ ॥
त्याग करनको सब चले, हुआ नहीं वैराग ॥
जो चोरवे जग मूसिया, सबके पीछे लाग ॥ ६ ॥
पूरण कला होयके, चोर दिखाई देत ।
सुर नर मुनि जग आंधरा, चीन्हि कोइ नहिं लेत ॥७॥
साहु भरोसे चोरके, सदा करै इतबार ॥
कहे कबीर तिहुँ लोकमें, चोर भया करतार ॥ ८ ॥

शब्द करावे साधना, शब्द न चीन्हा जाय ॥
योग जप तप आदि लो, मरे कमाय कमाय ॥ ९ ॥
कोटिन साधन करि मरे, ब्रह्म आपु जो होय ॥
बिना शब्द पारख किये, शून्यमें गये बिगोय ॥ १० ॥
ब्रह्म ईश जग आदि लो, हित जाने सब कोय ॥
शब्दके मारे सब मरे, चीन्हे बिरला कोय ॥ ११ ॥
बिनु पगु परकी चीडिया, भूतल नभ उड़ि जाय ॥
सब कोई लगे बझावने, बागुर तोरि पराय ॥ १२ ॥
शब्द स्पर्श औ रूप रस, गंध विषय कहे वेद ॥
उपदेशत एक ब्रह्म पुनि, केहि विधि विषय निषेद॥१३॥
विषय कहै चीन्हे नहीं, विषय बत.वे ईश ॥
सो विष विषयको पान करि, बड बड मुये मुनीश ॥१४॥
शब्द विषय कहि ब्रह्म उदय, गुरुवन कीन्हो फेर ॥
मातु सुतहिं विष देइ जो, का वश बालक केर ॥ १५ ॥
शब्द आदि पांचो विषय, करें अचार्य्य बखान ॥
शब्द त्रिषय ठहरायके, भजन कहैं भगवान ॥ १६ ॥
अपने मुखकी बारता, सुनै न अपने कान ॥
जो ठहरा शब्दो विषय, विषय ब्रह्म भगवान ॥ १७ ॥
कबीर व्यापक पद्मिनी, व्यापि रही संसार ॥
ते सुत जायो ब्रह्म इक, ताहि कहै करतार ॥ १८ ॥
कबीर पदारथ पद्मिनी, मानै तीनो लोक ॥

कहै कबीर पद चीन्हे बिना, देत पदारथ थोक ॥१९॥
कबीर पदारथ पद विषे, चीन्हत नाहीं कोय ॥
अन्ध हाथ जस दरपण, दिनहिं अंधेरा होय ॥ २० ॥
कबीर पदारथ पद अरथ, सो तो पदहिं दिखाय ॥
और पदारथ कौन है, पंडित कहो बुझाय ॥ २१ ॥

आत्मज्ञान वर्णन

कबीर अपने रूपको, कहे जो भाष्नि होय ॥
ऐसा भ्रम जेहि ऊपजा, सो जिव गया बिगोय ॥२२॥
अपनेको जाना चहै, कहै जो ऐसी बोल ॥
कहै कबीर सो जीयरा, भया सो डामाडोल ॥ २३ ॥
पूर्वाचार्य्य वेदान्तके, निरूपत हैं अद्वैत ॥
केहि निरूपि उपदेशहिं, भीतर भासे द्वैत ॥ २४ ॥
व्यास कहै जग है नहीं, हुआ न कबहीं होय ॥
कह कबीर उपदेश कहँ, कारण कहिये सोय ॥ २५ ॥
पूरव गुरु अद्वैतके, कल्पै विविध प्रकार ॥
भीतर भासे द्वैत जो, ताकर नाहिं विचार ॥ २६ ॥
कबीर दीपक लेसिके, करै अंधेरी दूर ॥
सबै अंधेरी सकेलिके, रहै गांड तर पूर ॥ २७ ॥

माया स्वरूप

माया बैठी ब्रह्म होय, अद्वैत औ आवरण ॥
जग मिथ्या दरशायके, पैठो जो अंतःकरण ॥ २८ ॥

कबीर माया रामकी, भई रामतें शेष ॥
व्यापक सब कहे राम है, रमा राममों देष ॥ २९ ॥
कबीर माया रामकी, चढी राम पर कूद ॥
हुकुम रामका मेटिके, भई रामतें सूद ॥ ३० ॥

वाणी

कबीर अक्षर शुद्धमें, निकलै अर्थ न कोय ॥
मात्रा संधि विकारतें, पंडित अर्थी होय ॥ ३१ ॥
अक्षर मात्रा संधि मिलि, भासे अरथ विचार ॥
मात्रा संधि जुदा किये, पंडित होय गँवार ॥ ३२ ॥
बरण संधि तानी रची, मात्रा भरणी दीन्ह ॥
जगत ईशकी चूनरी, पहिरि कबीरा लीन्ह ॥ ३३ ॥
सूत पूराना जोडते, बैठ विनत दिन जाय ॥
बरण बीन बाना किया, जोलहा पडा भुलाय ॥ ३४ ॥
जो सबके उरमें बसी, ताहि न चीन्है कोय ॥
देवलोकमें उरवसी, ताहूके उर सोय ॥ ३५ ॥
कबीर सब घर अप्सरा, देवन दीन वताय ॥
आपुको छरै शो अप्सरा, चितवत मोहा जाय ॥ ३६ ॥

वाणीके चार प्रकार

परी श्रवण द्वारे सोई, ताको परा बखान ॥
बसी हियेमें आइके, सोई पश्यन्ती जान ॥ ३७ ॥
बसी तासु निश्चय भई, मध्यमा कहिये सोय ॥

बोले जिभ्या द्वार होय, सो तो बैखरी होय ॥ ३८ ॥

परा पश्यन्ती मध्यमा, बैखरि भई सु तीन ॥
कहै कबीर यह बैखरी, चीन्है सो परवीन ॥ ३९ ॥

श्रवण मननसों बैखरी, निदिध्यासन साक्षात ॥
पर प्रकाशक ज्ञानको, स्वयं कहे वेदान्त ॥ ४० ॥

श्रवण मनन निदिध्यासन, साक्षातकार जो होय ॥
पर प्रकाशक ज्ञान यह, चीन्है बिरला कोय ॥ ४१ ॥

अन्धे परम परायके, देखो तिन्हकी न्याव ॥
रते शब्द शब्दार्थमें, गुण अकाशते भाव ॥ ४२ ॥

कबीर काली सुन्दरी, भई जगतकी ईश ॥
ब्रह्मादिक सनकादि जग, सबै नवावत सीश ॥ ४३ ॥

कबीर काली सुन्दरी, भई सो पूरण ब्रह्म ॥
सुर नर मुनि भरमाइया, कोई न जानै मर्म ॥ ४४ ॥

कबीर काली सुन्दरी, बैठी ईश्वर होय ॥
ब्रह्मादिक सनकादि जग, जोवै मुख सब कोय ॥४५॥

कबीर काली सुन्दरी, बैठी अल्लह होय ॥
पीर पैगम्बर औलिया, मतवज्जह सब कोय ॥ ४६ ॥

कबीर काली सुन्दरी, होइ बैठी अल्लाह ॥
पढे फातहा गैबका, हाजिरको कहै नाहिं ॥ ४७ ॥

कबीर काली सुन्दरी, कल्मा कियो कलाम ।
पीर पैगम्बर औलिया, पढे सो करै सलाम ॥ ४८ ॥

कबीर काली सुन्दरी, भइसो अल्लह मियां ॥
पीर पैगम्बर औलिया, दगा सबन्हि को दियाँ ॥४९॥
झूँठ जवाहिरको बनिज, परै सो तब लगि पूर ॥
जब लगि मिले न पारखी, घन पर चढै न कूर ॥ ५० ॥
कबीर इन्द्रीते है नहीं, हुआ न कबहीं होय ॥
ताको इन्द्री ज्ञानकरि, पावन चाहै लोय ॥ ५१ ॥
अविनाशी पूरण कहै, व्यापक चैतन्य जोय ॥
ये सब इन्द्री ज्ञान करि, थापति इन्द्री होय ॥ ५२ ॥
कबीर इन्द्री ज्ञानको, सब कोइ करै भरोस ॥
सुर नर मुनि छलि मारयो, बड बड बात फरोस ॥५३॥
बात फरोशी करि मुये, सरयो न एको काम ॥
बात फरोशी ब्रह्म इक, बात फरोशी राम ॥ ५४ ॥
माया बैठी शेष होइ, कहै सो ज्ञान अतीत ॥
नेति नेति उपदेशि के, भई सो शब्दातीत ॥ ५५ ॥
कबीर वरणहिं फेरिकै, अवरण भई छिनार ॥
बैठी आपु अतीत है, कियो अनन्त भतार ॥ ५६ ॥
कबीर बैठी शेष होय, बिना रूपकी रांड ॥
गाल बजावै नेति कहि, कियो भताराहिं भांड ॥५७॥
कबीर चञ्चल नारिकी, मोहि नाहीं इतबार ।
शेष बतावत नेति कहि, बैठी होइ हुशियार ॥ ५८ ॥
अध्यारोप जाके जवन, ताहि गले अपवाद ॥

अध्यारोप अज्ञानको, कोइ न जानै आद ॥ ५९ ॥
अध्यारोपी ब्रह्मके, करै ब्रह्म अपवाद ।
अध्यारोप अज्ञानको, शब्द न चीन्है आप ॥ ६० ॥
अव्याकृत दुखरूपको, सब मानै मन मोद ॥
ब्रह्मादिक से बालका, खेलहिं जाके गोद ॥ ६१ ॥
डाइन सर्व शक्ति यह, लडकन्हि कियो पिहाल ॥
सुख कलेजा काढिकै, गाड्यो सबहिं पताल ॥ ६२ ॥
जैसे तिलइ काठ जरि, कोइलामें अंकूर ॥
तैसे संसृति जीवके, अव्याकृत भरिपूर ॥ ६३ ॥
भास जहं जहं जो करै, तहँ तहँ तम अधिकाय ॥
अव्याकृत दुःख रूपको, बोधै सुख दरशाय ॥ ६४ ॥
ज्ञानी हत्या पाप कहे, मानै लागत सोय ॥
जल करि मानै अग्निको, शीतल काहे न होय ॥६५॥
और वृक्षको कल्पतरु, मानै करि अनुमान ॥
सकल पुरावै कामना, तो सांच एकता ज्ञान ॥ ६६ ॥
कबीर सम्भल जहरको, मानै खोवा दूध ॥
जौं पाय पै गुणकरै, तौं एकै हैं शूध ॥ ६७ ॥
तौमैं जानों एकता, आगिसे लोग नहाय ॥
जल छूये जौ अंग जरै, तौ सब एक पतिआय ॥ ६८ ॥
आतमज्ञान उत्पति किये, झूठनको सरदार ॥
कृत्रिमको कर्त्ता कहै, पढि गुनि भये लबार ॥ ६९ ॥

केही उपदेशत आतमा, कोकर आतम ज्ञान ॥
कृत्रिम बडा कि कर्त्ता, कहु पंडित अमान ॥ ७० ॥

नास्तिक

नास्तिक नास्तिक सब कहैं, नास्तिक लखै न कोय ॥
कृत्रिमको कर्त्ता कहै, नास्तिक कहिये सोय ॥ ७१ ॥
जाके इष्ट प्रत्यक्ष नहीं, लीन परोक्षहिं होय ॥
कहहिं कबीर पुकारिकै, नास्तिक कहिये सोय ॥७२॥
है ताको जानै नहीं, तासों बेमुख होय ॥
नाहीं को जाना चहै, नास्तिक लक्षण सोय ॥ ७३ ॥
है ताको जानै नहीं, नाहींको करे मान ॥
कहहिं कबीर पुकारिकै, सो नास्तिक अज्ञान ॥ ७४ ॥

वाममार्गी

माया जाको इष्ट है, दाहिन पंथ नहीं सोय ॥
कहहिं कबीर पुकारिकै, बामते बामिक होय ॥ ७५ ॥
हृदया भासै सर्प जेहि, रज्जु महँ कल्पै सोय ॥
रज्जु लखि मिथ्या कहत है, पुनि रज्जु सत अहि होय॥ ७६॥
जो अहि कबहुँ न देखिया, रज्जुमें नहीं दरशाय ॥
सर्प ज्ञान जाको भया, सो जहँ तहँ देखि भयाय॥ ७७ ॥

देहात्मवाद

कबीर जीवको देह करि, मानै सो अज्ञान ॥
तन जड जीव जानै नहीं, जीव देहको जान ॥ ७८ ॥

सगुण निर्गुण

निर्गुण सगुण करि जीवको, मानै मूरख सोय ॥
निर्गुण सगुण यह देहको, लक्षण जानो दोय ॥ ७९ ॥
कबीर लक्षण देहको, निर्गुण सगुण है दोय ॥
गुप्त रहै तब निर्गुण है, प्रगट सगुण सो होय ॥ ८० ॥
अन्धरा हगै पहार चढ़ि, मोहि न कोई देख ॥
कहहिं कबीर पुकारिकै, आपु सरीखे लेख ॥ ८१ ॥

नामरूप

कबीर आचार्य्य सब कहैं, नाम रूपका ज्ञान ॥
नाम रूप चीन्हे नहीं, रूप बखानै आन ॥ ८२ ॥
विना रूपका नाम जो, केते जगमें जान ॥
विना नामका रूप कोइ, अबतक सुना न कान ॥८३॥
क्षणमांही बोधिक भये, ज्ञान कथे अधिकाय ॥
क्षणमें संशय ऊपजै, दे ठगनी हुदकाय ॥ ८४ ॥
ठगनीके हुदकावते, क्षणमें ब्रह्म स्वरूप ॥
क्षणमाहीं संशय भया, ब्रह्म भया भ्रमरूप ॥ ८५ ॥
कबीर ठगनी भूतनी, भरि भरि आवै गात ॥
कबहूं संशयते भरी, कबहूँ भरी वेदान्त ॥ ८६ ॥
कबीर ब्रह्म पिशाच यह, जबर बड़ा मुहँजोर ॥
बड बड गुणी झारन लगे, बकन लगे तेहि कोर ॥८७॥

कबीर हिन्दू तुरक पर, खेलै एकै भूत ॥
काजी पंडित हारिया, झारिन्हि करिकारि कूत ॥ ८८ ॥

त्रिपुटी

ज्ञाता ज्ञेय अरु ज्ञान जो, ध्याता धेय अरु ध्यान ॥
द्रष्टा दृश्य अरु दरश जो, त्रिपुटी शब्दा भान ॥ ८९ ॥
लाहल पारख शब्दके, जो परखे सो पाक ॥
तामें जो हल्ला करै, सोई होय हलाक ॥ ९० ॥
कबीर शब्दातीतको, शब्द बतावै भेव ॥
शब्द न चीन्है बावरा, करै शब्दका सेव ॥ ९१ ॥
जो जो सुनै गुणै सोई, देखे कहै बनाय ॥
कहें कबीर गुण शब्दका, पारख बिनु जहँडाय ॥ ९२ ॥
स्वपने सत्य देखाइकै, जागे मिथ्या होय ॥
कहहिं कबीर छिनारिकी, कला न चीन्है कोय ॥ ९३ ॥
हिंदूका गुरु बाभना, निति उठि करै प्रनाम ॥
तुरक मुरीद है तीसका, पंच बखत करै सलाम ॥९४॥
याको आशिष देत नहिं, काको दुवा न देत ॥
सुर नर मुनि औ औलिया, रगरै नाक अचेत ॥९५॥

अद्वैत

कबीर व्यास वेदान्तमें, करै अद्वैतहिं बोध ॥
कहहिं कबीर निगुरा भया, होइ सतसंग विरोध ॥९६॥
कबीर बाद अद्वैतकी, संत विरोधी जान ॥

विमुख होइ सतसंगतै, चाहै निज कल्यान ॥ ९७ ॥
सत संगति सुख द्वैतसों, समुझै नाहिं गँवार ॥
बाद करै अद्वैतकी, पढि गुणि भया लबार ॥ ९८ ॥
बाद करै अद्वैतकी, भासै द्वैत प्रमान ॥
कहैं कबीर चीन्है नहीं, यह सूक्षम अज्ञान ॥ ९९ ॥
कबीर बाद अद्वैतकी, कलप्यो व्यास बहूत ॥
तरु लागा अकाशमें, फल खाय बाँझके पूत ॥ १०० ॥
कबीर व्यास वेदान्तमें, कहैं आतम निरलेप ॥
उपनिषद बावन जो कही, कहा लगाय कलेप ॥ १०१ ॥
जो आतम निरलेप है, तो उपदेश मिथ्यांत ॥
बिना रोगके औषधी, भयो वैधको भ्रान्त ॥ १०२ ॥
कबीर चेतन द्वैत है, अद्वैत मुआ जड होय ॥
चेतन बडा कि जड मुआ, पंडित कहिये सोय ॥१०३॥
कबीर अद्वैत जड मुआ, भास जीवको होय ॥
भास बड़ा कि भासकर, पंडित कहिये सोय ॥ १०४ ॥
एक ब्रह्म अद्वैत जो, व्यास कह्यो वेदान्त ॥
सो सतसंगति द्वैत बिनु, कबहुँ न छूटे भ्रान्त ॥१०५॥
उपमा व्यापक ब्रह्मकी, जिमि अकाश सबमाहिं ॥
और तरुहिं कहे कल्पतरु, पूजै आश कि नाहिं॥१०६॥
प्यास लगी है जलकी, जल जानै सब माहिं ॥
कहैं कबीर यहि ज्ञानते, छूटै यास कि नाहिं ॥१०७॥

एक ब्रह्म व्यापक जगत, ज्यों सब माहिं अकास ॥
मैं तोहि पूछों पंडिता, है पदार्थकी भास ॥ १०८ ॥
जो वह ब्रह्म पदार्थ है, काको भासत सोय ॥
को उपदेशै को सुनै, बडा अचम्भा होय ॥ १०९ ॥
मन बुद्धि वाणी के परे, करै सो ब्रह्म निरूप ॥
वाणी ब्रह्म न लखि परै, गुन अकाश अनुरूप ॥११०॥
मन बुद्धि वाणीके परे, वाणी करै निरूप ॥
कहैं कबीर पारख बिना, भया भिखारी भूप ॥१११॥
कबीर जब यह जग नहीं, तब रहे एक भगवान ॥
जिन्ह यह देखा नजरसों, सो रहे कौन ठिकान ॥११२॥
जब यह दुनियां थी नहीं, तब रहे एक खुदाय ॥
जिन्ह यह देखा नजरसों, सो केहि ठाम रहाय ॥११३॥

तत्त्वमसि

ईश जीव अरु ब्रह्म जो, तत्त्वमसि कहे वेद ॥
कहैं कबीर यह तीनि पद, केहि उपदेशत भेद ॥११४॥
जीव ईश माया सहित, कहै अनादिक जोय ॥
कहैं कबीर यह तीनि पद, केहि उपदेशन होय ॥११५॥
जीव ईश अरु माया, कहे जो जगत अनाद ॥
कहैं कबीर ताको भया, गुरु उपदेशन बाद ॥ ११६ ॥
एकोहं बहुस्याम कहि, ईश करत उपदेश ॥
एक अनेक आपे भये, कासों कहत संदेश ॥ ११७ ॥

आपुहिं एक अनेक होइ, बोल्यो ईश सुजान ॥
उपदेशन काको करे, काहि लगा अज्ञान ॥ ११८ ॥
एकोहंबहुस्याम मैं, काहि लगा अज्ञान ॥
को मूरख को पंडिता, केहि कारण बौआन ॥११९॥
एकोहं दुतिया नहीं, महापुरुष कह वाक ॥
जो दिलमें दुतिया नहीं, कासो बोलहिं ताक ॥ १२० ॥
एकोहं आपुहि भयो, दुतिया दीन्हों काटि ॥
एकोहं कासों कहै, महापुरुषकी भ्रांटि ॥ १२१ ॥
कबीर पांचहु तत्त्वको, पांच सुभाव प्रधान ॥
तामें जो कहे एकता, सो निगुरा अज्ञान ॥ १२२ ॥

जैन धर्म्म

पटद्रव्य जैनी यती, ताको यह निरधार ॥
जीव पुदगल अधरम धर्म, काल अकाश विचार ॥१२३॥
पटद्रव्य यह मानिके, जैनिहिं चित्त हुलास ॥
कहहिं कबीर उपदेश केहि, पूरब केहि भई भास॥१२४॥
जैनी साधन बहु किया, मुक्ति न आई हाथ ॥
जेहि दुख चाहै मुक्तिको, सो दुःख उनके माथ ॥१२५॥
जैनी साधन मोक्ष हित, करै कष्ट बहु भांत ॥
जेहि सुख नित साधन करै, होइ सो आतम घात॥१२६॥
जैनी जैन कमाइया, कर्त्ता ईश बिसारि ॥
चाहत हैं जय कत्रिमकी, करि करि कर्म फुसारि॥१२७॥

कबीर जैनी लोभिया, ठगके हाथ बिकाय ॥
मुक्ति अकाशके ऊपरे, सुनि सुनिके ललचाय॥१२८॥
कबीर तिर्थंकर जैनके, चौबीसो भये मोख ॥
मुक्ति कहै पुदगल छुटे, ग्रंथ कियो किमि चोख॥१२९॥
मुक्ति भई जेहि जैनकी, चौबिस आदिक और ॥
पुदगल उनकी छुटगई, मचन कहा केहि ठौर ॥१३०॥
ऋषभ आदि जेहि बन रहैं, तेहि बन लागी आग ॥
घेरेमें सब जरि मुये, दोष अठारह त्याग ॥ १३१ ॥
जीभि कमान बचन शर, पनच श्रवन लगि तान ॥
ऋषभ देवसे धनुष धर, मारयो यह षटबान ॥ १३२ ॥
यहि छौ बानके लागते, जैनी भये अचेत ॥
लागी मूर्छा करमकी, दुःख भोगें सुख हेत ॥ १३३ ॥
काली कुत्ती ऋषभकी, साधन जुत्ती खाय ॥
दोष अठारह चोर पर, षटमुख भूकै धाय ॥ १३४ ॥
काली बिल्ली ऋषभकी,, षट पकवान बनाइ ॥
आये यति होइ जैन घर, भोजन कछुवो न खाइ॥१३५॥
कबीर जैनीके हिये, बिल्लीकी इतवार ॥
साधन व्यंजन मोक्ष हित, सौंपेउ तेहि भण्डार ॥ १३६ ॥
काली कुत्ती ऋषभकी, अनादि दन्त षट चोख ॥
साधन बनाहिं खदेडिकै, मारै सावज मोख ॥ १३७ ॥
कबीर बाणी ऋषभकी, रानी भइ सरदार ॥

जैनीके शिर मारिया, साधन दुःख पैजार ॥ १३८ ॥
कबीर चोरवा जैन घर, मारयो साधन सेंधि ॥
सुख धन मूस्यो तिनहिको,रहा सकल दुख बेधि॥१३९॥
ऋषभ आदि जेते जैन, अव्याकृत गुण मूल ॥
जिन षट द्रव्य बुझाइया, है सोइ कारण मूल ॥१४०॥
कबीर जो पै मुक्ति होइ, क्षुधा पिपासा छोडि ॥
तो काहे आहार देइ, जैनिक मइया भोडि ॥ १४१ ॥
कबीर जैनिक मइया, जैनी धर्म कमाय ॥
साधन गुण जानत रही, तो काहें दूध पिलाय ॥१४२॥
बेस्या औ जैनी यती, दो पथ एके आहि ॥
मोल खरीद बेस्या सती,यति सों मोल बिसाहि ॥१४३॥
मोल खरीद मुडिया करे, मुये मुक्ति मुकाम ॥
कहें कबीर यहि जगतमें, जैनिक यती गुलाम ॥१४४॥
कबीर तिथंकर जैनिके, कियो अमोक्षी बाच ॥
मुक्ति कहें पुदगल छुटै, ग्रंथ भये सब कांच ॥ १४५ ॥
मोक्ष मुख चूंमन लगे, पटके छौ धुनि धुनि बजाय ॥
मारि तमाचा साधना, पटके जब खिसियाय ॥१४६॥
साधन सब लावा लखै, सिद्धि लखै सो बाज ॥
शब्द विवेकी पारखी, सिद्धनके शिरताज ॥ १४७ ॥
सेव्य सेव्य सब कोइ कहै, सेव्य न जानै कोय ॥
सेव्य कहत हैं सेव कहँ, लघुता गुरुता होय ॥ १४८ ॥

सम्प्रदाय

कबीर गुरु बिनु सम्पदा, और न देखा कोइ ॥
और सम्पदा जों कहें, ताहूको गुरु होइ ॥ १४९ ॥
कबीर जो गुरु बेमुखी, तेहि ठौर न तीनो लोक ॥
चौरासी भरमत फिरे, भोगै नाना शोक ॥ १५० ॥

विधिनिषेध

विधि निषेध दुइ बातमें, शास्त्र वेद कुरान ॥
भावै कागजले कहै, भावै मुखहिं प्रमान ॥ १५१ ॥
विधि निषेध दुइ बातमें, सकल बातकों जान ॥
वाक्यविलास जहां जो करे, विधिनिषेधकी खान॥ १५२॥
जैसे पूर्वा पौनतें, फल जल फीका होय ॥
तैसे गुरु उपदेशतें, फीका कर्म विलोय ॥ १५३ ॥

ज्ञान

ज्ञान विचारत सकल जन, चौरासी दरशाय ॥
एक मिटावनको चलै, एक खडी होय जाय ॥ १५४ ॥
एक ब्रह्म अखण्ड जो, करै आचार्य बखान ॥
पूरब पछिमके पंडिता, केहि उपदेशत ज्ञान ॥ १५५ ॥
मन बुद्धि वाणीको कहत, गम्य ब्रह्ममें होय ॥
एक ब्रह्म यह किन कह्यो, पंडित कहिये सोय ॥१५६॥
वेद नेति नेति जेहि कहे, जहां न मन ठहराय ॥
मन वाणीको गम्य नहीं, ब्रह्म कहा किन आय॥१५७॥

कबीर बाणीके पढे, जगमें पंडित होय ॥
बिनु बाणी को पंडिता, देखा सुना न कोय ॥१५८॥
ज्यों मृग भ्रमके है नदी, त्यों अद्वैतको भास
दौडत प्यासे मृग मुआ, करि मृगजलकी आस ॥१५९॥
मरुस्थल के कूप ज्यों, त्यों अद्वैतको वाद ॥
प्यासे मुआ मुसाफिरा, बरतन निर्जल स्वाद ॥१६०॥
प्रतिव्योम जीवहिं कहे, व्यास वेदान्त बखान ॥
सुख दुःख जेहि व्यापे नहीं, केहि उपदेशत ज्ञान॥१६१॥
जो यह जीव है नहीं, व्यास हुआ को होय ॥
दुइ अँधरेके नाचमें, काको मोहै कोय ॥ १६२ ॥

नास्तिका

अनादि सिद्ध जो कहत है, माया जीव अरु ईश ॥
कहें कबीर सो अकर्ता बादी, नास्तिकविस्वा बीश॥१६३॥
जो ठहरा अनादि जग, तो अज्ञान अनाद ॥
गुरु आचार्य्य केहि कारणे, वेदादिक मत बाद ॥१६४॥
गोरी पर हरदी चढी, भइसो साँवरी रंग ॥
सांइसें परदे सुती, छुवे न देती अंग ॥ १६५ ॥
गोरी ते कारी भई, सबै मनावत भाग ॥
रूपवरण गुण कछु नहीं, भया अचल सोहाग ॥१६६॥
दिलरी गइ देशान्तरे, लाई केतकी फूल ॥
छूअतहीं भवँरा मुआ, सुख कारण दुख मूल ॥१६७॥

पन्द्रह तत्त्व स्थूल है, नव तत्त्व लिंग शरीर ॥
चौविस मृतक जेहि सों जिये, सो जिन्दा जीव कबीर १६८॥

शंका

कबीर पद्धति रमाकी, जगमें माने जोय ॥
रमा पुरुषकी स्त्री, पंडित कहिये सोय ॥ १६९ ॥
कबीर ब्रह्माणी औ पारवती, कहत लक्ष्मी जाहि ॥
इनकी करै उपासना, वामिक कहिये ताहि ॥ १७० ॥
ब्रह्म शब्दको पंडितन्हि, नपुंसकही ठहराय ॥
ताकी इच्छातें जगत, कहत न मूढ लजाय ॥ १७१ ॥
जानो चाहै आतमा, जानै को है सोय ॥
कहु पंडित यहि देहमें, आतम एक कि दोय ॥१७२॥
कबीर जो एक आतमा, केहि उपदेशन होय ॥
को जाने एक आतमा, पंडित कहिये सोय ॥ १७३ ॥
जाग्रत आतमा देहमें, करै सकल प्रमान ॥
जब सुषुप्ति स्थूल नहिं, तब कहो कहां स्थान॥१७४॥
योगी बडा कि योग बड, ज्ञाता बडा कि ज्ञेय ॥
द्रष्टा बडा कि दृश्य बड, भेदी बडा किय भेय ॥१७५॥
पांच तत्त्व औ काल दिन, मन औ आतम जान ॥
उपदेशत नौ द्रव्य केहि, बिनु ज्ञाते का ज्ञान ॥१७६॥
मीमांसा बड़ा कि जैमिनि, वैशेषिक बड़ा कि कणादि ॥
गौतम बडा कि न्याय बड़, कहु पंडित को आदि१७७॥

सांख्य बडा कि कपिल बड़, पातांजल बडा कि शेष॥
व्यास बडा कि वेदान्त बड, दुइमें को अवशेष ॥१७८॥
जैमिनी कणाद औ गौतम, शेष कपिल औ व्यास ॥
षट धीमर षट जाल बिनी, बांध्यो जीवन फाँस ॥१७९॥
नाम रूप चीन्है नहीं, करै रूपका वाद ॥
पंडित यह दोयमें, को है किसका आद ॥ १८० ॥
संधि मात्रा जोरिकै, अर्थ बुझन की चाव ॥
जिन्ह संधि मात्रा कियो, ताको भयो अभाव॥१८१॥
कबीर कर्त्ताके कियेते, संधिक मात्रा अर्थ ॥
कर्त्ता बडा कि अर्थ बड, कहु पंडित सामर्थ ॥ १८२ ॥
कबीर लोभीके गांवमें, ठग नाहिं परै उपास ॥
जेहि मतका जो लोभिया, तेहि घर ठगको वास॥१८३॥
कर्म इन्द्री जड वाक्य जो, ग्रंथन बरणन कीन्ह ॥
आगम निगम पुराण पुनि, जड उपदेशन दीन्ह ॥१८४॥
कबीर शब्दको अर्थ करि, शब्दै आवै हाथ ॥
कहैं कबीर पारख विना, जहँ तहँ पटकै माथ ॥१८५॥

माया तीन प्रकारकी

माया है जग तीनकी, जीव गुरू औ ईश ॥
सकल जीवके अन्तरे, व्यापक बिस्वाबीश ॥ १८६ ॥

पारख

जीवकी माया आपदा, ईश्वरकी संसार ॥

गुरुकी माया आवर्ण है, पंडित करो विचार ॥ १८७ ॥
कबीर लिंगऽस्थूल तन, कारण मांहि बिलाय ॥
तब आतम कहवाँ रहै, पंडित कहो बुझाय ॥१८८॥
कबीर माया ईशकी, जीवहुकी छुटि जाय ॥
गुरु माया छूटन कठिन, आवरण होइ रहाय ॥ १८९ ॥
ब्रह्म जीव ईश्वर जगत, शब्दका गुण आकास ॥
कहैं कबीर परखे बिना, होइ पदारथ भास ॥ १९० ॥
कबीर स्वाती पपीहराके, सबै बखानत प्रेम ॥
जों स्वाती जल तेहि मिला, पीकी छुटी न नेम ॥१९१॥
जाकी संस्तुति पूर्वसों, आई चली मलीन ॥
कहें कबीर सों जीवरा, भया पापका पीन ॥ १९२ ॥
कबीर अक्षरके बोलते, होइ अकार अनुसार ॥
अक्षरके विकारको, मूढ कहै करतार ॥ १९३ ॥
अक्षर औ निःक्षरहीं, बोले तें संयोग ॥
मुखतें जूठा जो खसै, काग श्वानका भोग ॥ १९४ ॥
कबीर स्वांसा सहित यह, पांच तत्त्वको देह ॥
स्थापन स्वांसा तेहि करै, देह ज्ञान सो नेह ॥ १९५ ॥
त्रिदेवादि आचार्य्य सब, नेति शब्द अवशेष ॥
नेति शब्द आकाशगुण, शेष आकाश न देख ॥ १९६ ॥
शेषजादी बल शेषके, चादर ओढी झीन ॥
जाडे तें दुबरी भई, कहैं भई मैं पीन ॥ १९७ ॥

कबीर नौखी नौनियां, बांस नहरनी लीन्ह ॥
नख जड़ देह बढाइकै, आतम ढुंगन कीन्ह ॥ १९८ ॥

सम्प्रदाय

कबीर युग युग सम्प्रदा, श्री शंकरी दोय ॥
श्री सों बादी शक्तिके, शंकर शिवकी होय ॥ १९९ ॥
श्रीशंकरी सम्प्रदाय, बिनु गुरुके नहिं कोय ॥
कहें कबीर गुरु संप्रदा, शरण गये सुख होय ॥२००॥
कबीर अव्याहत ईशकी, गति कहत सब कोय ॥
अव्याकृत बिनु ईशता, कहु पंडित केहि होय ॥२०१॥
अव्याहत जों विष्णुको, लक्ष्मी काको संग ॥
जेहि चाहत है सकल जग, अव्याकृतको अंग ॥२०२॥
कबीर जो महादेवकी, अव्याहत जो होय ॥
नगन रहै डर कौनके, गिरिजा किसकी जोय ॥२०३॥
कबीर मोहनी देखिकै, हाहा शंकर कीन्ह ॥
कहें कबीर यह लक्षणा, अव्याहतको चीन्ह ॥ २०४ ॥
अव्याहत जो रामकी, किमि सिय अर्द्ध शरीर ॥
अव्या बिनु कैसे भये, दशरथ सुत रघुवीर ॥ २०५ ॥
पूर्ण ब्रह्म कृष्ण जो, अव्याहत किमि कीन्ह ॥
नाचि रिझायी गोपियन्हि, अव्याहत को चीन्ह॥२०६॥
कबीर दश औतारको, अव्याहत जो होय ॥
जग उत्पति पालन प्रलय, बिनु अव्या नहिं होय॥२०७॥

चितवन कारण जगतकी, जौ लो नहिं अति अन्त ॥
कहहिं कबीर पुकारिकै, तौलों होय न संत ॥ २०८ ॥
कबीर प्रेरक ईशको, वेद कहे गुण गाय ॥
जाकी अभ्यागत भई, प्रेरे तासु बलाय ॥ २०९ ॥
काम बिगारे भक्तिको, ज्ञान बिगारे क्रोध ॥
लोभ बिगारे बिरागको, मोह बिगारै बोध ॥ २१० ॥
कबीर शंकर व्यासको, खतरा भयो नसल ॥
जगत प्रतिष्ठा कारणे, आतम कहत असल ॥ २११ ॥
कबीर जोई श्रवण करै, मनन होइ पुनि सोय ॥
निदिध्यासन साक्षात सो, चीन्है बिरला कोइ ॥२१२॥
श्रवण मनन निदिध्यासन, साक्षात करै जो कोइ ॥
कहहिं कबीर चारो किये, कृत्रिम करता होइ ॥२१३॥
सुनै गुणै देखै कहै, चीन्हत नहीं गुणरूप ॥
कबीर पारख पाये बिनु, परा प्रकाश भ्रम कूप ॥२१४॥
परमेश्वर वर्णन करै, इंद्रिनका गुण रूप ॥
कहहिं कबीर राज तजि, भया भिखारी भूप ॥२१५॥
ब्रह्म जीव ईश्वर जगत, सब आचार्य का ज्ञान ॥
शब्द पारखी कोई नहीं, मेरीकही को जान ॥२१६॥
कबीर माया ईशकी, जीवहुकी छुटि जाय ॥
गुरु माया छूटत कठिन, अबरण होइ समाय ॥२१७॥

नोट—साखी नंबर २१७ दोबारा इस पुस्तकमें आई है।

वृन्दा केरे शापते, शालिग्राम औतार ॥
वृंदाके पूर्व कहु पंडिता, केहि पूजे होत उबार॥२१८॥
प्रतिमा दारु पषानकी, नख शिख दारु पषान ॥
स्थापै जेहि देवको, सो केहि द्वार समान ॥ २१९ ॥
जेते रूप तिहूं लोकमें, शब्दहिंका गुण सोय ॥
जैसे बिगूचा खेतका, रहा पारथी होय ॥ २२० ॥
रूप पदार्थ वस्तु गुण, भास करावै बाच ॥
कहें कबीर परखे बिना, सकल बाद है कांच ॥२२१॥
कबीर सूता क्या करसि, तोहि शिर पर है भार ॥
जाहि भरोसे सो रहा, सो देत न बार उखार ॥२२२॥
ऐ कबिरा सत संग बसु, देहु कुसंगति काटि ॥
एक ओर नौ मन रेशम,एक ओर चुटकी झांटि॥२२३॥
जैसे परत बनौरी, जल जमि भासै थूल ॥
ते थूल गये गलि होई जल,त्यों शब्दरूपके मूल॥२२४॥
जैसे पाला भास होइ, देखत जात बिलाइ ॥
तैसे रूप वस्तु गण, परखे नहिं ठहराइ ॥ २२५ ॥
निन्दक ताको जानिये, जाको नहिं पहिचान ॥
है कुछ और कहे कछु, यह निन्दक सहिदान॥२२६॥
कबीर केशरी सिंहको, कीन्हों कैद सियार ॥
पदशिर नावै मूसको, करत जुहार बिलार ॥ २२७॥
एक अचम्भा देखिया, सरपे खायो मोर ॥

देहरी भूके कुत्तिया, घरमें पैठा चोर ॥ २२८ ॥
छेनी शीतल भेंइ जल, काटै ताता लोह ॥
गुरुके वचन शीतल क्षमा, काटै दुःख जग मोह२२९॥

मुसलमानधर्म

सुन्नत मूसलमानकी, हुकुम रांड का होइ ॥
मानी हुकुम हरमकी, ईमान इलाही खोइ ॥ २३० ॥
जौं हरम अल्लाह होंय, सिरपर हुकुम मंजूर ॥
जो हरम अल्लाह नहीं, गया ईमान जरूर ॥ २३१ ॥
कौल ईलाही छोडिकै, हरमी कौल मुरीद ॥
यह दरजा पैगम्बरी, हरमो कौल शुहीद ॥ २३२ ॥
कबीर हुकुम अल्लाहका, छांडि भया मुनकीर ॥
कौल हरमको मानते, तनिक न आई पीर ॥ २३३॥
कबीर सोई हुकुम हरमकी, उम्मत निबाहै जात ॥
पैगम्बर हुकुम हरमके, बडे शरमकी बात ॥ २३४ ॥

मायाके गुण और स्वरूप

मायाके दुइ रूप हैं, सत मिथ्या संसार ॥
मायाके गुण तीनि हैं, जनम पालन संहार ॥ २३५ ॥
चमगुदरीके बडकन्ह, उलुवा भये प्रधान ॥
निशिमें दोउ कहँ नयन सुख, दिन रवि होइ न भान२३६॥
रज गुण तीनि प्रकारके, ब्रह्माका गुण सोय ॥
मन इन्द्री अरु करसों, उत्पति जगकी होय ॥२३७॥

सतगुरु द्वै भकारके, विष्णुका गुण सोय ॥
मनसों करसों जानिये, जगका पालन होय ॥ २३८ ॥
तमगुण द्वै भकारको, शिव अभिमानी होय ॥
मनसों करसों जानिये, जगत संहारै सोय ॥ २३९ ॥
ब्रह्म जीव ईश्वर जगत, उपजै मनते सोय ॥
कहैं कबीर सुनु पंडिता, गुणातीत किमि होय ॥२४०॥
बिनु दुल्हहकी दुलहिनी, सूनी सेज रहि सोय ॥
गयो अकारथ यौवना, निराश चली रोय रोय॥२४१॥
जीव हता जौं बिन्दयें, तजि क्यों जाय शरीर ॥
जो पैठे सो नीकले, देखु बिचार कबीर ॥ २४२ ॥
कबीर जेते साधना, साधत गूना गून ॥
कहैं कबीर शब्द परखे बिना, सकल साधना शून॥२४३॥
कबीर शून्यको सेइकै, होन चहै भवपार ॥
जैसे दीपक चित्रका, करै कौन उजियार ॥ २४४ ॥
जगत पदारथ जाहिको, बूझ खडी होय जाय ॥
जैसे बाघा चित्रका, कहहु कौन कोय जाय ॥२४५॥
जग भासे संधिक किये, संधिक भासे ब्रह्म ॥
कहैं कबीर संधिक लखै, होय न कोई भ्रम ॥२४६॥
ब्रह्मादिक सनकादि जो, सबका संधिक ज्ञान ॥
कहैं कबीर शिरमौर सो, लखे जो संधि विधान॥२४७॥
राम नामकी औषधी, संधिक विष दियो सान ॥

उदर राग औ पानकरी, रोगिया वैद्य समान ॥२४८॥
ब्रह्मा गुरु सुर असुरके, संधिक विष नहिं जान ॥
मरै सकल औंदाइकै, संधिक विष करि पान ॥२४९ ॥
उस्वासे जग ऊबरै, विश्वासे मारिजाय ॥
विश्वासे उस्वासको, मारा ढोल बजाय ॥ २५० ॥
बोले वाणी होत है, मौन रहे है स्वांस ॥
कह कबीर मुख नासिका, शब्द करत प्रकास ॥२५१॥
संधिकतें सब ईशता, संधिक अर्थ प्रमान ॥
कहें कबीर निःसंधि जो, वह भी संधिक जान॥२५२॥
नाहीं जगका बीज है, जीवत संग रहाय ॥
करै भरोसा नारिका, मूये संगहि जाय ॥ २५३ ॥

जीव

सबकी उत्पति जीवतें, जीव सबनिकी आदि ॥
निर्जीव तें कछु होत नहीं, जीवै पुरुष अनादि ॥२५४॥
जीव निरादरको वचन, सब आचार्य्य कह जाहि ॥
कहैं कबीर अचरज बडा, शिव उपदेशत काहि॥२५५॥
जीव बिना नहिं आतमा, जीव बिना नहिं ब्रह्म ॥
जीव बिना शीवो नहिं, जीव बिना सब भ्रम ॥२५६॥
आतम औ परमातमा, ईश ब्रह्म लो जोय ॥
जीव विना मुरदा सकल, बूझे बिरला कोय ॥२५७॥
ईश ब्रह्म परमातमा, पारब्रह्म जो कोय ॥

वह निर्जीव कि जीव है, पंडित कहिये सोय ॥२५८॥
कबीर जाके बचनमें, जीव अनादर होय ॥
नास्तिक ताको जानिये, गुप्त सेवडा सोय ॥ २५९ ॥
जीव अनादर जो कहै, नास्तिक ताको जान ॥
जीव दयासो मम दया, यह जो कहा भगवान् ॥२६०॥
कबीर देह जीव बिनु, तुरतहिं होत दुरगंध ॥
तत्त्वन्हमें तद्रूप हों, नाश होय मति अंध ॥ २६१ ॥
कबीर सूनी सेज पर, सुंदरि सूती जाय ॥
आस लगाये पीवकी, कुहकत रैन बिहाय ॥ २६२ ॥
मृगतृष्णाके नीर लखि, ब्रह्मादिक सनकादि ॥
डुबकी मार्‍यो रत्नहित, कियो विविध मत बादि॥२६३॥
ब्रह्मादिक सनकादि जग, मृगतृष्णा लखिनीर ॥
तीरथ चले नहावने, जगयात्रा भई भीर ॥ २६४ ॥
जेहि जल माहि बड़े बड़े, गज ऊंट बहे सब जाहिं ॥
कह कबीर गदहा तहां, कहे केता जल आहि ॥२६५॥
ब्रह्म जगत् दोउ भास होय, यही चतुष्टक बीच ॥
अन्तःकरण मलीन होइ, विना रंग का कीच ॥२६६॥
कबीर बुद्धि परे सो आतमा, कहत सयाने लोय ॥
निश्चय दोउ पर अपरकी,बुद्धि बिना नहिं होय॥२६७॥
मन बुद्धि वाणी श्रुति कह, जहां न पहुँचे तीन ॥
फिरि ताको जानन कहै, ऐसो परम प्रवीन ॥ २६८ ॥

ब्रह्मादिक सनकादिको, लाग्यो ब्रह्म पिशाच ॥
नाम रूप मिथ्या कहे, ब्रह्म कहै भ्रम साच ॥ २६९ ॥
वरणाश्रम यह तीनिको, कहै बतावे दोष ॥
कबीर अहंब्रह्म अस्मि कहै, मूढ कहै निज मोष॥२७०॥
कहै वेदान्त बनाइके, सब मतके शिरमौर ॥
शब्द बिवेकी पारखी, सो चीन्हें वंचक चौर ॥ २७१ ॥
ब्रह्म भई तीहुं लोककी, माँडी सकलो मांड ॥
सुर नर मुनि दुलहिनि भये, दुल्ह भई एक रांड॥२७२॥
कबीर आतम ज्ञानका, परा जगत् में शोर ॥
पूछो कैसो आतमा, तब देत दाँत निपोर ॥ २७३ ॥
चीन्हन को सो चीन्है नहीं, आतम चीन्है मूढ ॥
पूछौ कैसो आतमा, तब कहे गुंगा गूड ॥ २७४ ॥
जौं गुंगे का गूड है, पूरब गुरु उपदेश ॥
तौं चारि षट् अष्टदश, यह कीन्ह कहा सन्देश॥२७५॥
चतुर श्लोकी भागवत, कियो विधिहिं उपदेश ॥
जो पूरब गुरु गुंग है, यह कीन्ह कहा सन्देश॥२७६॥
जौं पूर्व गुरु गुंग है, तौं गुंगा शिष्य सब तात ॥
पांजी यह गुरु शिष्यकी, कीन्हों चलाई बात ॥२७७॥
हिन्दू गुंगा गुरु कहै, मुसलिम गोय मगोय ॥
कहें कबीर जहंडे दोऊ, मोहनिन्दमें सोय ॥ २७८ ॥
गोय मगोय गुरु गुंगको, जो ऐसोही न्याय ॥

कहैं कबीर माते सबै, भाग परा दरियाय ॥ २७९ ॥
कबीर जौं पै गोयमगोय है, यह अल्लाहकी बात ॥
सीपारातीस कुरानके, मकरूह होय जात ॥ २८० ॥
कबीर गोय मगोय है, जौं पै वह अल्लाह ॥
परदे नाल रसूलसों, कहा कौन सल्लाह ॥ २८१ ॥
कबीर अर्थ लगावै शब्दका, शब्दै पढता जाय ॥
बातनकी जो रती करै, पण्डित गाल बजाय ॥ २८२ ॥
कबीर पण्डित धूरिया, बात बनाई श्लोक ॥
बातेही अर्थ बतायके, ठगें सो तीनों लोक ॥ २८३ ॥
पण्डित अर्थ लगावहीं, अनरथ होता जाय ॥
कहें कबीर अचरज बडा, अरथे अरथी खाय ॥ २८४ ॥
कबीर अर्थ शब्दमें, शब्द सों जाना जाय ॥
अर्थ कौन सी बस्तु है, पण्डित कहो बुझाय ॥ २८५ ॥
श्रुति कहैं शब्द अकाश गुण, अरथो होई अकाश ॥
सूते घरका पाहुना, भोजन भया उपास ॥ २८६ ॥
जेर जबर औ पेशकारि, हिज्जे मतन बनाय ॥
यह कारि माने कहत है, मोलना गाल बजाय ॥ २८७ ॥
कबीर मानी मतन सों, मतन कहे जो कोय ॥
यहि दोनों में को बडा, हजरत कहिये सोय ॥ २८८ ॥
मीयां मतन पढावहीं, मानी वार न पार ॥
मतन सखुन चीन्हें बिना, मीयां भये खो वार ॥२८९॥

कहहिं कबीर कहु मोलना, मैं तोहि पूँछौं जान ॥
इल्लिल्लाह मतन भया, इसकी मानी कौन ॥ २९० ॥
कबीर मानी मतनको, मतन सों जाना जाय ॥
मानी कौनसी वस्तु है, हजरत कहो बुझाय ॥ २९१ ॥
कबीर मारी अल्लाहकी, ताको कहत हराम ॥
हलाल कहै अपनी मारी, यह बादान कलाम ॥२९२॥
अपनी बोली आपसें, होत नहीं पहचान ॥
कहे कबीर सूझे नहीं, मोह महाबलवान ॥ २९३ ॥
कारण लिंग स्थूल जीव, विश्व तेजस प्राज्ञ जो ईश ॥
त्रिविध हिंडोला उभय जन, झूलहिं विश्वावीश ॥२९४॥
जीव ईशमें भेद बहु, कहत सयाने लोय ॥
बिना जीवकी ईशता, कहु पंडित किमि होय ॥२९५॥
जाग्रत अव्याकृत बरण, तिहुँ पुर देत दिखाय ॥
सो अव्या सुषुप्तिलों, अबरण होइ रहाय ॥२९६॥
कबीर वेदान्ती कहत हैं, अबरण आतमरूप ॥
अव्या अबरण बोधदे, डारत भ्रम तम कूप ॥ २९७ ॥
कबीर बरण चीन्है नहीं, बरणै अबरण होय ॥
अबरण जानै वस्तु कछु, मूरख कहिये सोय ॥ २९८ ॥
मायाके दुइ अंग हैं, अबरण बरण स्वरूप ॥
भानु प्रकाशी बरणमें, अबरण राति अनूप ॥ २९९ ॥
नित्य कहत है आतमा, अनित्य कहत है देह ॥

एहि दोनोंमें को तरा, कबीर अचम्भा येह ॥३०० ॥

कबीर तत्त्वमसि पद तीनि जो, कहै सबै सुख भौन ॥
पूरब कीन्ह उत्पति कियो, सुने सो पंडित कौन॥३०१॥

जैसेहि मनोराजमें, विविध मनोरथ होय ॥
तैसे बहुत प्रकारके, मतबादो सब कोय ॥ ३०२ ॥

कबीर निगुरा नरनको, संशय कबहुँ न जाय ॥
संशय छूटै गुरु कृपा, तासु विमुख जहंडाय ॥ ३०३ ॥

जेता ज्ञान देखिये, होत सबन्हको अंत ॥
वस्तु भलै न गहत हैं, सो कबीर निज संत ॥ ३०४ ॥

जिह्वा फिरै अनन्त गली, वरनि सको पुनि ताहि ॥
सुर नर मुनि औ औलिया,सकलो मारै जाहि॥३०५॥

अष्टावक्र देवदत्त जो, गर्भहिं कथ्यो वेदान्त ॥
आवत बना पुनि गर्भमें, जन्म भयो पुनि अन्त३०६॥

पूरव दोउ चैतन्य रहे, भया किमि गर्भ निवास ॥
उपनिषद कहि पितुमातुसों,जगत बीज किमिनाश३०७॥

द्रष्टा साक्षी वर्न ते, लाजन मारत गाल ॥
जगको साक्षी बनत है, सो कहे भयो न त्रिकाल३०८॥

सकल आचार्य्य कहत हैं, जग मिथ्या दरशाय ॥
मिथ्या माहिं दरशको, व्यापक कहे बनाय ॥ ३०९ ॥

कबीर द्रष्टाके निरूपते, द्वि द्रष्टा तब होय ॥
कहैं कबीर बहु पंडिता, द्रष्टा एक कि दोय ॥ ३१० ॥

कबीर साक्षीके निरूपते, द्वै चैतन तब होय ॥
कहैं कबीर कहु पंडिता, चैतन्य एक कि दोय॥ ३११॥
कबीर व्यापकके निरूपते, द्वै व्यापक तब होय ॥
कहैं कबीर कहु पंडिता, व्यापक एक कि दोय॥ ३१२॥
छौ आचार्य्य छौ शास्त्रके, कीन्हों शास्त्र प्रचार ॥
कौन शास्त्र वै पढिकै, कीन्हो शास्त्र बिचार ॥ ३१३ ॥
कबीर व्यास वेदान्तमें, मिथ्या बादी होय ॥
जो अद्वैत दीसै नहीं, ताहि निरूपे सोय ॥ ३१४ ॥
कबीर सुखिया गवणी लक्षणा, बानी बरणै तीन ॥
कहैं कबीर यह बैखरी, चीन्हे सोइ परवीन ॥३१५॥
जबते ब्राह्मण जन्मिया, तबते परधन लोभ ॥
दे अक्षर कबहूँ नहीं, इन्हते कौन अछोभ ॥ ३१६ ॥
कबीर पढि-पढ़ि गीता कृष्णके, ज्ञान चहै सब कोय ॥
कृष्ण कौन गीता पढी, कियो गीता संयोय ॥३१७॥
जगत सगाई तौं लगी, चीन्हंत नाहीं कोय ॥
ज्यों तेली के बैल संग, कुंभइन सत्ती होय ॥ ३१८ ॥
क्षण माहीं जग सत्यकरी, क्षणमें मिथ्या भास ॥
द्विज मंडवाके श्वान ज्यों, झांकत परा उपास ॥३१९॥
काल काल सब कोइ कहैं, काल न चीन्हे कोय ॥
काला रूप है कालका, करते उपजा सोय ॥ ३२० ॥
करते उपजा काल सोई, चढा सभन्हिके शीश ॥

कहै कबीर कोइ ना लखै, मानैं करि जगदीश ॥३२१॥
जेहिते सब जग ऊपजा, सोइ सबनको आदि ॥
ताको पारख नहिं किया,गया कबीरा बादि ॥३२२॥
ब्रह्मते जग ऊपजा, कहत सयाने लोग ॥
ताहि ब्रह्मको त्याग बिनु,जगत न त्यागन योग॥३२३॥
ब्रह्म जगतका बीज है, जो नहि ताको त्याग ॥
जगत ब्रह्ममें लीन है, कहहु कौन बैराग ॥ ३२४ ॥
चन्द सूर्य्य निज किरणको,त्याग कवन विधि कीन्ह ॥
जाकी जो किरण ताहिमें,उपजि होत पुनि लीन्ह ३२५॥
सब आचार्य शब्दको, विषय कहै समुझाय ॥
ब्रह्म आतम शब्द विषय,कहत न मूढ लजाय ॥३२६॥
कारण ईश्वर जगतका, कहत निरंतर वेद ॥
वह अविनाशी यह नशे,कहु पंडित यह भेद॥ ३२७ ॥
कारण ईश अनीहकहु, कारज रूप देखाय ॥
असमंजस दृष्टान्त यह, पंडित कहो बुझाय ॥ ३२८ ॥
जगत् पदारथ बूझते, ईश अनीह बखान ॥
दिनकर उदय अंधेर हो,यह उलूकका ज्ञान ॥ ३२९ ॥
कबीर मोह पिनाक जग, गुरु बिनु टूटत नाहिं ॥
सुर नर मुनि तोरन लगे,छूवत अधिक गरुआहिं ३३०॥
कबीर लघुको गुरु कहै, गुरु लघु कहै बनाय ॥
यह अविचारी देखिके,कहत कबीर लजाय ॥३३१॥

साधू ऐसा चाहिये, ज्यों मोतीमें आब ॥
उतरे त्यों फिरि नहिं चढै, अनादर होय रहाव ॥ ३३२॥
जाननको कहै आत्मा, बहु विधि ग्रंथ पुकार ॥
कहैं कबीर जस भोडेपर, जोलहिन कियो गोहार॥ ३३३॥
कबीर बेंगके मारते, जोलहा रोवै पुकार ॥
बिकल भया दहुदिशि फिरै, कीजै राम गोहार ॥ ३३४॥
माया तीनि प्रकारकी, ताहि करो पहिचान ॥
द्रष्टा आग्रही निर्वचनी, तीजै तुच्छा जान ॥ ३३५ ॥
निर्वचनि अद्वैत है, द्वैत सो द्रष्टा जान ॥
तीजे विशिष्टा मानते, साधुन हिये प्रमान ॥ ३३६ ॥
यह सरस्वति शिर पर चढी, भई सबहिं शिरताज ॥
कहैं कबीर चीन्हें बिना, माथे भार विराज ॥ ३३७ ॥
एक कर्म है बोवना, उपजै बीच बहूत ॥
एक कर्म है भूजना, पदय न अंकुर सूत ॥ ३३८ ॥

इति श्रीस्वामी श्रीयुगलानन्द कबीरपंथी भारतपथिक द्वारा संशोधित
श्री कबीर परिचयकी साखी सम्पूर्णास्तु

इतिश्री सत्य कबीर साहबकी अष्टोत्तरशत अंगकी साखी —स्वामी
युगलानन्द कबीरपंथी भारतपथिकद्वारा संगृहीत तथा
संशोधित । समाप्तमिदम् ॥

अथ आदिमंगल

दोहा–प्रथमै समरथ आप रहे, दूजा रहा न कोय ॥
दूजा केहिं बिधि ऊपजा, पूछत हौं गुरु सोइ ॥१॥
तब सतगुरु मुख बोलिया, सुकृत सुनो सुजान ॥
आदि अन्तको पारचै, तोसों कहा बखान ॥ २ ॥
प्रथम सुरति समरत्थ कियो, घटमें सहज उचार ॥
ताते जामन दीनिया, सात करी विस्तार ॥ ३ ॥
दूजे घट इच्छा भई, चित मन सातो कीन्ह ॥
सातरूप निरमाइया, अविगत काहु न चीन्ह ॥ ४ ॥
तब समरत्थके श्रवणते, मूलसुरति भै सार ॥
शब्द कला ताते भई, पांच ब्रह्म अनुहार ॥ ५ ॥
पाचौ पांचै अंड धरि, एक एकमा कीन्ह ।
दुइ इच्छा तहँ गुप्त है, सो सुकृत चित चीन्ह ॥६॥
योगमया यकु कारणे, ऊजे अक्षर कीन्ह ॥
या अविगति समरथ करी, ताहि गुप्तकरि दीन्ह ॥७॥
श्वासा सोहं ऊपजे, कीन अमी बंधान ॥
आठ अंश निरमाइया, चीन्हो संत सुजान ॥ ८ ॥
तेज अंड अचिंत्यका, दीन्हो सकल पसार ॥
अंड शिखा पर बैठिकर, अधर दीप निरधार ॥९॥
ते अचिन्त के प्रेमते, उपजी अक्षर सार ॥
चारि अंश निर्माइया, चारि वेद विस्तार ॥ १० ॥

तब अक्षरका दीनिया, नींद मोह अलसान ॥
वे समरथ अविगति करि, मरम कोइ नहिं जान॥११॥
जब अक्षरके नींद गई, दबी सुरति निरबान ॥
श्यामबरण यक अंड है, सो जलमें उतरान ॥१२॥
अक्षर घटमें ऊपजे, व्याकुल संशय शूल ॥
किन अंडा निरमाइया, कहा अंडका मूल ॥१३॥
तेही अंडके मुक्खपर, लगो शब्दकी छाप ॥
अक्षर दृष्टिसे फूटिया, दशद्वारे कढि बाप ॥ १४ ॥
तेहिते ज्योति निरञ्जनौ, प्रकटे रूप निधान ॥
काल अपरबल बीर भा, तीनि लोक परधान ॥१५॥
ताते तीनों देवभे, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
चारिखानि तिन सिरजिया, मायाके उपदेश ॥१६॥
चारि बेद षट शास्त्रऊ, औ दशअष्ट पुरान ॥
अशादै जग बांधिया, तीनों लोक भुलान ॥१७॥
लख चौरासी धारमां, तहां जीव दिय बास ॥
चौदह यम रखवारिया, चारिवेद विश्वास ॥ १८ ॥
आपु आपु सुख सब रमैं, एक अंडके माहिं ॥
उतपतिपरलय दुःखसुख, फिरि आवहिं फिरि जाहिं १९॥
तेहि पाछे हम आइया, सत्य शब्दके हेत ।
आदि अन्तकी उतपती, सो तुमसों कहिदेत ॥२०॥
सात सुरति सब मूल है, प्रलयहू इनहीं माहिं ॥

इनहीं मांसे ऊपजे, इनहीं माहँ समाहिं ॥ २१ ॥
सोई ख्याल समरत्थकर, रहे सो अछप छपाय ॥
सोई संधिलै आइया, सोवत जगहिं जगाय ॥२२॥
सात सुरतिके बाहिरे, सोरह संखके पार ।
तहँ समरत्थको बैठका, हंसन केर अधार ॥ २३ ॥
घर घर हम सबसों कही, शब्द न सुनैं हमार ॥
वे भवसागर डूबहीं, लख चौरासी धार ॥ २४ ॥
मङ्गल उतपति आदिका, सुनियो सन्त सुजान ॥
कह कबीर गुरु जाग्रत, समरत्थका फुरमान ॥२५॥

इति आदि मंगल

सायर बीजकको पद

★

सन्तौ बीजकमतपरमाना

कै यक खोजी खोजिथके कोइ बिरला जन पहिचाना। चारिउयुग औ निगम चतुर्भुज गावैं ग्रंथ अपारा। विष्णुविरंचिरुद्रऋषिगावै शेष न पावै पारा॥ कोइ निर्गुणसर्गुणठहरावै कोइ जोतिबतावै। नाम धनीको सब ठहरावै रूपकोउ न लखावै॥ कोउ सूक्षम अस्थूल बतावै कोउ अक्षर निजसांचा। सतगुरु कहैं बिरलैपहिचानै भूले फिरैं असांचा॥ लोभके भक्तिसरैनहिं कामा साहबपरमसयाना। अगम अगोचरधाम धनीको सबकह ह्वाजाना॥ देखैनपंथमिलैनहिंपंथीढूंढतठौरठिकाना। कोउ ठहरावै शुन्यक कीन्हा जोति एक परमाना॥ कोउ कहैं रूपरेख नहिं वाके धरतकौनको ध्याना। रोमरोममें परगटकर्त्ता काहे भरम भुलाना॥ पक्ष अपक्ष सबै पचिहारे करता कोइ न बिचारा। कौन रूपहै सांचा साहब नहिं कोई बिस्तारा॥ बहुपरचै परतीतिदृढावैसांचेकोविसरावै। कलपतकोटिजन्मजागावैंदर्शनकतहुँनपावै॥ परम दयालु परमपुरुषोत्तम ताहीचीन्हनर कोई। ततपरहालनिहाल करत है रीझत हैं निज सोई॥ बधिककर्मकरि भक्ति दृढावैनानामतको ज्ञानी। बीजकमत कोइ बिरलाजानै भूलिफिरैअभिमानी॥ कह कबीर कर्त्ता में सब है कर्तासकल समाना। भेद बिना सब भरम परै कोऊ बूझै सन्तसुजाना॥ इति॥

सत्य

सत्यान्नास्ति परो धर्म्मः

चरित्र

सर्व संतों, महात्माओं, ऋषि, विद्वान् और आचार्य्योंका, नाना प्रकारकी वाणी और पुस्तकोंको जगत्में प्रकट करनेका, आशयमात्र सदाचारको फैलाना और दुराचारको नाशकर जगत् मर्यादा स्थिर रखनेका है । जगत्की मर्यादा में किसी प्रकारकी अनुचित फेरफार होनेसे जगत्के सर्व प्राणियोंको अनन्त दुःखोंका सामना करना पड़ता है । इसी कारण पूर्ण निवृत्त परंतु करुणासे पूर्ण सन्त महात्मा लोग जगत्में सदाचार फैलानेके लिये देशकालानुसार तत्कालीन प्रचलित भाषामें ज्ञान, वैराग्य, नीति, भक्ति, योग आदिको वर्णन करके सदाचारको प्रवृत्त कराते हैं । उसी प्रकारसे सदा मुक्त, दीनदयाल, सत्य गुरु कबीर साहबने पूर्णकरुणा कर इस घोर कलिकालमें धर्म्मके लोप होनेसे दुराचारमें फँसे अथवा उसके आक्रमणके सन्मुख हुये जीवोंके उपकारार्थ अनन्त वाणी कथनकर संसारका विशेषकर हिन्दी भाषा जानने वालोंका महान उपकार किया है । उन्हीं अनन्त वाणीमेंसे कुछ साखियोंका संग्रह स्वरूप यह ग्रन्थ है ।

अब यह देखना है कि, यह सदाचार क्या है कि, जिसके हेतु अनन्त सुखरूप ब्रह्मस्वरूप महात्मागण भी प्रवृत्तिमें आकर जीवोंको उपदेश करते हैं। सो हेतु यह अत्यन्त सूक्ष्म लेख पाठकगणके अवलोकनार्थ देता हूँ ।

सदाचार ही इस जगत्का व्यवस्थापक नियम है। शुद्ध चरित्रवान पुरुष अपनी सर्व स्थितिमें अपनी प्रामाणिकतासे अपनी उच्चाभिलाषासे शुद्ध वासनासे सब किसीके ऊपर एक प्रकारका वशीकरण करता है, शुद्ध चरित्रवानकाही वचन माननेको जी चाहता है । ऐसेहीके ऊपर विश्वास होता है, विश्वमें जिन नियमोंसे लोगोंको सुख मिलता है, जिसका लोग प्रमाण मानते हैं, जिसमें मनुष्य वर्गका कल्याण होता है जिससे भक्ति-मुक्ति प्राप्त होती है, उसके नियामक रचयिता और रक्षक शुद्ध चरित्रवान ही होते हैं।

सर्व महात्मा, ऋषि, मुनि, धर्माचार्य्य, गुरु, पीर, पैगंबर आदि प्रसिद्ध पुरुष जो जगतमें प्रसिद्ध हो गये हैं, अवतार स्वरूपसे ईश्वरसमान जो पूजित हुये हैं, जिनको साक्षात् ब्रह्मस्वरूप मानकर लोगोंने मान दिया है और देते हैं, वे सब सदाचारको ही अवलंबन करनेसे ऐसे पदको पहुंचे हैं और पूज्य हुये हैं ।

यद्यपि संसारमें विद्या और वैभवकी महिमा और चमत्कारसे आश्चर्यमें डूबना होता है परंतु आदर तो सद्‌चरित्रको ही है ।

बुद्धि केवल विचार कौशलका ही चमत्कार है, चरित्र द्रावक प्रेम भावका पुत्र है । संसारमें सबको वश करनेवाला तो केवल प्रेमही है । बुद्धिमान् पुरुष यदि नरमंडलके शरीरका मस्तक है तो सद्‌चरित्रवान उसका हृदय है । बुद्धिमानोंकी जगत् में प्रशंसा होती है परंतु सद्‌चरित्रवानोंकी आज्ञा पालन की जाती है । शुद्ध सर्वोत्कृष्टताको पाना तो सर्वके हाथमें नहीं है अर्थात् सर्वप्रिय होना प्रकृतिके नियममें है ही नहीं परंतु अपने-अपने छोटे आवासोंमें शुद्ध चरित्रसे शुद्ध वासनासे प्रामाणिक बुद्धिसे प्रेमसे और दयासे, सर्वका हित चाहना, सर्वके कल्याणकी इच्छा करना पुरुषार्थ सिद्ध है ।

सद्‌चरित्रको ही दूसरे नामसे दूसरे सांचेमें ढालनेसे स्वकर्तव्यपालन नाम होता है । स्वकर्तव्य परायणताही सदाचारका उच्च स्वरूप है । इसी प्रकार अपने कर्तव्यको न चूकना ही जीवनका फल है ।

मनुष्यका शुद्धाचरण उसके नित्य कर्मसे ही जाना जाता है । जिससे मनुष्यको अधिक सामना करना पड़ता है, उसीके सामने अपनी शूरता दिखानेका अवसर आता है । जो मनुष्य अपने कर्तव्यों को सचेततासे पालन करता है वही सुख भोग सकता है, वही उत्तम पदवी पाता है । साधारण गुणही मनुष्योंके अधिक कामका है । साधारण गुणोंकाही क्षण-क्षण काम पड़ता है । जो बहुत साहस दिखलाना चाहता है, असाधारण काम करके अपनी प्रशंसा (नामवरी) संपादन करना चाहता है, उसके विचारका आधार बहुत निर्बल और भयानक स्थितिमें होता है । वास्तविक रीतिसे तो सामान्यता ही सर्व प्रकार श्रेयस्कर होती है,

श्रीरामचन्द्रजीका, साधारण गुण, पिता प्रति भक्ति, माता प्रति आदर, पत्नी प्रति प्रेम, भाइयों प्रति भाव आदिही राजकीय गुणोंसे अधिक ग्रहण करने योग्य है । सबकी दृष्टि सबसे पहले इन्ही गुणोंपर पड़ती है । इसी प्रकार साधारण मनुष्य अपनी असाधारण साहसिक बुद्धिके साथ दौड़ता न जाकर अपने साधारण गुणों के साथ-साथ शनैः शनैः चलता हुआ सामान्य विषय, सामान्य सत्यगुण तथा अपने कर्तव्य को सर्वस्व समझकर पालन करता जावे तो उतने ही में उसके चरित्र सुधरें । जिस अपूर्व कार्यको सिद्ध करनेके लिये इस संसारमें आना हुआ है उसको आनंदपूर्वक सिद्ध करले ।

चरित्रको विद्या तथा ज्ञानके विशेष वैभवसे कुछ भी संबंध नहीं है । शास्त्रोंमें वारंवार विद्या ओर धर्मको भिन्न-भिन्न वर्णन किया है । जहां-जहां मोक्षकी व्याख्या किया है वहां-वहां प्रेमभाव समदृष्टिताको प्रधान गिना है । ज्ञानकी सीमाका अन्त भी वहीं बतलाया है । जिसमें समानभावसे 'सबमें प्रेम स्थिर हो जावे । कहा भी है, "आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ।।" यहां विद्यासे साधारण विद्या जिसे लोकमें पढ़ना लिखना कहते हैं आशय है आजकलके भारतकी शिक्षा का इसी विद्यामें समावेश

होता है। महात्माओं का वचन है कि, शुद्ध चरित्रकी एक मुट्ठीकी तुल्यता दशमन विद्या भी नहीं कर सकती।

ऐसे अनेक दृष्टांत नित्य मिलते हैं और मिले हैं जिससे अनेक प्रसिद्ध विद्वानोंमें स्वार्थ परायणता और मिथ्या परेच्छाको बुरी टेव पड़ी होती है। कोई चार वेद षट्-शास्त्र अठारह पुराण आदि संसारके सर्व धर्म ग्रन्थोंको जाननेवाला अथवा वर्तमान कालके एम० ए० बी० ए० आदि बड़ी डिग्रियोंको प्राप्त करनेवाला हो, परंतु सदाचारसे शून्य हो तो वह उस देहातीसे जिसमें प्रामाणिक बुद्धि, सद्वर्तन, सत्य शीलता आदि गुण हों, उतरती पंक्तिमें गिना जावे गा। क्या रावण विद्वान् नहीं था? नहीं-नहीं चारों वेद उसके मुखाग्र थे परंतु एक सदाचार (स्वकर्तव्य पालन) में दृढ़ता न होनेके कारण से ही उसे राक्षस कहा है। औरंगजेब फ़ाजिल था परंतु उसके बराबर विश्वासघाती पितृद्रोही भ्रातृघातक कोई हुआ ही नहीं। चाणक्य महान् नीतिज्ञ विद्वान् होने पर भी सहस्रोंका गला कटाता था।

इसी प्रकार द्रव्यका भी चरित्रके साथ सम्बन्ध नहीं है, यह देखनेमें तो स्पष्ट ही आता है कि, द्रव्यसे कभी कभी चरित्र पर ऐसा आघात लगता है कि सदाचार संबंधी सत्यपरायणता, न्याय, संयम, सुकृति आदिको निकालकर, कपट, झूठ, अनीति, विषया-सक्ति, व्यसन, दुराख्याति और कठोरताको उसकी जगहमें स्थापित करता है। विशेष कर आत्मसंयममें असमर्थ अथवा उच्चमनोवृत्तिवाले मनुष्योंके हाथ आनेपर द्रव्य इतना अनर्थ और पापका कारण हो जाता है कि, जिससे अपने धनीका सर्वस्व नाश कर देता है।

इससे उलटा जब गरीबीका विचार करें तब उसका चरित्रके साथ घनिष्ठ संबंध देखा जाता है।

मान बडाई गर्वका, पचि पचि मरे गँवार।
दास गरीबी बन्दगी, सतगुरुका उपकार॥

गरीब आदमी "निर्धनका धन राम" ऐसा समझकर धर्मरुचिसे अपने कर्तव्य को अभिमान रहित पालन करता हुआ न तो प्रेमसे गिरता न अनीतिमेंही पड़ता है। यदि भारतके पिछले ऋषि मुनि और प्रसिद्ध धर्मस्थापकोंकी ओर दृष्टि दी जावे तो स्पष्ट जान पड़ेगा कि वे साधारण अवस्थामें ही रह करके महान् उदारता, सत्यता, प्रेम, शील सत्यविद्या, कला कौशल आदिके पूर्ण धारण करनेवाले हुये हैं। जिससे देशमें नियम कायदा सदाचार आदि का प्रचार कर देशका महान् कल्याण किया है।

ऐसी साधारण स्थिति और गुणोंको अवलंबन करनेवाला पुरुष आजकल उच्च और भड़कीले स्वार्थपरायण पुरुषोंके समान हल्ला नहीं मचाते येसाधारण स्थितिहीमें रहकर सबके हितकी कामना करके सबको सुख प्राप्त कराते थे। उनकी बाहिरी स्थिति साधारण होती थी और चित्त विचार उदार होता था।

वे अपने जीवन निर्वाहका प्रोग्राम ऐसा सादा रखते थे कि, जिससे उनको अपने शरीर यात्राके लिये अपना सर्व समय नष्ट करना न पड़ता था वरन् उनके दिन रात्रिका विशेष भाग, परोपकार, जगतमर्यादा को स्थिर रखने और आत्मसंयम करने करानेमें बीतता था और यही स्वकर्तव्यपालन और सदाचार है। जैसा वे अपने जीवनमें करते थे वैसाही पुस्तकों में लिखकर अपनी वाणी द्वारा सदाके लिये जगत् में छोड़ गये हैं। उन्हींका अनुकरण करनेसे संसारी मर्यादा में रहकर आत्मसंयम द्वारा स्वकर्तव्यको पूर्ण कर संसारमें सुखी और परलोकमें मोक्ष के भागी बनते हैं।

जिस प्रकार वर्तमान कालमें प्रेस आदिके हो जाने से सदाचारहीन नाममात्रके सांसारिक लोभी लेखक लोग अनेक अश्लील (देश और धर्मको आघात करने वाली) पुस्तकें लिखकर देश और धर्म्मका सत्यानाश कर रहे हैं वैसे वे न तो नामवरी चाहते थे न द्रव्य की लालसा करते थे, न पुस्तक बनाकर पुस्तक बनाने का अभिमान रखते थे वरन् ईश्वर भक्ति, आत्मपरायणता, स्वकर्तव्य पालन और करुणाकी पूर्णतासे स्वयं उनके अन्तःकरणसे निकलकर वाणीद्वारा सत्योपदेशरूप गंगा प्रवाहित होती थी जिससे संसारका महान् उपकार हुआ है होता है और होगा।

विषय बहुत बड़ा है इसलिये यहां हो समाप्तकर पाठकगणोंको आशा दिलाता हूँ कि, स्वतन्त्र कोई पुस्तक लिखकर अपने हृदयका भाव प्रगट करूंगा।

बंबई
फरवरी–१९०३

सर्व सज्जनोंका कृपाकांक्षी–
युगलानन्द कबीरपंथी
भारत पथिक

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅंक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-४२००७८.

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बँक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS